

काव्य और सङ्गीत
का
पारस्परिक सम्बन्ध
(स० १७००-१९००)

काव्य और सङ्गीत का पारस्परिक सम्बन्ध

(संवत् १७०० से १९००)

(दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० उपाधि के
लिए स्वीकृत दशमेक-प्रबन्ध पर आधारित)

डा० उमा मिश्र, एम० ए०, पी०-एच० डी०,
सङ्गीत विचारद (मातलण्डे सङ्गीत विद्यापीठ सप्तनऊ
और गान्धर्व महाविद्यालय मण्डस, बम्बई)

प्राप्त्यापिका

सेडी एी राम कासेज

नयी दिल्ली

दिल्ली पुस्तक सदन

बंगलो रोड, दिल्ली

प्रकाशक—

बिस्फी पुस्तक सदन
बंगसो रोड बबाहर नगर
बिस्फी



प्रथम संस्करण सून १९९२

मूल्य :

साढ़े चारहू रुपये



मुद्रण—

कम्पोजिष हिन्दो-मन्दिर प्रिन्टिग मज्जोसो
प्रिन्टिष भार० ब० प्रिन्टर्स
बिस्फी

सम्मा

सौर

पण्डित जी

को

जिनका स्नेह-सिक्त मार्ग-दर्शन
मेरे जीवन का आधार है

निवेदन

यह पुस्तक दिल्ली विश्वविद्यालय की 'पी-एच० डी० उपाधि के लिए प्रस्तुत मेरे अन्वेष प्रबंध 'रिक्तकालीन काव्य और संगीत का पारस्परिक सम्बन्ध' पर आधारित है। मूल अन्वेष प्रबंध की तैयारी और प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन के बीच की अवधि में समय प्रवाह के साथ-साथ विचार प्रवाह में भी परिवर्तन होने लगे अतः उन परिवर्तनों का प्रस्तुत पुस्तक में समाविष्ट किया जाना स्वाभाविक था किन्तु इन परिवर्तनों से अन्वेष प्रबंध की मूल स्थापना में कोई तात्त्विक अन्तर नहीं आया।

काव्य और संगीत का पारस्परिक सम्बन्ध कितना गहन कितना सूक्ष्म और कितना व्यापक है इसकी निरन्तर वर्धमान अनुभूति मुझे अतः भी आश्चर्यमिथित आह्लास से विभोर कर देती है। अतः अपने इस विनीत प्रयास में मैंने जिन उपस्थापनाओं को पाठकों के सम्मुख रखा है उनका सर्वांगीण पूणता का दावा तो मैं नहीं कर सकती किन्तु इतना विश्वास है कि काव्य और संगीत के पारस्परिक सम्बन्ध को स्पष्ट करने में ये मायताएँ—आक्षिप्त रूप में ही सही—उपयोगी सिद्ध होंगी। प्रस्तुत पुस्तक का प्रकाशन मेरी इस धारणा का परिणाम है इतने पर भी इस धारणा के समुचित मूल्यांकन का अधिकार एकमात्र मुविज्ञ पाठकों को ही है।

—उमा मिश्र

विषय-सूची

मुख्य-घ
(पृष्ठ ११—२४)

भूमिका खण्ड

परिच्छेद १
(पृष्ठ २४—४९)

क

विषय प्रवेश और क्षेत्र-विस्तार

(मंगीठ का) लेख-विस्तार साहित्य और जीवन काव्य का क्षेत्र ,
प्रतिपाद्य विषय ।

ख

काव्य और सगीत का सम्बन्ध

कविता में मंगीठ शब्द मूल धार संगीत एवं काव्य का सम्बन्ध
प्रकृति में समानता शब्द संगीत , श्रीचिन्मय का धारण ।

परिच्छेद २
(पृष्ठ ५१—८१)

क

भारतीय सगीत

परिभाषा भारतीय मंगीठ की दो प्रणालियाँ भारतीय संगीत की
परिचर्चनशीलता ।

स

भारताय सगीत का सन्निप्त इतिहास (रीतिकाल से पूर्व तक)

वैदिक युग भरत युग इतिहास नत्तग नाटर मगीत मङ्करम्
मुसलमानी शासन काल जयदेव छाङ्गदेव मर्भार सुनरो मोषन
मध्यकालीन कालिक उपधान और सवीत प्रकबर लानसेन और धुपद
ऐसी राजा मान पुण्डरीक बिदुलन बहावीर युग क मगीतम् ।

ग

भारतीय सगीत की प्रमुख शैलियों का आसोजनार्थक अध्ययन (रीतिकाल से पूर्व तक)

✓ काठि और प्रबन्ध वाचन धुपद धनार मञ्ज-कीर्तन ।

परिच्छेद ३

(पृष्ठ ११—१४४)

क

गीतिबाल्य

परिभाषा व्यक्तिगत बोना तीव्र सुधनुनायक धनुमूठि प्यवा-
लकृता में गैय निरूप्यं गीतिबाल्य के विभिन्न रूप प्रबन्ध और
मुत्तर शब्द और रूप गीतिबाल्य की कमीटी ।

ख

हिन्दी-गीतिबाल्य का सन्निप्त इतिहास (रीतिकाल से पूर्व तक)

वैदिक युग महाराज्य काल मंस्टूठ-नाटिये धनधन-आहिय
बोरणाया काल धमीर गुनरो बिद्यापति शाजायवी धागा प्रनयारी
गागा राम बलि धागा इत्य भक्ति धागा अष्टछाप के कवि
श्यामी त्रि हरिवंश मोरा श्यामी हरिधाम रीतिकाल में गीतिबाल्य
जाओयुग ? हमारा अभिप्राय-गीतिबाल्य ।

शोध-खण्ड

परिच्छेद ४

(पृष्ठ १४७—१६४)

रीतिकालीन परिस्थितियाँ

राजनीतिक स्थिति धार्मिक स्थिति सामाजिक स्थिति धार्मिक
स्थिति कला प्रवृत्ति वास्तु-कला तथा मूर्ति-कला विभवता काव्य
तथा संमोह कला निष्पत्ति ।

परिच्छेद ५

(पृष्ठ १६१—१८७)

क

✓ रीतिकालीन संगीत (ऐतिहासिक आघेय)

गाहजहाँ अहोबिल अजमेरवासी श्रीरंगनेत्र भावमदट मुहम्मद
शाह रमीने श्रीनिवास प्रतापसिंह देव मुहम्मद रजा कृष्णानन्द
ध्यास बाजिद अली शाह अमरेजी शासक काल ।

ख

रीतिकालीन संगीत की प्रमुख शैलियों का शास्त्रीय अध्ययन

✓ लयाल बतुरंग तराना टप्पा दूमरी बरक और बिबट
अभंग भजन इत्यादि ।

परिच्छेद ६

(पृष्ठ १८१—२११)

रीतिकालीन काव्य और सांगीतिक प्रवृत्तियाँ तथा उनका
पारस्परिक सम्बन्ध

रीत तीन प्रकार के कवि आचार्य कवि आचार्यत्व का अभाव
मीनिकता का अभाव रीतिबद्ध कवि रीतिनुक्त कवि श्रुद्धारिक
प्रवृत्ति विभिन्न काव्य रूप विभिन्न भाव पारदर्श अल्प प्रिय विषय
रीतिकालीन सांघीतिक प्रवृत्तियाँ रीतिकालीन काव्य और सांघीतिक प्रवृत्तियों

का तुमनात्मक अध्ययन भाषायत्न प्रयोगगत कवियों के समानांतर
 टुमरी या भजन गायक शृङ्गारिका का प्राणायम आनुबर्धन और संगीत
 कलाकार प्रदर्शन ।

परिच्छेद ७

(पृष्ठ २११—२१३)

रौतिकालीन छन्द और अलंकार-योजना का
 संगीत से सम्बन्ध

छन्द योजना अलंकार-योजना ।

परिच्छेद ८

(पृष्ठ २१७—२२१)

रौतिकालीन प्रमुख काव्य-रूपों का संगीत से सम्बन्ध

क

रौतिकालीन गीतिकाव्य और संगीत

ख

रौतिकालीन मुक्त काव्य और संगीत

ग

रौतिकालीन प्रबन्ध काव्य और संगीत

परिच्छेद ९

(पृष्ठ १८३—१९०)

उपसंहार

सहायक पुस्तकों की सूची

(पृष्ठ १९१—४०१)

मुखबन्ध

प्रमुख प्रबन्ध में काव्य और संगीत के पारस्परिक सम्बन्ध को स्पष्ट किया गया है और साथ ही यह बताने की चेष्टा की गयी है कि काव्य के उत्कर्ष में संगीत किमतीमा तक सहायक होता है। सर्वप्रकारिक प्रबन्धों में विषय की परिमिति और अनुसन्धान का संयत्न कर धारा प्रवाह बना रहता है। यही कारण है कि काव्य-पत्र-कार्य में अनुसन्धान का अध्ययन के परिणामस्वरूप जो प्रणाली उपस्थापित होती हैं उनके आधार पर केवल उदासीमा तक ध्यान रहना जा सकता है जिस उदासीमा तक उपयुक्त यथायथा बहने देना है।

इस प्रबन्ध का प्रतिपाद्य विषय ऐतिहासिक साहित्यिक प्रवृत्तियाँ और तत्कालीन उत्तर भारतीय संगीत की प्रवृत्तियों के पारस्परिक सम्बन्ध का अनुसन्धान है। प्रतिपादन के रूप में इसी कारण बृहत्तम उतना ऐतिहासिक एवं तथ्यपरक नहीं जितना तत्परक एवं सैद्धांतिक है। अतः, ऐतिहासिक प्रायः सभी प्रमुख कवियों और तत्कालीन सभी काव्य-रूपों को तात्पर्य कर लिया गया है। किन्तु किताब-विषय की समस्त वृत्तियों की प्रत्येक पंक्ति में समीत एवं काव्य की पारस्परिक उत्कर्षाधिकार विवेचनाओं की विवेचना का प्रयत्न समीचीन नहीं समझा गया। तथापि वर्धापित उदाहरणों पर ध्यान उपस्थापनाएँ अपने-अपने-अपने-अपने सभी कवियों और सभी काव्य-रूपों पर समान रूप से प्रयुक्त हो सकती हैं। किन्तु सर्वप्रकारिक काव्य ही कुछ ऐसा है कि सर्वप्रकारिक अपनी केन्द्रीय मान्यता के संस्थापन और पुष्टीकरण के हेतु इतर-उतर अपने-अपने बिना चलती हैं। इसका प्रभाव भी नहीं है।

इस उपक्रम का उद्देश्य ऐतिहासिक काव्य और संगीत के पारस्परिक सम्बन्ध का निरूपण है। ऐतिहासिक साहित्यिक प्रवृत्तियों में तत्कालीन संगीत की प्रवृत्तियाँ इस में निरन्तर की भाँति बुझी हुई हैं। इसी तथ्य के आलोक में ऐतिहासिक साहित्यिक प्रवृत्तियों की पुनः-समीक्षा की शिखा में यह मरा विनीत प्रयास है।

हिन्दी-साहित्य में काव्य और संगीत के पारस्परिक सम्बन्ध को लेकर प्रसंगिक ही थोड़ी-बहुत कर्षा हुई है। उदाहरणार्थ पन्त हट 'पन्त की मूढिका' विरामा हट 'परिमम की मूढिका' प्रसाद हट 'काव्य और कला तथा काव्य विवरण' एवं उतना 'रक्तगुण विक्रमाशिर्य' नामक डा. ध्यामसुन्दर दास हट

'साहित्यालोचन' तथा 'हिन्दी भाषा और साहित्य' पत्रित रामनरेश त्रिपाठी द्वारा 'कुलश्रीरासऔर उनकी कविता' (कुलश्री भाग) एवं कविता-कोशुकी का पाँचवा तथा छठा भाग डा० बिरबन्धर भाष भट्ट द्वारा 'उल्लास' उनकी प्रतिभा और कला' इत्यादि पुस्तकों का भाग लिया जा सकता है ।

मूर, सुलमी और भीरा पर विचार करने समय भी ध्यानोचकों का ध्यान संगीत की और घाहूट हुआ । फलतः उन्होंने सर्वेस म उनके कवीत-कीशाल पर भी विचार कर लिया है । डा० बीनचवानु मुक्त हुए 'घण्टछाप और बस्तन सम्प्रदाय' डा० मुन्शीराम गर्मा 'खोम' द्वारा 'मूर-खोम' डा० हरबंशलाल शर्मा द्वारा 'मूर और उसका साहित्य' श्री शिलरचन्द्र जीन द्वारा 'मूर एक अध्ययन' श्री बजरत्न दास द्वारा 'मीरा-भाषुयी' इत्यादि पुस्तकों इस सम्बन्ध में इष्टम्भ हैं ।

इसके भी नर्मदेरवर शत्रुबेदी श्री 'संगीतज्ञ कवियों की हिन्दी रचनाएं' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई है जिसमें इत्यादिनामक श्रावण द्वारा 'राय-शत्रुबेदी' से लुत्तरी मोपाल नायक तानसेन स्वामी हरिदास और बंजु की कुछ सांगीतिक निबन्ध भाषी की (अनेक पाठ-समुद्रियों के साथ) उद्धृत किया गया है । जो रचनाएं भी लगी हैं उन पर राय-नाम का उल्लेख तक नहीं है । फलतः इस दृष्टि से वे ही पर के साथ के अनुकूल समुचित राय-बचन का अनुशीलन हो सकता है और न राय शत्रुबेदी के अनुकूल मूल बात की उपलब्धि । 'कवि तानसेन और उनका काव्य' शीर्षक उनकी एक और पुस्तक भी (प्रथम संस्करण संवत् २०१३ विक्रमी) प्रकाशित हुई है । इसमें 'शत्रुबेदी के कवि' शीर्षक से तानसेन के जो कवि प्रकाशित हुए हैं उन पर भी राय-नाम का उल्लेख नहीं है ।

तानसेन तीन वर्ष पूर्व लगनरु बिरबन्धरनाथ द्वारा डा० उपा गुण का साथ प्रकाश 'हिन्दी के कृष्ण भक्तिवासीय काव्य में संगीत' पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ था । यह प्रकाश घाट अध्यायी म विमल है । मेनिता से इसमें बन्धन सम्प्रदाय के घण्टवंत धामे शाने घण्टछाप के घाठों कवियों, दौड़ीय सम्प्रदाय के घण्टवंत कथाकार बट्ट मूरदास मन्तमोहन राधाबन्धनीय सम्प्रदाय के श्रुतश्रिषण हरिरामप्रसाद हरिदासी सम्प्रदाय के हरिदास स्वामी बिदुधन किशुत विहारिन शान तथा निम्बार्क सम्प्रदाय के श्री बट्ट और परमुरात के पर-साहित्य का सांगीतिक दृष्टि से मूल्यांकन लिया है । इन सम्प्रदाय मुक्त कवियों के घनि रिल्ल कीराबाई तथा धानबन्ध जीने दो-नाम सम्प्रदाय-मुक्त कवियों के पर साहित्य को भी उपायुक्त दृष्टि म करणा क्या है । इसमें लम्बे नहीं कि अनु लम्पान भी दिया में पर लप लकीत प्रवास है बिन्धु इन प्रकाश में एक ऐसी पुनि है जो किसी भी संगीतज्ञ का ध्यान मुगल ही धारमी और घाहूट कर लेगी । पर

दृष्टि है इस विषय का उपछा कि मुराराम मन्दारम बराबर बट्टे हिन हरिदास हरिदास मीराबाई इत्यादि के युग में सर्वोत्तम का मकार्य और प्राथमिक स्वयं क्या था ? यह टीका है कि इन कवियों ने अपने देश के लिए जिन राव-वीरवर्मा का बना है वे राम धार भी पाये-बनाये जाने हैं किन्तु धार का सर्वोत्तम रीति, भारतीय संघोत्त से तो कविताओं में एककपना स्थापित किये हुए है परन्तु मति काय के संघोत्त में प्राथमिक संघोत्त बहुत अधिक बनस गया है। यद्यपि काय के नाम के ही हैं किन्तु उनमें प्रकृत हस्त बाने स्वरा का कोमल तीव्र स्वयं धारका उनका आह्वान्य वाह्वान्य सम्पूर्णत्व वाह्वान्य मकार्य पापम-मलय इत्यादि धार सर्वथा नहीं मही है जो मतिराय में या धार जब तक उन युग के संघोत्त का मय्यत स्पष्टीकरण नहीं हो जाता तब तक उन युग के राधा का नाह-स्वयं भी धारका ही रहता और जब तक तन्वापीन राधा का नाह-स्वयं स्पष्ट नहीं होगा तब तक कवित्विक रूप में यह सिद्ध नहीं किया जा सकता कि उन कवियों ने अपने देशों में संघोत्त भाषा और नादान भाषा के सुन्दर सम्मेलन द्वारा जिन धनुषम कला-कृति का निर्माण किया था १

अन्तु कुछ सामग्री यत्र-तत्र निस्सन्देह बिखरी पड़ी है, किन्तु धार का रीतिराय के सर्वोत्तम और सर्वोत्तम का समन्वित दृष्टि से सम्मेलन नहीं हुआ है। अन्तु यह दृष्टिकोण सर्वथा नवीन है - धार कारण है कि हिन्दी में इन विषय की पुस्तका का धारा है।

संघोत्त और काव्य की वाग्मयिक धारणा का तो अभी स्वीकार करने हैं किन्तु इस धारणा के कारण हिन्दी-काव्य का जो विविध विभाग हुआ मयका मीति-काव्य में ही जा विभक्तताएं उत्पन्न हुईं उनका न ता वैज्ञानिक रूप से विवेचन हो गया और न समुचित भूषण हो।

हिन्दी-काव्य से लेकर एक धर्मस्य अराहुरण दिये जा सकते हैं जिनमें मयाय के लया का समावेश बड़ा ही मार्मिक है किन्तु सर्वोत्तम काय के धारा में एनी मार्मिक धर्मिष्ण्यता को लोप मय्य नहीं पाठ १ को एक अराहुरणों से यह काय और भी स्पष्ट हो जायगी। कविता मेतारिनी की यह उपमा देखिए

‘माल मकरजल के नितरै को बंधन की,

बीबी बडि बार लुखवति बर नारी है।

बंधन लकोट, मनि कंधन तिनार विन

लोहत प्रकैली बहु लोभा क तिवारी है ॥

मेतारिनी लकोट को लकोट की विचारों लकोट

तात गीत बिना एक रूप के हुरति मन
परवीन पाइन की ज्यों बलापबारी है ॥”^१

सद्यम्नाता काविरा के आभरणबदनमुक्त सौन्दर्य की यह उपमा सहृदय-
पायन के कौशल द्राघ राय-सौन्दर्य का स्पष्टीकरण कैसा और किस प्रकार हाता
है वे ही इस उपमा का वास्तविक ध्यान उठा सकते हैं।

मूर-साहित्य में तो एत मारिक प्रसंग भरे पड़े हैं किन्तु संगीत-आन के समान
में पाठक तथा आलोचक का इनके समास्वादन से संबंधित रह जाना पड़ता है।
मूर का यह पर बेलिए

‘बंसी बन कान्हु बजावत ।

भाई सुनो जवननि मधुरे सुर राग रागिनी स्यावत ॥

सुर भुति तात बंजान धमिति धति तप्त धनीत धनापत धावत ।

कनु कनु कर कर कैय बाबि मनि बरन पयोधि धभुत धपजावत ॥

मनो मोहनी भव परै हरि मुरली मोहन मुख मयु प्यावत ।

सुर कर भुति बत किये राय रत धबर सुबारत मदन बजावत ॥

बहा मनोहर नाद सुर बिर कर मोहै मिलि मरम न पावत ।

बानहु मुख मिठाई कै पुन कहि न सकत मुख सीस दुतावत ॥”^२

इस पर की झूमरी पल्लि का अर्थ सम्यक्-व्येन स्पष्ट करने के लिए काय
से पर्यायवाची शब्द चुन लेना अथवा संवीन की मुनी-मुनायी बाना के साधार पर
उसकी व्याख्या करना पर्याप्त न होगा। ‘मूरप-बदलन म इस पर की व्याख्या करने
हुए जो कुछ कहा गया है वह इस पॉल्लि की संगीत-व्यवस्था को स्पष्ट करने में तथा
यह नहीं होगा। यह ठीक है कि संवीन में बार्दन धुनिया मानी गयी है किन्तु मूर
और धुति में क्या भेद है बन्दित किसे कहते हैं तथा धनीत और धनागन इत्यादि
संवीन के पारिभाषिक शब्दों का विशालमरु रूप में मकमें बिना इन पल्लि का पूरा
ध्यान नहीं उठया जा सकता।

१—कविता रत्नाकर प्रथम संगीतरत्न झूमरी तरंग १५६-तरंग १४ वृत्त ११
संगीतरत्न उपाधकर प्रथम

२—मूर बदरान झूमरी बाबरी वर तरंग ६ वृत्त ३ संगीतरत्न तागत
अनन्तरीन, बाबरी तरंगरत्न

प्रसाद ने 'कामायनी' के चिन्ता समं में कहा है

"महा-मृत्यु का विषम सम सरो

प्रखिल स्पन्दों की तु माय

तेरी ही विभूति बनती है

मृष्टि तथा होकर अभिसाय ।"१

हिन्दी के प्रबिन्धों में पाठक यही नहीं जानते कि सम क्या बसा है फिर विषम सम को समझना तो और भी देरी और है। ताल क्या है ताल में मय का संचार किस प्रकार होता है इन सब के द्वारा ताल-बन्ध के आवरण से सम में जो एक अनिर्वचनीय आनन्द उत्पन्न होता है अथवा विषम सम के द्वारा इस आनन्द में अपस्थित होने वाले इन्धन व्याप्तान से श्रोताओं के आनन्द में आनन्द की जो हिमोद उठती है उसे समझे बिना प्रसाद की इन पंक्तियों की मार्मिकता को मत्ता कैसे हृदयमय किया जा सकता है ?

प्रसाद का यह गीत भी बहुत प्रसिद्ध है

"बीती बिनाबरी जाग रो

घम्बर पनपद में डूबो रही—

तारा घट ऊया मागरी ।

कण-कुल कुल-कुल सा बोल रहा

कितलय का धंघल डोल रहा

तो वह ललिका भी भरलाई—

मधु मुकूल नवल रत गागरी ।

घबरो में राग घमन्द विदे

घलकों में बलपब हार किये—

तू घब तक सोई है घाली

घाँकों में भर बिहान रो ।"२

इस गीत से बहुत से पाठकों की यह धारणा हो जाती है कि बिहाय घायद मात्र-काल में गाया जाता है, किन्तु ब्यर्थता यह है कि बिहाय रात्रि के त्रितीय प्रहर का राग है। इसके स्वरों की विह्वलता से बिभोग की मार्मिकता अभिव्यक्त होती है। जो लोग जानते हैं कि बिहाय का विशिष्ट स्वर-विषयान किस प्रकार मार्मिक करता है तथा उसका प्रभाव कितना अत्यन्तनी होता है वे ही समझ

१—कामायनी चिन्ता समं पृष्ठ-२७ द्वितीय संस्करण

२—अवसंकर प्रकाश कृत 'नहर' पृष्ठ-११ अतुल्य संस्करण

सकते कि रात भर प्रिय की प्रतीक्षा के परवान्—“तू सब तक सोई है जाती
 बीसा में नरे बिहाग री में कैसी ममस्पर्शी व्यंजना छिपी है।
 'सावैत' की इन पंक्तियों की सामिप्यता देखिए

‘छोर छोर प्रजातियां होने लगीं
 प्रमदता की म्नातियां बोन लगीं।
 बोन भैरव-राय कहता है इसे
 भुक्ति-पुष्टी त प्राण र्पत है बिले ?” १

बकि ने यहाँ 'भैरव' शब्द का विशेष प्रयोग किया है। भैरव शब्द का
 नामकरण उसकी भोदभना प्रथवा भयानकता के पुन पर निर्भर नहीं है। भैरव
 शब्द का व्युत्पत्त्यर्थ है 'भयंकर'। इसी दृश्ये प्रथ के कारण स्मेय का सहारा लिया
 गया है और स्मेयात्मक सौन्दर्य की अभिव्यंजना के लिए ही बकि ने प्रथ के द्वारा
 भैरव शब्द की प्रशंसा की है। इस शब्द की उन्नति भगवान् शिव के प्रथम मुन
 में मानी जाती है। भैरव भगवान् शिव का भी नाम है। इसी कारण के आधार
 पर हमका भैरव नाम गला गया। यह प्राण-बासीन मन्त्रिप्रवाश शब्द है जग इतने
 ज्ञान और शक्ति-आवना की अभिव्यंजना सम्यक्प्रयोग हो जाती है।
 यगोपग' का निम्नांकित शीत भी इच्छ्य है

“बदन का हुलना हो तो नाम ।
 ना या कर रोती है मेरी हुलन्नी की तान ।
 भीड़ बतक है कलक हमारी, छोर मनक है हूक
 जानक की हुत हृदय हृति को तो कोइल की कूक ।
 शय है लब कृषिदल साहस
 बदन का हुलना हो तो नाम ।” २

यहां भी बकि ने मंवीर की माया में यगोपग की सामिक वेदना को प्रति-
 व्यक्त किया है किन्तु नाम भीड़ समक शय मुछंता जैसे मंवीर के पारिवायिक
 शब्दों के विशेष प्रयोग को अभी ज्ञानि मयम बिना इस शीत के म्नाम्बारन में भी
 बाधा उत्पन्न होती है।

✓ यह भी बिचारणीय है कि मूर तुमकी भीय यनामक इत्यारि में प्रथमे
 बरों का विविष्ट शय गविनियों में क्या बांधा है ? किसी विशेष पर को किसी

१— सावैत — प्रथम शय कृष्ट १, कतुर्बावति

२— 'यगावरा'—कृष्ट १८ कतुर्बावति

विषय राग के सम्बन्ध में उक्त कथा उद्धृत की गयी है इस उद्धृत में के कही तरह सफ़्त हुए ? हिन्दी के धातोबन्ध कथा के इस महत्त्वपूर्ण पक्ष की ओर से प्रायः उदासीन हैं। यद्यपि उन्होंने इन कवियों के वाक्य की समीक्षा करने हुए रम-निष्पन्न की दृष्टि से विभिन्न पदों का राग-रागिनियों से सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न किया है किन्तु इस सम्बन्ध में जो अभिमत प्राप्त हैं वे प्रायः भ्रामक हैं। हिन्दी के कवि और धातोबन्ध प्रायः सगीत के विषय को उक्त तो मत्त हैं, किन्तु के त्रिज प्रकार उक्त प्रतिपादन करने हैं उक्त स्पष्टीकरण के स्वरूप पर या तो जटिलता उत्पन्न हो जाती है या फिर विषय हान्यकारक बन जाता है। उदाहरणार्थ श्री रामकुमार वर्मा ने हिन्दी-साहित्य के धातोबन्धनात्मक इतिहास (प्रथम संस्करण) के पृष्ठ-४६१ पर तुलसी के मीन-काम्य की संज्ञा तात्पर्यता पर विचार करने हुए लिखा है "सगीत का आधार होने के कारण राग रागिनियों का ही प्रयोग किया गया है। हृदय और करुण की भावना से जयन्ती केदारा सोरठ और बासावरी मीन की भावना में मारु और बासावरी शृंगार की भावना में सतिश मीरी बिसाबस मूहो और बसंत गान्ध की भावना में रामकमी वर्गन में विभास बन्ध्याण महार और टोड़ी का प्रयोग है।"

इसी पृष्ठक में मूर के पदों के सम्बन्ध में ये विचार उक्त हैं

रम-निष्पन्न में प्रधानतः मूर ने त्रिज राग रागिनियों का बगल किया है उक्त मतेय से परिचय इस प्रकार है

शृंगार रम—सतिश मीरी बिसाबस मूहो और बमल ।

करुण—जयन्ती कदारा बमारी और बासावरी ।

हास्य रम—टोड़ी सोरठ मारु ।

गान्ध रम—रामकमी ।

वर्गन—विभास मरु मारु बन्ध्याण महार । १

डा० वर्मा ने एक जगह टोड़ी को हास्य-रम का राग माना है और दूसरी जगह यह कहा है कि बगल में टोड़ी का प्रयोग होता है। सगीत की दृष्टि से सोरठ विषय शृंगार प्रधान राग है किन्तु इसे हास्य रम का राग बनाया गया है। इसी प्रकार बिसाबस को मान शृंगारप्रधान मानना भ्रामक है।

आचार्य शुक्ल ने यद्यपि मूर, तुलसी और मीरा की मुद्रबन्ध से प्रशंसा की

सन्धि कि राव भर दिय की शरीरों के परवान्—“तू धक ठक सोई है जाती
जाँचो में भरे बिहान री में भैसी मन्सपरीं ब्यजना छिपी है ।

‘साकेत’ की इन पंक्तियों की मायिका धियाए

डोर डोर प्रभातियां ह्येन लयीं
धलबता को म्मानियां बोने लयीं ।
कोन भैरव-राव कहुता है इले
बुक्ति-पुदों स प्राल बंत है किले ?” १

कवि ने यहाँ ‘भैरव’ शब्द का श्लिष्ट प्रयोग किया है । भैरव राव का
नामकरण उसकी भीदकता धयवा भयानकता के गुण पर निर्भर नहीं है । भैरव
शब्द का व्युत्पत्त्यर्थ है ‘भयंकर’ । इसी दूसरे अर्थ के कारण शब्द का सहाय लिया
गया है और श्लेषात्मक शब्दों की अभिव्यंजना के लिए ही कवि ने प्रत्य के हाउ
भैरव राव की प्रशंसा की है । इस राव की उत्पत्ति भयवान् शिब के प्रथम मुख
से मानी जाती है । भैरव भयवान् शिब का भी नाम है । इसी कारण के आधार
पर इनका भैरव नाम रखा गया । यह प्राण काशीन लक्ष्मिप्रकाश राव है जब इससे
उत्पन्न और शक्ति-भावना की अभिव्यंजना सम्भक्कपेण हो जाती है ।

‘मसोबरा’ का निम्नांकित वीर भी इष्टम्भ है

“बदन का हुंतना हो तो मान ।
गा गा कर रोती है मेरी हुतग्री की तान ।
बीड़ धरक है कतक हमारी, धीर मनक है हूक
बातक की हुत हुदय हुति को तो सोइल की कूक ।
रान है जब मूचिदत धाह्यल
बदन का हुंतना ही तो मान ।” २

यहाँ भी कवि ने संवीर की भाषा में मसोबरा की मायिक वेदना की धर्म
व्यक्त किया है किन्तु तान बीड़ मनक राव मुहंनो जैसे संवीर के पारिभाषिक
शब्दों के विशेष अर्थों को जमी-जानि नमन्ने बिना इस श्लेष के रसाभारण में भी
बाधा उपस्थित होती है ।

✓ यह भी विचारणीय है कि मूर, तुमसी धीर मनान्ध इत्यादि में अपने
शरीरों की विशिष्ट राग-मायिकियों से क्यों बाधा है ? किसी विशेष पर को किनी

१—‘साकेत’—प्रथम छंद कच्छ १ अतुर्भावति

२—‘मसोबरा’—पृष्ठ १७ अथावति

विषय राग के सम्बन्ध रखने में उनका क्या उद्देश्य था तथा यान इस उद्देश्य में वे कहां तक सफल हुए ? हिन्दी के घासोचर बना के इस महत्वपूर्ण पक्ष की ओर से प्रायः उदासीन हैं। यद्यपि उन्होंने इन कवियों के वाक्य की समीक्षा करते हुए रस-निरूपण की दृष्टि में विभिन्न पदों का राग-रागिनियों से सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न किया है किन्तु इस सम्बन्ध में जो अभिमत प्राप्त हैं वे प्रायः भ्रामक हैं। हिन्दी के कवि और घासोचर प्रायः मंगीत के विषय का उल्लेख तो करते हैं किन्तु वे त्रिभुज प्रकार उत्सृष्ट प्रतिपादन करते हैं उनसे स्पष्टीकरण के स्थान पर या तो अज्ञानता उत्पन्न हो जाती है या फिर विषय हान्यास्पद बन जाता है। उदाहरणार्थ श्री रामकृष्ण बर्मा ने हिन्दी-साहित्य के घासोचनात्मक इतिहास (प्रथम संस्करण) के पृष्ठ-४६१ पर तुमसी के गीति-काव्य की सर्गात्मकता पर विचार करते हुए लिखा है "मंगीत का आचार होने के कारण राग रागिनियों का ही प्रयोग किया गया है। हृद्य और वरुण की भावना में जयजमी केशरा मोरठ घोर आमाबरी और भी भावना में मारु घोर वायूरा गृंगार की भावना में समिध गीरी बिनाबल मूहो और बसंत घान्त की भावना में रामकमी बर्गन में विमास बस्याण मस्तार और टोड़ी का प्रयोग है।"

इसी पुस्तक में मूर के पदों के सम्बन्ध में ये विचार उपलब्ध होते हैं

"रस-निरूपण में प्रधानतः मूर ने त्रिभुज राग-रागिनियों का वर्णन किया है उनका मञ्जेष में परिचय इस प्रकार है

गृंगार रस—समिध गीरी बिनाबल मूहो और बसन्त ।

करुण—जयजमी केशरा बनाभी और आमाबरी ।

हास्य रस—टोड़ी मोरठ शरंग ।

घान्त रस—रामकमी ।

बर्गन—विमास नट मारंग बस्याण मस्तार । १

डा० बर्मा ने एक जगह टोड़ी को हास्य-रस का राग माना है और दूसरी जगह यह कहा है कि बर्गन में टोड़ी का प्रयोग होता है। मंगीत की दृष्टि से मोरठ विषय गृंगार प्रधान राग है किन्तु इसे हास्य रस का राग बनाया गया है। इसी प्रकार बिनाबल को मात्र गृंगारपरक मानना भ्रामक है।

घासोचर पुस्तक में यद्यपि मूर, तुमसी और मीरा की मुक्तबन्ध से प्रशंसा की

है फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि शास्त्रीय संगीत में उनकी अभिव्यक्ति नहीं थी। हिन्दी का पद-साहित्य यद्यपि राग-रागिनियों पर ही आधारित है, किन्तु संगीत के पंच पांच देखकर सुनस भी को हठयोग का स्वरूप हो जाता था। अतः उन्होंने राग-रागिनियों की विवेचना ही उचित नहीं समझी।

उपर्युक्त आलोचनाओं में कुछ सांगीतिक समीक्षा का अभाव विशेष निम्न नीय नहीं है। क्योंकि आलोचक का दृष्टिकोण जब मात्र साहित्यिक होता है तब उसकी आलोचना के मान के ही नहीं होने को किसी अन्य दृष्टि से साहित्य को परखने वाले व्यक्ति के हो सकते हैं। अतः हिन्दी-साहित्य में सामौलिक दृष्टि से बलते-बलाते को बलते कह भी गयी हैं उनका उद्देश्य किसी सांगीतिक मस्यौदा की स्थापना नहीं है। ऐतिहासिक गीतिकाव्य के मूल्यांकन में भी कठिनाय महत्वपूर्ण बातें इही कारण हुए गयी हैं। असाहचर्यार्थ यह ठीक है कि राग-रागिनी-मुक्त ऐतिहासिक पद-साहित्य की बेपत्ती काय हिन्दी के ऐतिहासिक में आकर लौच रूप में बहती हुई दृष्टिकोणर होती है और इसका कारण भी तत्कालीन राजनीतिक सामाजिक एवं साहित्यिक परिस्थितियाँ ही हैं। किन्तु इस बात पर विचार नहीं किया गया कि सूर, तुमसी और मीरा के युग में जो पद-साहित्य संगीत की प्रपञ्च-शैली से प्रभावित था वही ऐतिहासिक में अभाव-शैली से प्रभावित हो गया था अतः गीतिकाव्य के रूप में भी जोड़ा-बहुत परिवर्तन हो गया। इस परिवर्तन के परिणामों पर भी हिन्दी-साहित्य में विचार नहीं हुआ। ऐतिहासिक कविता सर्वत्र हिन्दी की परम्परागत पद-शैली से नहीं बाले तथापि ऐसे अनेक कविता-सर्वत्र ऐतिहासिक में निम्न गये अनेक अन्तर्गत की मानिक अभिव्यक्ति है और जो आज भी मायकों द्वारा पामे जाने हैं। उनकी कपरेला अथवा उनका चिन्मविद्याल जाहे पलों बला न हो फिर भी गीतिकाव्य की प्राय सभी विशेषताएँ उनमें सम्पूर्ण रूप से व्यक्त हैं। इन कविता-सर्वत्रों को शास्त्रीय संगीत के नियमानुसार विभिन्न राग-रागिनियों में गाया भी जा सकता है।

एक बात और भी है। ऐतिहासिक काव्य को यदि परम्परागत प्रसिद्ध

१—'संगीत के पंच पांच देखकर हठयोग पार जाता है। जिस समय कोई बला अन्त बला वाला बाल के लिए धाक प्रयुक्त नुह कलताता है और 'मा-मा करके बिकल होता है उस समय बड़े-बड़े धोरों का शैव्य दूर जाता है—विन-विन नर बुधवाप रहन वाले बड़े-बड़े धामठियों का धासन दिय जाता है।''

आचार्य भुवण हठ विज्ञानावलि भाग १ पृष्ठ ३३ सस्करण सन् १९५०

अपाना में निभाया जाय तो दाँता में अद्भुत माष-नाम्य भी दृष्टिमान होता है ।
उदाहरणार्थ मतिराम का यह कवित्त देना

“आवक तिनार घौठ घबन थी लीक सोह
 लंबे न घनीछ लोक-लीक न बिचारिए
 बरि 'मतीराम' छातो नज - एत जगमये
 इममय पग लूब मय में न धारिए ।
 कतके उधारत हो पतक पतक यार्ते
 पतका र्व पौडि नन राठिको निवारिए
 छटपटे रीन कुस बात न कहत बन
 लटपट पेंच तिर-यास के लुपारिए ।” १

इसे रामवर्मा के अशोभित्तिग परम्परागत अमान से अमाने पर उद्युक्त
 कवन स्पष्ट हो जायगा

‘द्विपरो रन के जाय बाय

लुपर बतुर लुरजनवा बसना जोरहि नीर छाये ।

दिन नून मात घबर पर अंजन आवक तिलक लनाम ॥

हरि रन कवन सतो बड़बागिन तन मन पन शोद्याबर करि छाये ।” २

निरक्षय ही कविता का राम संदीप के संवेदों में प्रमाक्षित होता है । गद्य
 में शब्द संवेद की जो कमी रहती है उसी की पूर्ति काव्य में छत्र विधान द्वारा
 हुमा करती है । गद्य की पृष्ठकों की तरह पद्य की पृष्ठकों को पढ़ा नहीं जाता ।
 कविता में भावों का समस्यगी संवेद भाषा के समीप संदीप से अलग होकर
 पूर्ण रूप से प्रस्फुटित होता है । दोनों के मेल से ही बिम्ब का अन्तराल संदीप
 कविता में सुश्रुति होता है । प्रस्तुत प्रबन्ध में इना दृष्टिकोण की स्थापना का
 प्रयत्न है ।

इस अन्वय प्रबन्ध की सीमाओं का मुझे अभी-भी ज्ञान है । अपने
 सीमित रूप में यह अशोभित्त के सम्मुख विषय का सम्यक उद्घाटन कर सकेगा

१—‘मतिराम-इन्ध्यावती’, पृष्ठ २६७-२६८ तृतीय संस्करण सम्पादक कृष्ण
 बिहारी त्रिपाठी बी० ए० एल० एल० बी०

२—इत्यम्—‘संवेद घबना, पृष्ठ-१४ द्वितीय संस्करण लेखक—डा०
 विश्वम्भर नाथ अहिर

मह बाबा तो मैं नहीं कर सकती किन्तु इनका विश्वास मुझे है कि इनसे न केवल रीतिकामीन काव्य और संगीत के आदान प्रदान की भाँकी मिलेगी अपितु संगीत और काव्य के सम्बन्धाभित सम्बन्ध का भी असम्बन्ध आनास मिल सकेगा। प्रस्तुत प्रबन्ध का स्थूल रूप यही है। इस लक्ष्य की परिज्ञानजन्य प्रतिक्रिया कविता और संगीत दोनों के लिए मंगलकारिणी सिद्ध हो सकेगी।

यह अन्वेष-प्रबन्ध दो भागों और तीन परिच्छेदों में विभक्त है। सूक्तिकालखण्ड में तीन परिच्छेद हैं जिनमें प्रथम परिच्छेद विषय प्रवेश और उसके क्षेत्र-विस्तार से सम्बन्धित है। प्रतिपाद्य विषय का सम्बन्ध संवत् १७ • से ११ • तक विस्तृत उस काल के पर-साहित्य से है जो हिन्दी में रीति-रूप के नाम से अभिहित है। रीतिकामीन सांघीतिक और साहित्यिक प्रवृत्तियों के सम्मिश्रण का मूल्यांकन ही इसका मुख्य उद्देश्य है अथ प्रथम परिच्छेद में काव्य और संगीत की सामान्य सम्प्राकृतिक विशेषताया के उल्लेख के साथ प्रबन्ध आरम्भ हुआ है। इसके 'क' भाग में संगीत की प्रस्तावना है जिसका एकमात्र उद्देश्य यह दिखाना है कि संगीत और जीवन का पारस्परिक सम्बन्ध कितना घनिष्ठ है। संगीत की इस व्यापकता में मानव की सामाजिक और आध्यात्मिक प्रवृत्ति को ही नहीं बल्कि आध्यात्मिकता को भी सहज ही आरपछान कर लिया है।

✓ इस परिच्छेद का 'ख' भाग काव्य और संगीत के सम्बन्धाभित सम्बन्ध को स्पष्ट करता है। यह सम्बन्ध अतीव महत्वपूर्ण है। भारतीय और पारश्चात्य काव्य-शास्त्रियों ने इनो कारण किमी-न-किसी रूप में कविता और संगीत के अनुपूरक सम्बन्ध को स्पष्टता स्वीकार किया है। कविता में संगीत का सामाजिक या तो आंतरिक या फिर आंतरिक और बाह्य दोनों प्रकार के संगीत के रूप में रह कर रहा है। यह लक्ष्य इस अन्वेष-प्रबन्ध की वैश्वीय स्थापना का एक अपरिहार्य अंग है।

भारतीय संगीत की प्रायः सभी प्रमुख शाखाओं का उल्लेख इनके परिच्छेद में किया गया है। यह परिच्छेद तीन भागों में विभक्त है। 'क' भाग में संगीत का पारिभाषिक अर्थ और भारतीय संगीत की दो प्रणालियों का उल्लेख है। इसके अनतिरिक्त भारतीय संगीत की परिवर्तनशीलता को भी यही स्पष्ट कर दिया गया है। 'ख' भाग में भारतीय संगीत का रीतिकाल से पूर्ववर्ती मध्यम इतिहास बर्णित है और 'ग' भाग में रीतिकाल ने पहले की भारतीय संगीत की प्रमुख वैधियाँ का आलोचनात्मक अध्ययन है।

1. तीसरा परिच्छेद रीतिकाल में सम्बन्धित है, क्योंकि विभिन्न काव्य-रूपों में

राजिवाय्य का ही समीप में सर्वाधिक सम्बन्ध होता है । इस परिच्छेद के 'क' भाग में राजिवाय्य के स्वरूप का विवेचन तथा 'ख' भाग में राजिवाय्य से पूर्ववर्ती हिन्दी राजिवाय्य का संक्षिप्त इतिहास उल्लिखित है ।

छोट-मछ का आरम्भ बीच परिच्छेद में होता है । यह परिच्छेद राजिवाय्यीय परिच्छिन्नियों में सम्बन्धित है जिसमें लक्ष्मीनारायण राजनीतिक आदिपत्र सामाजिक और आर्थिक परिच्छिन्नियों का उल्लेख करने हुए यह लिखा गया है कि इन सब में प्रेरित होकर राजिवाय्य की समागत प्रवृत्तियाँ किस ढंग में व्यक्त हो गयीं थी । इस परिच्छेद में आनु-बन्धना भूतिका का विवेचन काव्य और संगीत की समागत प्रवृत्तियों के पारम्परिक साम्य पर प्रकाश डाला गया है ।

बीचवाँ परिच्छेद राजिवाय्यीय समीप में सम्बन्धित है । इसका 'क' भाग में उन युग का ऐतिहासिक आशय बखित है और 'ख' भाग में राजिवाय्यीय समीप की प्रमुख धर्मियों का साम्प्रदायिक अध्ययन उपलब्ध किया गया है ।

छठे परिच्छेद में राजिवाय्यीय काव्य-प्रवृत्तियों का उल्लेख करने हुए उनका लक्ष्मीनारायण संगीतिक प्रवृत्तियों से पारम्परिक सम्बन्ध लिखा गया है जिसका उल्लेख पाँचवें परिच्छेद में हुआ है ।

सातवें परिच्छेद में राजिवाय्यीय छन्द और ध्वनित-सौन्दर्य का संगीत से सम्बन्ध स्पष्ट किया गया है । संगीत में जो ध्यान रखना है वही कविता में छन्द का है । यही नहीं सन्ध्यासङ्घर्षों के समायोग में भी कविता में आत्मिक संगीत की प्रतिष्ठा होती है । अतः इस परिच्छेद में इसी दृष्टिकोण की स्थापना है ।

आठवें परिच्छेद में राजिवाय्यीय प्रमुख काव्य-रूपों का संगीत से सम्बन्ध उपलब्ध है । अध्ययन का मुखिका के लिए इस परिच्छेद को 'क' 'ख' और 'ग' भागों में विभक्त किया गया है । 'क' भाग में राजिवाय्यीय संगीतिक और संगीत के सम्बन्ध का उल्लेख है तथा 'ख' भाग में राजिवाय्यीय प्रबन्धकाव्य और संगीत के सम्बन्ध का व्याख्यापन ।

अध्ययन के परिणामस्वरूप जो निष्कर्ष उपलब्ध हुए हैं वे सब परिच्छेद (उपन्यास) में आ गये हैं और यही सब प्रबन्ध समाप्त हो जाते हैं ।

विषय के प्रतिपादन में एक-एक अनुसंध की जा सकने वाली प्रकरता किन्ती असाध्यनीय वृत्ति का परिचाय नहीं उद्य प्रतिपादन की हार्दिक अष्टा से अधिक महत्त्व न दिया जाता चाहिए । आनु प्रतिपादन की विविध प्रकरता देरी अपनी सुवर्णता है न कि रानी ।

भूमिका-स्वरूप

जस्त में मैं आयरलैंड डाक्टर विस्मर नाथ भट्ट के प्रति कृतज्ञतापूर्ण आभार प्रकट करना अपना परम कर्तव्य समझती हूँ। उन्हीं के स्नेह-मिलन निर्धे एत में मैं साहित्य और संगीत दोनों के विशेष अध्ययन तथा इन अन्वेष प्रयत्न को पूर्ण रूप प्रदान करने में समर्थ हो सकी हूँ।

उन अन्य विद्वानों एवं कुशलियों के प्रति भी मैं हार्दिक आभार प्रकट करती हूँ जिनकी प्रेरणा अथवा कृपियों से मुझे अन्वेषण कार्य में सहायता मिली है।

— शशा मिश्र

भूमिका-खण्ड

विषय प्रवेश और क्षेत्र विस्तार

परिच्छद-१

(क)

हिंदी के गीतिकापीन काव्य-बीमब का स्वरूप ध्यान ही उन प्रकृतियों को धोर ध्यान जाता स्वानाधिक है किनके काव्य तत्त्वामीन काव्य में कमाण्ड विषयताओं का प्राचुर्य हुआ । इतरी कथाबीम में हमारी दृष्टि काव्य धीर संयोग क विरमन समवाय के आंगरिक मोहक स्वल्प स हटकर उम मुप क कविपों क बाह्य-मोन्दयं प्रदान में ही उमन कर रह जाती है । परम्पराण्ड पीठ-दीपी क हाम के कारण इस काम में काव्य धीर संयोग का शास्त्रन सम्बन्ध प्रच्छन्न रूप में सामन काता है । बल्लुन इसका कारण अक्षयन का किमिण्ट दृष्टिकोण ही है । कुछ साहित्यिक दृष्टि स उम मुप का साहित्य धर्मों की कायीपरी काव्य-विम्लाध की पदुता उक्ति की काष्टा लक्ष-विधान की रमनीयता अलंकारों की कनक-दमक आदि स ही धरने पाठकों को आकर्षित करता है किन्तु सांयोगिक अमिररिब के अध्येता से काव्य का बहु धाम्नािक संगीत छिना मही रह सजता किमने काव्य को कना सम्पन्न बनाने में सगन सहयोग प्रदान किया है ।

संयोग से अनुस्यूत काव्य-माबुची मुप-मुप से मानव-हृदय को रमनाकित करती का रही है । हृदय की कम्पनाओं का संयोग माली पक्ष प्रदान कर रेता है । विवाद उन्नाम-विधित जीवन में संयोग प्रस्यूतता के अनुसूत काव्य के कन में विज्मान है किन्तु अनुसूय हात हुए भी यह मानवीय आवेयों का अनुसूतन धारणपूर्ण एव नियम रूप है अठ रीतिक-म बीये कना-मुप में इस धारण्ड सम्बन्ध का किमिच्छ हो जाना कदापि सम्भव मही माना जा सजता । पूर्व मध्यकापीन काव्य में यदि आंगरिक संयोग धीम धीर बाह्य संगीत प्रदान है तो उठर मध्य कापीन काव्य में आंगरिक संयोग प्रदान धीर बाह्य संगीत धीम है । मूर, तुमना मीठ प्रकृति ने अपने पक्षों पर राय-बीरक देकर बाह्य संयोग का स्पष्ट निर्देश

किया है। रीतिकाल के पद-साहित्य में जो परम्परागत धैमी से राग-रामिनियों का निर्देश है परन्तु कवित्त-सर्षियों में अनुकूल राग-व्ययन का कार्य गायकों की इच्छा पर छोड़ दिया गया है। अस्तु, मानव की सहज संवेतानिबन्धि का काव्य से सर्वथा बहिष्कृत हो जाना सम्भव नहीं है। मिलित विषय के साहित्य में इस तत्त्व की अधिकारपूर्ण सत्ता विधिवाच है।

क्षेत्र विस्तार

संगीत कला साक्षर्यम है। संसार का कोई ऐसा भाग नहीं जिसके निवासी किसी न किसी रूप में संगीत से संस्पर्शित न हों। हिन्दू-संस्कृति में तो देवी-देवता भी संभोत के अनन्य प्रेमी बने दिखायी देते हैं। हिन्दुओं के प्राचीनतम ग्रन्थ वेदों में सामवेद का स्थान विशेषतः महत्त्वपूर्ण है। यीता में भगवान् इन्द्र ने अपने भापको वेदों में सामवेद कहा है। इन्द्र की अप्सराओं गन्धर्वों यक्षों प्रबला किन्नरों की तो बात ही क्या भगवान् शक्र का स्वरूप भी बिना बमरु के व्यभूत ही रह जायगा। बिद्या की अविच्छिन्नी सरस्वती तो बीया-मुस्तक-बारिणी है ही भगवान् इन्द्र भी 'सीस-मुकुट कटि काञ्ची' के प्रतिरिक्त 'कर मुरली' के बिना बैठे ही अपूर्ण हैं जैसे वसुध-बाव के बिना भगवान् राम । २

मानव-जीवन की विविधताओं का वात करने वाले संपीत का लक्ष अतीव व्यापक है। केवल मूय और कुक इन दो शब्दों में मानव की कहानी पूरी हो

१—वेदाना सामवेदोऽग्नि (वे वेदों में सामवेद हूँ)

भीमङ्गलवद्वीता अथवा १० श्लोक-२२

२— योऽग्नि प्रीयते देवः सर्वज्ञः पार्वतीपतिः ।

योऽपि पतिरगस्त्योऽपि ब्रह्मनिबन्धितः ॥

सामयौतिरतो ब्रह्मा बीरुतासवता सरस्वती ।

किमन्ये यसर्गवर्षेवदानवमानवाः ॥”

श्री धारु वच कृत संगीत रत्नाकर पृष्ठ-७ आनन्दाभमसंस्कृत
कावाचसी प्रकाशक ३२ किस्तावर १९४२

(सर्वज्ञ पार्वतीपति और ब्रह्मा भीत से प्रसन्न होते हैं। अनन्त योपी-वसि भी ब्रह्मनि के बराब हो गये। अतएव ब्रह्मा कामयाव करती है। सरस्वती बीया में प्रसवत है। अतः प-वर्ष वच वातव मानवादि जन्मों की तो बात ही क्या।)

जानी है। हर्ष अथवा विषाद मुक्त अथवा दुःख जन्म अथवा मृत्यु कैसा भी बखतर ही भारतीय जीवन में संगीत को प्रथम स्थान मिल जाता है। एक घोर परि जीवन के मधुर स्वजन संगीत के हिनोम पर भूमने हैं तो दूसरी घोर दुःख का ताण्डव रण-बाघ के भीरव संगीत से मन्थानि होना है। मधुर शौरियों के प्रभाव से गेना हुआ गियु भी मर जाता है। भारतीय जीवन में संगीत सम्भवन घट्टी में ही घुट जाता है घोर फिर दुःख-मुक्त का घर साथी मनी सकारा में विद्यमान रहकर, महाभावा में भी साथ नहीं छोड़ता।

मानव ही क्या मानवता प्राणी भी संगीत से प्रभावित होना देख जा सकत है। मपरे का बीन में मयंकन विषय मन्नी से मून उठता है धीरे तार पर रीझकर मय प्राणोन्मय कर देता है। बीन सुनकर मंग मन ही पड़ी पागुर करणा रहे किन्तु यह मय है कि धातुनिक मय के अनेक 'डपरी फार्मों में संगीत के प्रान से पगुषा में कुछ धमिक ही दूष प्राज कर विदा जाता है फिर मानव तो स्वभावतः संगीत की ओर उन्मुक्त है।

संगीत मनुष्य के हृदय की नाया है। बिना प्रयत्न करन के लिए संघन से बहकर सम्भवन धम्य कोई मावन नहीं। मऊ के शोमनम भावों की धमि अंजना का साम्यन बन जाने से यह साम्यस्वार का भी सम्पुनम मावन बन जाता है। संगीत साम्यातिक विषाद मलिनक का प्रसार एवं जीवन के सत्य निभ और सुन्दर की सामिक अभिव्यक्ति है। इसीलिए जीवन की व्याख्या करने वाला काल्य भी संगीत के व्यापक जन्म में सहज ही प्रविष्ट हो जाता है।

१— मशात विषयास्वाशो बालः पर्ये विद्यायत ।

दन्वीतामृतं पीत्वा हर्षोत्थ्वं प्रचरते ॥”

बही पृष्ठ-७

(विषयास्वाश त अतमिन्न पर्ये पर परा राता हुषा बालक भोतामृत पीकर प्रत्यक्त हर्ष को प्राप्त होता है।)

२— “बन वरस्तुण्णहारिबन्ध मृगतिपु पमु ।
सुधो मुग्धकसपीते पीते त्यजति जीवितम् ॥”

बही पृष्ठ-७

(घारधर्ष है कि बन में मूमने वाला मपशाबट पमु होते हुए भी बहेनिय (घिकारी) के संपीत से मुग्ध होकर पीते में जान संका बता है।)

भारतीय दृष्टि से यद्यपि संगीत के समान काव्य स्वतः एक कला नहीं है किन्तु काव्य में भावों को उत्कर्ष प्रदान करने के लिए कवि को विभिन्न कलायों का सहारा लेना ही पड़ता है। कविता का कला-रस नहीं है। इसके समोच से कवि की दृष्टि में प्रेयनीयता भा जाती है। भक्तिकार कवि और संगीत से असंयुक्त एवं कला-संयुक्त होकर कविता बर्षन और विज्ञान से प्रत्यक्ष हो जाती है किन्तु इस प्रकार काव्य में जो शौच्य प्रस्तुत होता है वह उच्च काव्य है साधन नहीं। मनुष्य का मनुष्यत्व प्रदान करने वाले जो भाव हैं वे स्वयं स्फूर्त होते हैं। भावों में प्रभावोत्पादकता उत्पन्न करने का काम सम्मानसम्पन्न कला ही करती है। भावामिष्यक्ति की मार्मिकता बिना बाह्य उपादानों पर निर्भर है वे उपादान काव्य के सुविचारित कलापन पर ही प्राकृत हैं और इस कलापन के लिए संगीत अत्यन्त रूप से उत्कर्षाधिक विद्य होता है।

१—(क) इत्यर्थ—'Greek literary criticism by J D Denniston page 42 edition 1924

(ख) 'Essential to all art, in the first place was said to be the need for taking thought. This it was that distinguished an art like medicine from a sham art like cookery the latter being described as the outcome of mere experiment or rule of thumb. No true artist added Plato whether painter or builder or poet selected or applied his material at random, his effort was always directed towards giving definite and effective form to his work and with that end in view some knowledge of the technique of art was held to be necessary Atkins—Literary Criticism in Antiquity page 53-54 Volume 1 Methuen & Co Ltd.

London

(कहते हैं कि सबसे शुरुत सभी कलाओं के सम्बन्ध में विचार प्रयोजित होता है। इसी से योपधि-विज्ञान जैसी कला का पाकशास्त्र जैसी कला से प्रारम्भ हो जाता है क्योंकि पाकशास्त्र तो मात्र प्रयोग का प्रतिक्रम प्रथम हास्त्यातुरी माना जाता है। प्लेटो ने कहा है कि कोई भी लक्ष्य कलाकार चाहे वह विद्यवार हो प्रथम वास्तु-कला-विद्यार प्रथम कवि प्रथम साधन का बिना विचार

निश्चय ही वाच्य की भावना एक है। वही उमरा प्राण है। विष्णु त्रिन प्रकार प्राण का एक मात्र आधार धरती है। उसी प्रकार वाच्य के मातृ-गर्भ के लिए उमरा कला-गण महत्त्वपूर्ण है। मातृ तो बन्धुन है ही विरलन जो उसकी अस्मिम्पत्ति का हव धराय कवि की निजी विचारणा है। इसीलिए वाच्य के अन्तर्गत ऐसी ही पुस्तकों की गणना होती है जो बन्धु धराय विषय-विशेष के कारण ही नहीं प्रविष्टान के विविष्ट हव के कारण भी आत्म-शोध में समर्थ हैं। ऐसी कृतियाँ निजी अर्थ-विशेष की नहीं अपितु मानव मान का आत्म-प्रदान करती हैं। व्यक्ति-विशेष के विचारों अथवा अस्मिम्पत्ति के माध्यम में तो अन्तर ही लजडा है विष्णु मात्र सर्वत्र एकरत घोर सनाउन है। ये ही मात्र वाच्य और ग्याण के विषय हैं जो अस्मिम्पत्ति-जीवन व समृद्ध होकर मोक्षार्थानुमति के परिष्कार और नृत्ति की अद्भुत अमता प्राप्त कर लेते हैं।

साहित्य और जीवन

संसार की तरह साहित्य भी जीवन से उद्भूत होकर पुन जीवन की ही प्रमाँवित करता है। भाषा के माध्यम से यह जीवन की अस्मिम्पत्ति है और त्रिन जीवन की यह अस्मिम्पत्ति है वही जीवन उसका प्राण भी है। उसके बिना इसका अस्तित्व ही सम्भव नहीं अतः जीवन में ही हमें के लम्ब निश्चित विमर्दे का साहित्य के प्रारक है। इस दृष्टि से मानव-जीवन और साहित्य के विभिन्न षणों में परस्पर आरतम्य स्थापित हो जाता है, क्योंकि दोनों का अंत एक ही है। उपर्युक्त आरतम्य निम्नांकित अनुविषय षणों में स्थापित हगा है।

१. आत्म-अस्मिम्पत्ति की अन्वय जातना।
२. मानव जाति एवं उसके चिन्ताकानारों के प्रति हमारे रतिन।
३. त्रिन अर्थार्थ संसार में हम रर्न हैं अमर्त तथा उन कालानिक अर्थार्थ से हमारा प्रेम त्रिभडा हव लजना त्रिभग्नि कर त्रिवा करते हैं।

प्रयोग अथवा अर्थ नहीं करता। उसके प्रयत्न सर्वत्र वही रहता है कि उसके कार्य को कोई निश्चित और प्रमाँवित अथवा अर्थार्थ प्राप्त हो और इस अर्थार्थ की मूर्ति के लिए कला के अर्थार्थ के अर्थार्थ अर्थार्थ की अर्थार्थ अर्थार्थ है।)

१. अर्थार्थ William Henry Hudson, An introduction to the Study of Literature Page 11 12
Second revised edition.

४ सौन्दर्यपूर्ण अभिव्यक्ति के प्रति हमारा आकर्षण ।

हमारे अन्तर्ग में एक अदृश्य भावना ऐसी है जो उन सब बातों को अभिव्यक्त करने के लिए उत्कण्ठित रहती है जिन्हें हम चाहते हैं सोचते हैं तथा अनुभव करते हैं । इस दृष्टि से साहित्य कवि की भावनामिव्यक्ति है ।

मनुष्य सामाजिक प्राणी है फलतः वह अपनी भावनाओं को लेकर अकेला नहीं रह सकता । अपनी भावनाओं को औरों को बतावे बिना उसे बँन नहीं किन्तु वहाँ वह अपनी बात दूसरों को बताना चाहता है वहाँ दूसरों की बात सुनने के लिए उत्सुक भी रहता है । जैसे हम अपने द्वारा निर्मित किसी सुन्दर वस्तु को दूसरों को दिखाने के लिए उत्सुक हो उठते हैं वैसे ही दूसरों की बगामी हुई सुन्दर वस्तु की प्रशंसा में भी रस लेते हैं ।

हमारा हृदय मानव मात्र के जीवन भावनाओं प्रवेश्य तथा विभिन्न सम्बन्धों में अभिरुचि रखता है अतः साहित्य मानव-जीवन के महान् नाटक की अभिव्यक्ति है । इस बाह्य जीवन का छायाचित्र अन्तर्जगत में भी प्रतिबिम्बित होता है । जीवन का बाह्य रूप उसका सत्य स्वरूप नहीं है । उसकी अन्तःप्रकृति सास्यत भावनाओं और भावनाओं से ही उसका वास्तविक रूप निहित है । सौमिल्य और स्वयं बाह्य रूप एवं अन्तःप्रकृति और अन्तर्जगत के सुन्दर अन्तर्जीवन में समन्वय स्थापित करने का और इस प्रकार पूर्ण सत्य की प्रतिष्ठा करने का अपूर्व कृत्य काव्य और संगीत के द्वारा ही सम्पादित होता है । बाह्य जगत् में सत्य का जो प्रतिबिम्ब भावमान है संगीत से समूह बहिष्ता उसी को साकार बनाती है ।

हमारी सौन्दर्याभिरुचि वस्तुओं को आकर्षक रूप प्रदान करने में उत्सुक रहती है । सौन्दर्य हमें प्रिय है और हम अपने चारों ओर सुन्दर वातावरण बनाये रखना चाहते हैं विभिन्न वस्तुओं को सुसज्जित सुसज्जित तथा व्यवस्थित रूप-रेखा में बैलना पसन्द करते हैं । मानव अपनी भावनाओं को भी स्वभावतः आकर्षक रूप-रेखा और सुन्दर वातावरण के साथ अभिव्यक्त करना चाहता है । इसी लिए पारंपरिक काव्य-शास्त्र में साहित्य भी एक सज्जित कला है । यही वह पवित्र संघम है वहाँ भाव की रचना में संगीत की समुदाय आकर मिलती है । काव्य में रीति मुद्रा अन्तःप्रकृति इत्यादि की आवश्यकता का अनुभव नहीं होता है । इन इच्छितों का सहारा लेकर ही साहित्य अपनी चेष्टा को सफल बनाता है ।

उपर्युक्त चारों आवश्यक-बातों में से सौन्दर्यपूर्ण अभिव्यक्ति साहित्य के प्रकारों में समान रूप से व्याप्त है । वेप तीनों में प्रत्येक इतनी व्याप्त है

कि किसी भी एक में व्यवस्थित हो सम्पत्ति हो सकती है। इतिहास साहित्य में जो य सुधार-निर्माणा दिशा दी जाती है। मानव महा-जात्य मानिसात्म्य इत्यादि काव्य के विभिन्न रूपों में भेद स्थापित करने अपवा बर्णोत्तरण का आधार उपस्थित करते समय यह देवता पड़ता है कि अनुरूप प्रमुख मनोवृत्तियों में से शीत से विषय विभिन्न प्रकार के काव्य-सूत्रन में प्रयोजन महायुक्त हा रही है। काव्यका अति व्यापक वा व्यापक परिबन्धित हाती ही है।

काव्य का क्षेत्र

यदि काव्योत्पत्ती विषयों पर विचार किया जाय तो जीवन में सम्भवतः ऐसी कोई बात नहीं जो काव्य का विषय न बन सके और जैसे जीवन की य बातें बनें हैं वैसे ही काव्य के विषय बनें हैं। इतना व्यापक स्वल्प सम्मुख होने पर काव्य के लिए उपयुक्त विषयों को चुनना अपवा उनका बर्णोत्तरण करना अति कार्य है। तथापि व्यावहारिक उपयोग की दृष्टि से निम्नलिखित पाँच विषय काव्योत्पत्ती बड़े जा सकत हैं।

१. व्यक्ति का पूर्णतः निजी अनुभव जिसमें उसके जीवन की घटनाएँ और बहिर्मुख व्यक्तिगत अपवा मोरनीय सभी बातें आ जाती हैं। यह पूर्णतः अन्तर्गत का काव्य है। गीतिकाव्य का प्राण यही है।
२. मानव का मानवता के नाते प्राण्ड होने वाला अनुभव। उदाहरणार्थ जीवन-मृत्यु का चक्षु ईश्वर की सत्ता और काव्य-विज्ञान पाठ और पुष्प इत्यादि ऐसी ही बातें हैं जो सम्पूर्ण मानव-जाति से सम्बन्ध बड़ी जा सकती हैं। यहाँ विज्ञा व्यक्ति की नहीं समाहित की होती है।
३. व्यक्ति का सब मानव-जाति से सम्बन्ध अपवा अविश्व विरुद्ध की सम्पूर्ण समस्याओं एवं विवादात्मकों के साथ समाका सम्बन्ध।
४. प्रकृति का प्रसार और हमारा अपने सम्बन्ध।
५. मानव की सौन्दर्याविव्यक्ति और उसकी बहु-व्यक्तिक अविश्व-व्यक्तता जो काव्य के विभिन्न रूपों के माध्यम से प्रकट होती है।

साहित्यकार की विविध वैयक्तिक प्रभुमूर्ति एवं अभिव्यक्त्या-संज्ञी-विशेष की दृष्टि से संगीत से समृद्ध विभिन्न प्रकार के रीतिकार्यों का निर्माण होता है। रीतिकार्य में तो संगीत अपना विविध स्थान रखता ही है अन्य प्रकार के कार्यों में भी उचित समाज नहीं रहता।

प्रतिपाद्य विषय

प्रस्तुत प्रबन्ध की कामगत सीमारंभा संवत् १७०० स १९ तक विस्तृत है। हिन्दी का रीतिकाल इसी युग के साहित्य का इतिहास है। इस काब के काव्य (काव्यकाव्य-यद्य) का जिस संगीत से सम्बन्ध-निर्धारण अभीष्ट है वह सांगीतिक दृष्टि से उत्तर भारतीय संगीत है जो अपने विशेषत्व के कारण साहित्यकारों संगीत से पुनः है। प्रतिपाद्य विषय का सम्बन्ध उत्कालीन किसी विशेष कवि से नहीं प्रत्युत उस युग के काव्य (काव्यकाव्य-यद्य) और संगीत के पारस्परिक सम्बन्ध से है, अतः इस छोटेसे की पूर्ति के लिए रीतिकालीन काव्य और संगीत के सम्बन्ध सीमारेखा का मूल्यांकन कवि-कर्म में संगीत-कला के योगदान एवं उस युग की साहित्यिक और सांगीतिक प्रवृत्तियों के सामंजस्य का अनुशीलन वहाँ आवश्यक हो जाता है।

काव्य और संगीत का यह सम्बन्ध विरस्तन है अतः प्रतिपाद्य विषय के स्पष्टीकरण के अभिप्राय से यहाँ काव्य और संगीत के सम्बन्धोत्पादित सम्बन्ध पर विचार कर लेना समीचीन प्रतीत होता है।

काव्य और संगीत का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध

(ए)

संगीत ने मानव जीवन में इतनी व्यापकता से प्रवेश किया है कि मनुष्य जीवन से सम्बन्ध रखने वाली प्रायः प्रत्येक बात से उसका कुछ-न-कुछ सम्बन्ध जुड़ गया है। इतर काव्य भी मानव जीवन की व्याख्या है यदि कुछ घन्टर है तो वह व्यक्ति के माध्यम मात्र का व्यंग्य काव्य और सर्गित दोनों ही की व्यक्तिगत व्यंग्य है।

भारतवर्ष में जातीय जीवन की व्यक्तिगत कलाओं के द्वारा ही व्यक्ति हुई है। भारत की कलाओं का जीवन से गहरा घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। कवि गायक एवं घन्य कलाकारों ने सुग-सुग से मानव जीवन की मायनाओं एवं वित्त वृत्तियों का उत्कार किया है। घन व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों ही वृत्तियों से संगीत और काव्य का घन बहुत कुछ समान हो जाता है।

कविता और संगीत में इतना घनिष्ठ सामन्त है कि घनेक पारचात्य विज्ञान कविता की परिभाषा उपस्थित करते समय उसकी संगीतात्मकता का भी उल्लेख करना घनिबाध समझते हैं। उदाहरणार्थ एडगर ऐलेन पो का कथन है कि संगीत वह मानवशायक विचारों से युक्त होता है तब उसे कविता कहते हैं।¹

“Music when combined with a pleasurable idea is poetry music without the idea is simply music the idea without the music is prose from its very definiteness.”
Edgar Allan Poe

An Anthology of Critical Statements page-69

(संगीत का वह सिद्धि प्रीतिकर कल्पना से संगीत होता है व कविता वह कविता है बिना कल्पना का संगीत मात्र संगीत रह जाता संगीत रहित कल्पना अपनी स्पष्टता घनवा निश्चितता के कारण घन का कारण बन लेती है।)

कारणात्त मे श्री कविता को संगीतमय विचार कहा है । १ वस्तु, पारंपार्य मनीषियों ने प्रायः शौण्डर्य-निरूपण, कल्पना, छन्द इत्यादि के साथ संगीत को भी काव्य के सदस्यों में महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है ।

भारतीय विद्वानों ने मद्यपि स्पष्ट रूप से संगीत का उच्चारण लेकर कविता की परिभाषा नहीं की तथापि भरत ने 'नाट्यशास्त्र' में कृष्य काव्य के सम्बन्ध में कहा है

“मुद्रुमलित परार्थं बुद्धिमात्रार्थहीनं
बुधजनमुक्तपोष्यं बुद्धिमन्मुक्तपोष्यम् ।
बहुरत्नकृतमार्थं लम्बिसन्धानपुरतः
वचति वगति दीर्घं नाटकं प्रेक्षकास्तुम् ॥” २

मामह ने जब शब्दार्थ-बुद्धि रचना को काव्य स्वीकार करते हुए काव्य के समस्त शौण्डर्य को उसी पर प्राकृत किया तथा प्राचार्य कुम्भक ने काव्य-शौण्डर्य के पर्याय रूप में जब बौद्धिक विज्ञान की स्थापना की तब प्रकारान्तर से उसमें संकी-

१ “For my own part, I find considerable meaning in the old vulgar distinction of poetry being metrical having music in it, being a song .. . A musical thought is one spoken by a mind that has penetrated into the inmost heart of the thing; detected the inmost mystery of it. T CARLYLE
An Anthology of Critical Statements Page-61

(जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है मुझे कविता की इस प्राचीन तथा अस्माजित परिभाषा में विशेष धर्ष दिक्कारी होता है कि वह प्रभावशाली होती है, उसमें संगीत का पुत्र होता है और वह एक पीत होती है । ‘संगीतमयक विचार प्रकटा भावना जैसे अस्तित्व से निःसृत होती है जिससे वास्तु के अन्तः तम में अविद्य होकर उसके गूढ़ रहस्य का पता लगा लिया है ।)

२ श्री भरतमुक्तिप्रदीप्त ‘नाट्यशास्त्रम्’ पृष्ठ—२१५ ॥ (११२॥१२१ ॥)
शौण्डर्य-संस्कृत-सीरिज प्राथिम बनारस सिटी

(मुद्रुमलित शब्दार्थ से मुक्त, बुद्धि शब्दार्थ से हीन बुद्धिमानों को बुद्धि देने वाला, बुद्धिमान भावियों द्वारा किये हुए कृत्य से मुक्त, शृङ्गारदि श्लोक रचों को श्रुति से मुक्त, लम्बियों के सम्बन्ध से सम्पृक्त नाटक अथवा में वार्तिकों के बोध होता ।)

ध्वनि और मय का उपयोग कविता और संगीत में समान रूप से होता है। संगीत जिन भावनाओं की मुख्य और निरुपकार व्यक्तिकरता है उन्हीं को कविता साकार रूप प्रदान कर देती है। मूर के अनेक पद अपनी मार्मिक व्यक्तिकरता और असाधारण शब्द-योजना के कारण तो धाँसाधकारी हैं ही उनकी भावानुभूत रस-योजना भी काव्य के भाव-संभव की समृद्धि में अत्यधिक सहायक हुई है। उदाहरणार्थ निम्नांकित पद श्रेष्ठ हैं

१ हरि परबत बहुत दिन जाए ।

कारी मंडा बलि बाहर की नैन नीर भरि जाए ।

अमर-जीत-सार पृष्ठ—११४ तृतीय संस्करण

२ निख दिन बरसत नैन हमारै ।

तथा रूति बाबत आतु हय पर जब ते म्हाग तियारै ।

वही पृष्ठ—१२१

३ जब ये बरसाऊ बरसत जाए ।

अपनी प्रबधि जाति नदनरत परनि बचन प्रत जाए ।

वही पृष्ठ—१०६

अपभ्रंश पदों के लिए मूर द्वारा यश्वरत रस का अथवा लोक-समझकर ही हुआ है। इस रस के स्वरों की धार्मिकता मनुष्यता मुकुनायता व्याकुलता और बेदना में रूढ़ कर मूर की भावनिष्पत्ति विमुक्ति का में प्रभावशालिनी हो उठी है।

ऐसी परिस्थिति में पाठक को काव्य द्वारा जो आनंदानुभूति होती है उसमें कविता के साथ-साथ संगीत का भी बहुत कुछ हाथ रहता है। कविता जब तक बायीं नहीं जाती तब तक वह अपना पूर्ण प्रभाव नहीं डाल पाती और संगीत भी जब तक नीत है मुक्त नहीं होता तब तक पूर्णतः प्रभावोत्पादक नहीं बनता। तब और स्वर के लक्ष में बनकर जब कविता के शब्द आने बढ़ने लगते हैं तब प्रत्येक पंक्ति में जहाँ एक-एक स्वर मार्मिक लक्षित उपस्थित करता है वहाँ उसी के साथ प्रयुक्त होने वाला एक-एक शब्द उन लक्षितों को मार्मिक स्पष्टता भी प्रदान करने लगता है।

हिन्दी-साहित्य के प्रत्येक युग में जिन विविध प्रवृत्तियों ने काव्य रचना को बौद्धिक प्रदान किया जहाँ के अनुभव संगीत भी साहित्य के साथ अपना बराब सम्बन्ध स्थापित किये हुए बरबता चला गया। इसका कारण वही है कि जिस प्रकार संगीत रसगन्ध अनुभूति की एक ऐसी अतिव्यक्ति है जिसमें चित्त रंजन

की क्षमता होती है उसी प्रकार कविता भी जीवन की सार्वभौमिक मनोवृत्ति एवं अन्तर्द्वन्द्वन की ऐसी कर्मात्मक अभिव्यक्ति है जो जन-मानस के साथ हमारे साथ एक सम्बन्ध को घटायुक्त ही नहीं रखती अपितु अपने संबिबनात्मक कोमल स्पर्श से हृदय-बीजा को भ्रूत करने की भी अपूर्व क्षमता रखती है। दोनों ही सहृदय संबिबल हैं और दोनों ही अपने मूढम विम्ब रूप संबिबनों में मानसप्रबल अथ कविता अर्थों में संगीत और संगीत स्वरों में कविता है। यदि दोनों में कोई अन्तर है तो वह मूर्ताधार की मूढमता क्षेत्र-विस्तार और प्रभावोत्पादकता का ही है।

मूर्ताधार

जहाँ तक मूर्ताधार का प्रश्न है, काव्य की अभिव्यक्ति का माध्यम शब्द है और संगीत का शब्द (स्वर)। अपने पारिभाषिक अर्थ में शब्द वह ध्वनि है जो अर्थार्थ से रहित होकर भी अपनी सहज कोमलता स्निग्धता पक्वता सुन्दरता और श्रोत्र से भाग्य-हृदय के उत्साह-विषाद हर्ष-शोक उत्साह-रस्य इत्यादि की सबल किन्तु तरल और मूढम अभिव्यक्ति में समर्थ है।^१ स्पष्ट ही संगीत का मूर्ताधार मूढम है निश्चय ही काव्य से अधिक सूक्ष्म। शार्पक अर्थों का निर्माण वरुणों से होना है जिसकी संगीत संगीत के मूर्ताधार शब्द से नहीं अधिक है। मूर्ताधार की इस सूक्ष्मता के कारण संबिबतात्मक अनुभूति काव्यानुभूति से मूढमतर होती है, अथ उसके रसास्वादन के हेतु अधिक सूक्ष्म अन्तर्द्विष्टि की आवश्यकता अनिवार्य है।

शब्द के विचार से काव्य संगीत की अपेक्षा विस्तृत है। काव्य जहाँ सभी भावनाओं की अक्षय अभिव्यक्तता में समर्थ है वहाँ संगीत प्रधानतः और कदाएँ शान्त और शृंगारिक भावनाओं की ही अक्षय अभिव्यक्ति में समर्थ है। किन्तु अपने सीमित क्षेत्र में संगीत अजेय है अत्यधिक है। व्यापक प्रभावोत्पादकता की दृष्टि से काव्य-कला भी उसकी समता नहीं कर सकती फिर इतर कानित कलाओं की तो बात ही क्या। काव्य-कला का प्रभाव मानव—और वह भी सहृदय मानव तक ही सीमित है किन्तु संगीत की शक्ति से पर्यन्त तक निपल जाने की बात यदि न भी माली जाय तब भी संगीत का प्रभाव पशु पक्षियों तक

१. पोथ्य ध्वनिविशेषस्तु स्वरवरुणं विभूयितं

रंजको अन्वितानां स राम कविदो ब्रुवै ॥

उपलब्ध—शाचार्य मातलज्ज कृत 'द्विगुत्वानो संगीत पद्धति

अधिक पुस्तक मालिका भाग—२ पृष्ठ-१ तृतीय संस्करण

पर बराबर देना जा सकता है ।^२ इस विवेचन से स्पष्ट है कि यदि कुछ युगों में काव्य संगीत से भेद है, तो कुछ में संगीत भी काव्य की अपेक्षा उच्च स्थान ग्रहण किये हुए है । जो विवेचताएं संगीत में हैं वे काव्य में नहीं और जो काव्य में हैं वे संगीत में नहीं । इसीलिए काव्य और संगीत एक दूसरे की पूरक कलाएं हैं । संगीत के बिना काव्य असूय है और काव्य के अभाव में संगीत ।

संगीत एवं काव्य का समन्वय

संगीत और काव्य की गंगा-यमुना का संगम बहुत आश्चर्य से हुआ । पिछड़ी हुई असम्य जातियों के संगीत और कविता के सम्बन्ध से इन दोनों के प्राचीन युगीन स्वल्प की कुछ कल्पना सम्भव की जा सकती है किन्तु बात इतनी पुरानी है कि इनके प्रारम्भिक स्वल्प के सम्बन्ध में निष्पत्त्यपूर्वक धारा कुछ भी नहीं कहा जा सकता । तब से अब तक इन जातियों के संगीत और काव्य में पर्याप्त परिवर्तन हो आया सामाजिक है अतः बिचारे हुए लोगों के आचार पर कठिण मान्यताएँ स्थापित करने के प्रतिरिक्त काल के बीच अन्तराल का अन्ध जाल हमारे लिए अन्ध कोई मार्ग छोड़ता ही नहीं । यह वह युग था जब मानव सामाजिकता के साथ में बनना सीख रहा था अतः सामाजिक एवं वैयक्तिक अनुभूतियों के बीच पारस्परिक ही रेषाएँ स्पष्ट नहीं हुई थीं (व्यक्तिगत मत्सर ही आत्म-की भी और विषाद की भी) ऐसी परिस्थितियों में कवि कविता बनाने ही आँसों से समझकर बहु उड़ी ही तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं ।

आँसों से समझकर चुपचाप बहु बनने वाली इस कविता का धाड़ से उद्गृत नाम के साथ गीत की बेबी के सम्मुख बठबान्ग हो गया । संगीत के स्वरों को संकोच और विस्तार के लिए आचार प्राप्त हुआ और कविता के काव्य संगीत के नादानक सन्ध से धपना गूंगार करके मूम उठे ।

२ "संगीत की विद्यता इस बात में है कि उसका प्रभाव बड़ा व्यापक है और वह अनादि काल से अनुपम मात्र पर बढ़ता जाता आ रहा है । अंतर्गत से लेकर सम्प्राप्तिसम्य अनुपम तक उसके प्रभाव से बर्धोन्त हो सकते हैं । अनुपमों को जान हीजिये वरा-वही तक उसका अनुप्राप्तय मानत हैं ।

अभिध्व्यक्ति का संगीतात्मक रूप स्वाभाविक भी है और अतीव गहरा भी। स्वराँ का अन्तराल पशु-वर्णियाँ की दुःखसुखात्मक अभिध्व्यक्ति में भी विद्यमान रहता है। शोषण के पंचमस्वर में बहने का जो बाध रहो जाता है, उसका आघात यही लक्ष्य है धन कोई कारण नहीं कि आदिम युग के मानव की रागात्मक अनुभूति भी स्वराँ के अन्तराल द्वारा अभिध्व्यन्त में हुई हो। उन आदिम अवस्था में माया में भावाभिध्व्यक्ति की समुचित शक्ति की कल्पना नहीं की जा सकती। स्वराँ के अन्तराल-युक्त ध्वनि से संगीत विकसित हुआ। बाग़ी में जैसे जैसे शक्ति घाटी गयी जैसे जैसे माया भी समीप की ध्वनि के साथ जुड़ने लगी। असम्बन्ध और पिछड़ी हुई भावियों का रोना भी शान्त हो गया और अज्ञान भी। अन्त में माया कुछ और विकसित हुई, इतर नादात्मक अभिध्व्यक्ति का भी धीरे-धीरे विकास हुआ। इस प्रकार अतीव और कविता के अद्भुत पलने समय। धीरे-धीरे लोक गीतों के मूल के अनुकूल परिस्थितिमा उत्पन्न हो गयी। यहाँ तक ध्वनि-मन्त्र उम्र ध्वनि की मूर्ति हो गयी जिसमें धातवीय संगीत और कविता को स्वतन्त्ररूपेण विकास का अवसर प्राप्त हुआ। विकास के चरण ज्यों-ज्यों बढ़ते गये संगीत और कविता का स्वतन्त्र रूप भी अविच्छिन्न स्वर और स्पष्ट होता गया और एक शक्ति बह भी माया जब संगीत और कविता ने अपनी मूल सम-प्रकृति को अविचलित किन्तु प्रखण्डन रहत हुए अपने-आपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व की महत्ता भी घोषित कर दी।

प्रकृति में समानता

काव्य और संगीत की यह स्वभावगत एकक्यता मात्र भी ज्यों-की-र्यों है। यह बात इसी है कि कहीं कविता के प्राधान्य से संगीत लक्ष्य तो कहीं संगीत के प्राधान्य से कविता के वैकल्पिक लक्ष्यों में तिरोमात्र दृष्टि-बोधर होने लगता है किन्तु काव्य और संगीत का सम्बन्ध अन्वयेनमाभित अक्षर्य है। पारचात्य और भारतीय विद्वानों ने कविता की परिभाषा या व्याख्या उरमित्यत्र करते समय इसी लिए किसी न किसी रूप में उनका संगीत से सम्बन्ध स्वीकार किया है। 'अन

१ (अ) ब्रह्मण्य प्रस्तुत प्रबन्ध के पृष्ठ ३७ ३८ और ३९

(आ) परिचयगत समीक्षाओं में पद्य (कवीत) की अभिन्न रूप से कविता का अर्थ माना है। यह उनकी व्याख्याओं से प्रकट होता है। मानस्य का मत है—'कविता पद्यमय विद्यम्य है। कारलात्म्य का कहना है— कविता लपीतमय विचार है। कारलाय कहता है—

बीच' बचवा पावती—परमेस्वर' के समाप कहने के लिए भिन्न किन्तु वस्तुतः समान 'मिरा—परब' से समवेत काव्य यदि रमणीयता का प्रतिपादक है तो उसके छन्दों की नारायणक रमणीयता बचवा धान्तरिक संगीत के सम्बन्ध में भला क्या सम्बन्ध हो सकता है !

काव्य के विभिन्न रूपों में से एक विशिष्ट स्वरूप 'मीतिकाम्य' भी है । वैयक्तिक दुःख-सुख की अनुभूति के लक्षों की तीव्र भावना-शक्ति से युक्त ऐसा काव्य जो भावों के तारतम्य भाषा के साहचर्य वस्तुता के सौन्दर्य एवं संगीत के माधुर्य से ओतप्रोत होता है 'मीतिकाम्य' कहलाता है । इसमें पद्य रचना का संकीर्णता होता आवश्यक है । संगीत इसकी अनिवार्य आवश्यकता है किन्तु संगीत का आतिथ्य मात्र ही गायन (Song) माना जा सकता है । उसे मीतिकाम्य नहीं कहा जा सकता । मीतिकाम्य वैयक्तिक विषय प्रधान बचवा (Subjective) स्वाधुभूति निरूपिणी कविता है अतः साहस के साथ इसी को वास्तविक कविता की विषयता मान लेना अनुचित नहीं है ।

अध्ययन की दृष्टि पर प्राकृत काव्य के विषय प्रधान भेद क अन्तर्गत गलक उपन्यास महाकाव्य अष्टकाव्य इत्यादि का समावेश होता है । इस प्रकार की कविता में अन्तर्गत की अपेक्षा किसी बाह्य विषय की अभिव्यक्ति प्रमुख होती है । इसी कारण इसे बाह्य निरूपिणी (Objective) कविता कहा जाता है । एकान्त वैयक्तिक नारायणक अनुभूति की अभिव्यक्ति का अभाव यद्यपि इस प्रकार की कविता को मीतिकाम्य से पृथक् कर देता है किन्तु ऐसी कविता में भी भावों का माधुर्य प्रबलित तथा और मार्मिक संगीतमयता को लिये रहता है ।

✓ सम्पूर्ण संसार में जितना भी काव्य-साहित्य उपलब्ध है उसका अधिकांश छन्दों में ही मिलता क्या है । छन्दों का संगीतशास्त्र से अदृष्ट सम्बन्ध है । संगीत की मय भाषा और ताल का विधान छन्दों में सम्पूर्ण रूप से व्याप्त रहता है ।

कविता मनोवेगमय और संकीर्णता भाषा में मानव संत करण को पूर्ण और कलात्मक व्यक्तता करती है । य सब लक्ष्य प्रकट करती है कि कविता और पद्य (संगीत) का विशेष सम्बन्ध क्या क्या है ।"

डा० रामानुजदास हुज साहित्यालोचन' पृष्ठ-११ संस्करण

—१९११ (दोरी प्राकृत)

माशाओं की वक्ता में संकीर्ण में त्रिभुज प्रकार विभिन्न जानों का निर्माण और प्रत्येक जान के घबघरावों का विमात्रण होता है। बहुत कुछ उन्नी प्रकार कविता में छन्दों का विधान होता है। मगीत में जो तप (मति) है उसको वक्ता माशाओं से होती है। इसी प्रकार छन्द में भी माशाशा हाग उमकी गति का बोध होता है। जो छन्द माशिक नहीं बँदिक होते हैं उनमें भी गुण तपु और गथा का रूप एक निर्दिष्ट तत्र क अनुमान हाग है। कविता और मगीत का बहु बनिष्ठ सम्बन्ध मर्बबा स्पष्ट है। विभिन्न छन्दों में तप के विधान के कारण प्रसिद्धि की विनिष्ट लक्षणा या जाती है।^१ पञ्चमास छन्द की कारण और माशों की प्रसिद्धि में अधिक सहायक होता है। विज्ञानिकी की कारण करण माशों के अधिक अनुक्रम हैं 'घोड़ और एमिया क इर्मानिए भिन्न भिन्न मिल्प-विधान है और उर्दू में भी इसा कारण गइभ ममिया इन्पानि में भावामिष्पति का रूप बदन जाता है।

निदानान् प्रविणा क लिए छन्द का बन्धन अनिवार्य नहीं है किन्तु इतना अवश्य मानना पड़ेगा कि छन्दहीन कविता अपने आकर्षक को बहुत कुछ खो देती है। छन्द का बन्धन एक और अधिक मावामिष्पति में बोधा भी बढिनाई बनिष्पत करता है ता बूमकी और कविता में संकीर्ण का मुख्य पुत्र दकर उन अधिक प्रमा बपामिनी भी बना देता है। कवियों को इमीलिए रमानुष्य छन्द-योजना की अपेक्षा बनी रहनी है और यही मगीत-रक्त दप्यत्मकता भोलाधों या पाठकों का पन्द की प्राय-शक्ति तत्र पहुंचान में सहायक होती है। छन्दों के मयु बन्धन क घन्धक में प्राय प्रभाव को तीव्रता छिन्न-भिन्न हो जाती है। कमन

“मैं और भरी कुल की दरली

उमड़ी दल की मिद घाम खली” ।२ (महादेवी)

जैसे पत्तियों में समारम्भक आकर्षक की जो क्षमता विद्यमान है वह

‘बूही की कली

दिखल-बन-बहाली कर” । ३ (विद्याला)

१ राजशेखर कृत 'काव्य नीमाता' के बन्धन अध्याय में व्याकरण के जोष और धर्तकार के चत्तिरिक्त काव्योपयोगी मुख्य विचारों में छन्द की परिगणित है।

२ 'साग्य बीत पृष्ठ—४८ अनुर्ष सरकरक

३ 'परिमल' पृष्ठ—१११ अनुर्षाधति

बैसी छन्द-बन्धन से मूछ कविता की पीठियों में नहीं है। तुक और चरण-संगु-
नन के मन्दाब में अर्थात् प्राकृतिक संगीत बहुत कुछ निम्न गया है।

छन्दहीन कविताओं पर भी यदि विचार करें तो उनमें भी एक प्रवाह, एक
गति होती है और यह गति संगीत की लय के सिवा और कुछ नहीं है। छन्द-
हीन कविता में चाहे इस लय की लय का निश्चित विधान न हो किन्तु मंची
तान्त्रिक प्रवाह अवश्य रहता है। कविता की जो बात ही क्या है कुशल और
गौर वच-श्लोकों के गद्य में भी संगीतात्मक प्रवाह बना रहता है, श्लोक में भी
इसीलिए कवि के लिए छन्द-योजना को रच और बर्णनीय विषय के अनुकूल
रचना उचित ठहराया है। कदाचित् और बेचना की धर्मिभक्ति विधायिनी छन्द
में कभी सुस्पष्ट होती है यह काव्य-मर्मज्ञों से छिपा नहीं है। इसी कारण छन्द
भी काव्य का एक मंगीतपरक अंग है। वस्तुतः काव्य का सम्बन्ध चित्ररत्न
और संगीत दोनों से ही है। काव्य प्रकार के कृम्य उपस्थित करके यदि कविता
छन्द-विन उपस्थित करती हुई मङ्गल्य व्यक्ति को चित्र-बन्धन से बाध से जाती
है, तो छन्द अपने प्रवाह के द्वारा संगीतात्मक अनुकूलि को उद्दिष्ट करके मन्तो-
रम धर्मिसोक की सृष्टि कर देता है।

मात्रिक छन्दों के आवह से हिन्दी-कविता में अन्वयानुप्रास मन्वा तुक का
प्रयोग भी होता आया है। पद्य के छन्दों में 'तुक' रूप का हृदय है, जहाँ उसके
प्राचों का सम्बन्ध विशेष रूप से सुनायी पड़ता है। राग की लम्पत छोटी बड़ी
तादिका मानो अन्वयानुप्रास के माङ्गी-बन्ध में केन्द्रित रहती है जहाँ से मन्वीन धन
तथा कुछ रक्त प्रह्व कर के छन्द के शरीर में स्फूर्ति उचार करती रहती है।
जो स्वान टाल में लम का है वही स्वान छन्द में तुक का। जहाँ पर राग अन्वय
की सरल तरल श्रुति, कुञ्चित 'परलों' में बूम फिर कर विराम प्रह्व करता
है। अन्वय फिर जैसे अपनी ही स्पष्टता में हिल उठता है। जिस प्रकार अपने
आपोंह अन्वयों में राग बावी स्वर पर बार-बार टहरकर अपना रूप विशेष
स्वतः करता है वही प्रकार बाणी का रूप भी तुक की पुनरावृत्ति से स्पष्ट तथा

१ 'काव्ये रत्नानुसारेण वर्तमानानुसृतम् ॥

सुधीत सर्वभूशाना विनियोग विमानवित् ॥'

काव्य में रत्न के अनुसार और बर्णनीय विषय के अनुसार लय अन्वयों
की रचना करनी चाहिए।'

'काव्यशास्त्र' विरीच भाष्य—१ बन्धित कुर्वाप्रसार द्वारा लघुवित्त
श्लोक का 'सुवृत्तित्तदन्' पृष्ठ—४६ श्लोक संख्या—३

परिपुष्ट होकर लयबद्ध हो जाता है।”

छन्दों के विधान में कविता में मग का एक बड़ा हुमा टाका रीमार हो जाता है। कविक छन्दों में बर्णों की योजना में धीरे-धीरे छन्दों में मात्राओं की योजना से उतका आरम्भ निरिष्ट होता है। छन्द के दम विधान के पदबान् उनके प्रत्येक चरण में मग धीरे-धीरे के पाण्डुरावगेह के माप धन्दों के छोटे-छोटे छाने स्वचम्बित रूप में आकर क्रिम प्रवाह का सूत्रन करने हैं वह निश्चयात्तर रूप से कविता का धाम्निरु संवीनात्यरु प्रवाह ही है। धन छन्द के विधान का बहिष्कार वस्तुतः नाग-भौन्दर्य की प्रेषणीयता का परिणाम है। स्वर्णों की धपने प्रवाह के लिए मग की प्रतिधाम् जावन्परता होनी है। मगीन की मग ताल धीरे-धीरे काम्य के छन्द में कोई तात्विठ धम्पर नहीं है। धर्मध्वनन करने वाले धन्दों की कमनीयता का रश्म्य भी उमम निहित धाम्निरु मीत्वय पर ही प्राप्त रहता है।^२ प्रतिभावासी कवि की रचना में कृति छन्द धीरे-धीरे रम्यों की अनुकूलता के माप धन्दों के माधुर्य धोर धीरे प्रसार का समन्वय काम्य की मापा का शृंगार करता है। कवि के लिए कबम धण्डा के धनीधम्य से बचा रहना ही बाधमन्ध नहीं है। कवि द्वारा प्रसूठ धन्द जब तक धण्ड बाह्य संपीठ से ध्ण्ड नहीं हो जाते जब तक वे धपनी रमणीयता में धपना धर्ष धपने आप प्रवेष्ट करने में समर्थ नहीं हो पाते।

शब्द संगीत

वस्तुतः काम्य भाव (कविता) बाह्यी का मय विषय है। कविता के पङ्के का धन भी धपना एक स्वतन्त्र ध्याग रहता है। राजधेवर ने 'काम्य-मीमांसा

१ 'पस्तक' की भूमिका, श्री सुमिधानन्दन पाण्डे, पृष्ठ—४० प्रथम संस्करण।

२ "Tis not enough no harshness gives offence;
The Sound must seem an Echo to the sense."

—A. Pope

Essay on Criticism Pitt Press Series Edited by Alfred S. West, M. A., Page 72

“इतना ही धर्षण नहीं कि कर्मधता से धिराय की धत्पति नहीं होती। धन देसी होनी चाहिए जो धाम्निरु मावना की धतिध्वनि धाम धरे।”

के सतर्क सम्भाव में वर्णों के संयुक्त रूप से उच्चारण अर्थात् के समुद्रोच से विद्यमान प्रथम यति गम्भीरता सस्वरता ऊँचे-नीचे स्वर का मन्त्रि-मन्त्रि निर्बाह और संयुक्तध्वनि के पड़ने से नाभय को कविता-नाथ के भावस्थक पुर्णों के रूप में स्वीकार किया है। कविता का तो निर्मातृ ही पुनर्जना कर होता है और जब तक कवि अपनी कविता के रसानुकूल भावों में तस्मीन होकर उसे उत्तर नहीं पढ़ता तब तक वह श्रोताओं के हृदय में नाभयत्व भावों की स्फूर्ति और उदंग का उद्रेक नहीं कर पाता। साहित्याचार्यों ने काव्य के अर्थ और दृश्य को भेद माने हैं किन्तु जब से मूद्रण-कला का प्रचार और प्रसार हुआ तभी से कविता भी एक पाठ्य विषय की बन गयी है, येय और अर्थ उठनी नहीं रही। जब तो अर्थ भी पाठ्य है और दृश्य भी पाठ्य किन्तु उत्तर कविता-नाथ का महत्त्व आज भी अक्षुण्ण है।

कविता में शब्दों का संगीत भी नाबोल्कर्य में अतीव सहायक सिद्ध होता है। भाषा के बाह्य स्वरूप का अमंकरण शब्दों और ध्वनितकारों से हुआ करता है। अन्वयार्थ समझने से पहले उनका उच्चारण ही सुनायी देता है। कवि जिस प्रकार अपने अनुपम अर्थ-विशेषों द्वारा मानस नेत्रों के सम्मुख कोई दृश्य उपस्थित करने में सहायक होता है उसी प्रकार अक्षर के अनुपम अर्थ-योजना द्वारा शब्दों में ध्वनि की मूक भी उत्पन्न कर देता है। सांस्कृतिक संगीत से श्लोक-श्लोक ऐसे शब्दों का उच्चारण ही ध्वनित्यति की मानिषता को स्पष्ट कर देता है। शब्दों की वह मातात्मक विशेषता संगीत—विकला मूर्तिधार नाथ है—से अक्षिप्त है। दो बार उच्चारण इस कथन की पुष्टि के लिए पर्याप्त होये।

सुनसी ने विद्यात शिव अनुप मंग होने का बर्णन इन शब्दों में किया है

“द्विपति शिव शक्ति शक्ति सर्वे शब्दे समुद्र तर।

ध्यात शक्ति लेहि काल, विकल दिग्पाल बरारर ॥

दिग्पद तरारर, परत ब्रह्मन्त कुल तर।

सूर विमान हिमभानु शानु संघटित परस्पर ॥

श्रीते शिखर संकर सहित कोल कमठ अहि कलमस्यो।

ब्रह्मांड बंड शिवो बंड बुनि अरहि राम शिवशनु दरयो ॥ १

संयुक्त अर्थ-योजना द्वारा यही ध्वनि की अत्यन्त मूर्तिमयी हो उठी है।

१ संक्षिप्त कवितावली रामायण पृष्ठ—१२ वर—११ प्रथमावृत्ति
सम्बन्धक—श्री रामनिवात मयवात

पमान बानाबाराण की पम्भीरणा जैसे बानीं म पूत्र उठनी है। बह्याण्ड खण्ड
बण्ड इत्कारि पाणों तब पहुचत-पहुंचत तों ऐसा प्रतीत होता है मानो वह
विनाश निब-अनुप पान ही नहीं बड़कड़ा कर टूट गया हो।

बिक्रिया थीर मूपरो की भारक समझुम तुमछी की ही इस धर्म-योजना में
मुकर है

“कंकज किशकि-मूपुर-मुनि सुनि कहत लपव सन राम हूवय मुनि” ॥१

मूर क धर्म-संगीत क इन्द्रजाल य बजमूमि पर होने वाली प्रलयकारिणी
जलबृष्टि भी साकार हो उठनी है। मेघा का गर्भम बिबली की बड़क बायु का
बाग लमी कुछ स्पष्ट सुना जा सकता है

‘बरसत मैघवर्त वरनी पर।

मुलमपार ललित वरपनु है, बूझ न धावत मू पर ॥

बरसा बसकि-बसकि बरु भीबति, करत राम धावात ।

धंधामु न बहनकर्तक धन करत विरत उत्पत्त ॥२

धीर भयकर वाकानम के वारण्ड बन म बात कैंत बटवना कर टूट रू
है। भीषण धनि ज्वालामु के कारण कुछ बात का जलना और धनक प्रकार
क नुसा का टूट-टूट कर गिरना जैसे काल फोड़ डाल रहा है

‘महरात महरात बाबा (मल) धायो ।

धरि बहू सोर करि सोर धरोर बन धरनि धकात बहू पाल धायो ।

बरत बन-बात धरहरत कुछ कौब धरि, उड़त हे माल धति प्रवत धायो ।

धपटि धपडत लपड, धूल-धूल बट-बटकि धवत लटलटकि धुम धुम नवायो ॥३

सांख्यिक बुद्धिमत्ता एवं प्रयोगबैधिम्य के अनुपम कक्षाकार धनात्मक की
नाश-संज्ञना भी बड़ी अनुठी है। इनके विरुद्ध ही यह संघीर ध्येयना धरुवय
धवेव है

१ ‘रामचरित मावत’ बाल काण्ड, दोहा—२६१ औरधई—१

१ ‘सुरमाधर’ पृष्ठ—२६४ २६३, बधम लंके वर लंका १२०७।१४२३।
नागरी प्रचारिणी सभा

१ ‘सुरमाधर’, पृष्ठ—२७२, बधम लंके वर लंका १२६१।१२१४।

नागरी प्रचारिणी सभा

ए रे बीर पौन तेरो लखे घोर पौन जारी

सो सो घोर कौन मन हरकाही जानि है ।

जगत के प्राण सोसे बड़े लो लमान घन

घानंर निबान तुखरान बुझियानि है ।

जान उझियारे पुन-भारे घत मोहो प्यारे-

घर हूँ घमोही बैठे पोठि पहिचानि है ।

बिरह-बिबाहि घुरि घांखिन हैं रत्नी घुरि,

घुरि तिनि पम्पनि की हुर हुर नैकु घानि है" ११

रेलाकिय पति और शब्दों का मुख्य रीति मन्मीर जोय बनान्द के उस मन्मीर बिरह का परिचायक है जिसने बजनाय के मुख से कभी यह कहलवा दिया था कि

‘समुझे कविता बनमान्द की

द्विय नैनन नैहू की पीर लकी” १२

शब्दों के समुचित उच्चारण का ज्ञान वैसे संगीतज्ञ को होता है वैसे प्रायः इतर कलाकारों को नहीं हुमा करता । संगीतज्ञ का काम ही यह है कि वह शब्द के माध्यम से शब्दों की समुचित अभिव्यक्ति करे, किन्तु जो व्यक्ति संगीत का अध्ययन करके भी इस विशेषता पर अधिकार प्राप्त नहीं कर पाता वह संगीत सीखकर भी सच्चा संगीतज्ञ नहीं और जो व्यक्ति संगीत नहीं जानता किन्तु शब्दों की भावनात्मकता को पहचानता है एवं तदनुकूल उनका उच्चारण कर सकता है उसने संगीत में सीखने पर भी उसकी आत्मा के बर्धन कर लिये है । अपूर्वतः सद्बुद्ध कविताओं को पूर्णतः संगीतबद्ध करके बाया जा सकता है किन्तु यदि इस बात को बिसकुम छोड़कर केवल शब्दों की भावनात्मक प्रकृति को समझकर कविता पढ़ते समय उनका समुचित उच्चारण मात्र किया जाय तब भी कविता का एक-एक शब्द जैसे अपनी सम्पूर्ण आत्मा के साथ बोल उठेगा । इस प्रकार के भावनात्मक उच्चारण से रहित होने पर इन कविताओं का कितना अधिक आकर्षक गुण हो जायगा यह एक अनुभूत वास्तविकता है ।

१ ‘बनघानंर’ पृष्ठ-२४ सम्पादक बं० बिरबनाय प्रसाद विद्य संस्करण

२ घनानन्द की कविता के, सप्रकार बजनाय—

घनानन्द की प्रशस्ति पर—१ घनघानंर(बं० बिरबनाय प्रसाद विद्य)

यहाँ वाणी का प्रसन्नकरण ही भावोद्दीपन का रहस्य है। भावोद्दीप्ति के कारण वाणी का स्वयमेव उद्दीप्त हो जाना बहुत स्वाभाविक है। संगीत और कविता में यह सत्य समान रूप से चरितार्थ होता है। भाषा के सौष्ठव एवं सम्बालकारों के सौन्दर्य का बहुत कुछ रहस्य इसी तथ्य में निहित है। मगीत और काव्य के इस व्योम्बाधित सम्बन्ध के कारण आज-प्रदमान कवि मगीत के प्रति माहृष्ट प्रथा करता है। गायक को अपेक्षा होती है एक सिद्ध कवीरवर को जिसकी रचना का आशय लेकर वह अपने स्वयं का सर्वोच्च विचार, धारोद्भव बचपों रूप कर सके अपनी गयक मोड़ और पुरस्कारों को प्रनविद्युता प्रदान कर सके तथा अपने स्वाभाविक तरन संगीत को कुछ प्रनोभूत कर सके और कवि को अपेक्षा होती है एक ऐसे सफल गायक की जो उनके एक-एक शब्द की भाषा को श्रेष्ठ करके सङ्ग्रह-संवेष्ट बना सके।

यस्तु कविता और संगीत का पारस्परिक आदान प्रदान बहुत अधिक है। मगीत और अथ का समशीयता के प्रभाव में कविता अपने वास्तविक धौरण से बर्धित रहती है। फिर भी अपने स्वतन्त्र रूप में संयोग और यस्तु है और कविता धौर। शब्दविहीन होकर भी संगीत भावामिभ्यक्ति में सफल होता है। गायको में प्रवर्धित लगना-धीमी इसका स्पष्ट प्रमाण है। अर्थ-सून्य 'तोम्' तपनम्,

१ (क) "Music resembles Poetry in each

Are nameless graces which no methods teach
and which a master-hand alone can reach

—A Pope 'Essay on Criticism' Pitt Press Series

Edited by Alfred S West, M. A. page 65

"संगीत काव्य सङ्ग्रह है। दोनों नामहीन कमनीयताओं से घोट-घोट हैं जिन्हें उत्पन्न करने की शिक्षा कोई भी प्रस्ताती नहीं देती, उनका विद्या ही बतुर शिष्य ही कर सकता है।"

(ख) काव्य-कला संगीत सरित्त जानी मन माही,
रोऊ में सौंदर्य किते ने बचरत नहीं
तिगुँ सिद्धासनजोप सुख कोऊ बहूँ नाही
केवल परम प्रवीर्निज के धारत कर माही ॥"

शायद अयन्नापरवात 'रत्नाकर' कृत समालोचनसूत्र पृष्ठ ३०, ३१ (संस्कृत १९९० में काशी नागरी प्रकाशित्वी प्रभा द्वारा प्रकाशित 'रत्नाकर' नामक ग्रन्थ में संकलित)

देना' जैसे निरर्थक शब्दों से भी संगीत-वाद्य यंत्रों में नाबोहीपन हो सकता है किन्तु संगीत का यह प्रभुत्व ही है। नाबपूरण शब्द-योजना के अभाव में यह संगीत उसी प्रकार अपनी प्रभावोत्पादकता में प्रचुर रह जाता है जिस प्रकार संगीत के अभाव में काव्य। काव्य के अन्त-करण में जब संगीत स्पन्दन करने लगता है तब काव्य में जीवनी-शक्ति आ जाती है। नाबपूरण शब्द-योजना मानो इस निष्कार संगीत को एक मूर्त स्वरूप प्रदान करके अपनी सम्पूर्ण विशेषताओं के साथ उसे साकार कर देती है। संगीत और काव्य का यह पारस्परिक आदान-प्रदान अतीव महत्वपूर्ण है। इसीलिए काव्य और संगीत एक दूसरे के अनुपूरक हैं अतः जहाँ एक को प्रतिष्ठा होती है वहाँ दूसरा प्रायः अपने प्राय या उपस्थित होता है।

शौचित्य का आग्रह

काव्य और संगीत के इस सम्बन्ध में शौचित्य का ध्यान अत्यावश्यक है। काव्य में अर्थ की प्रधानता होती है। अतः कवि का शौचन इतना होना चाहता है कि संगीत का अभाव ही तब करे वहाँ तक काव्य के अर्थ-प्रकृत में योनाओं के लिए बाधा उपस्थित न हो। काव्य के क्षेत्र में संगीत केवल एक सहायक का ही पत्र प्राप्त कर सकता है इससे अधिक नहीं। वह काव्य के सिद्ध विधान को रमणीय बना सकता है किन्तु काव्य के गौरव-पूर्ण पद को स्वयं ग्रहण नहीं कर सकता। काव्य में शौचित्य से अधिक संगीत का अभाव ही स्थाप्य नहीं है। जब कोई नाबपूरण पद संगीत में अन्त-प्रकृत को ही तब कुछ समझने वाले किसी संगीतज्ञ के हाथों पड़ जाता है तब पाठक की आत्मा अस्मिता और आङ्कुष की क्षम में उस सुन्दर पद की अन्त-प्रकृत की मूर्ति पक्षीत हो जाती है। तात्पर्य यह कि काव्य और संगीत का पारस्परिक योग जब उचित मात्रा में होता है तभी वह सङ्घर्षों के लिए आनन्ददायक बनता है।

परिच्छेद-२
भारतीय संगीत

भारतीय संगीत

परिच्छेद २

(क)

संगीत-शास्त्र की दृष्टि से गीत वाद्य एवं नृत्य गानों का समावेश समीत गद्य के घट्टागत हो जाता है । व्यावहारिक दृष्टि से यद्यपि ये तीनों कलाएँ स्वतंत्र हैं परन्तु कष्ट-मर्तल का प्राधान्य धीरे-धीरे उसका नृत्य तथा बाहु-समीत पर प्रभाव घटित होता है । वाद्ययन्त्र या तो गीत के साथ बजाये जाते हैं अथवा स्वतंत्र रूप से किसी राग की प्रस्तुति करते हैं । इधर गीत-वाद्य-युक्त नृत्य में पद-संवरण की मौलिकता प्रायः प्रभुत्व लयात्मकता पर प्राधान्य रहती है अतः समीत-शास्त्रियों में संगीत गद्य के व्यापक धर्म में वाद्य धीरे-धीरे नृत्य का भी अन्तर्भूत कर लिया है । १

प्रस्तुत प्रबन्ध में संगीत गद्य को कुछ अनुचित धर्म में ग्रहण किया गया है । हिन्दी-शास्त्र पर प्रबन्ध कष्ट-मर्तल का ही प्रभाव पड़ा है और इसी का परिणाम इस प्रबन्ध का उद्भव भी है अतः इस प्रबन्ध में समीत गद्य मुख्यतः कष्ट-समीत के धर्म में व्यवहृत हुआ है ।

भारतीय संगीत की दो प्रणालियाँ

भारतीय संगीत की दो प्रणालियाँ हैं । इनमें से एक का नाम उत्तर गार

१ (क) "गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं समीतमुच्यते ।"

श्री शाहू परबेण हृत 'समीत रत्नाकर' पृष्ठ-६
प्रायःप्रायःसंस्कृतप्रभाषणी क्रमांक ३३

द्विस्ताम्ब १६४२

(ख) "गीतं वाद्यं मर्तलं च त्रयं समीतमुच्यते ।"

श्रीमोहण पण्डित हृत 'समीत दर्पण' पृष्ठ-३

प्रथम संस्करण

(हिन्दी अनुवाद—डा० विश्वम्भरनाथ शर्मा)

तीय हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति है और दूसरी का कर्नाटकी संगीत-पद्धति । कर्नाटकी संगीत-पद्धति का प्रचार मैसूर कर्नाटक और मद्रास प्रान्तों में है। येय सम्पूर्ण भारत में उत्तरी हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति का ही शासन है ।^१ सामान्यतः यह समझा जाता है कि शक्तिशाली संगीत पद्धति का पारस्परिक सम्बन्ध उत्तरी हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति की अपेक्षा अधिक मजबूत है । भारत में बटित होने वाली राजनीतिक परिस्थितियाँ न उभर कर भारत को बिलगा प्राकान्त किया उचना बखिण को नहीं । मुसलमानों के आगमन के फलस्वरूप हिन्दू और मुसलमानी संस्कृति का सम्मिश्रण भी उत्तर भारत में ही अधिक हुआ। यमठ उत्तर भारतीय संगीत में बड़ा परिवर्तन और विकास हुआ बीना दखिण भारत में न ही सका । इस सम्मिश्रण के परिणामस्वरूप उत्तर भारत के संगीत में मुसलमानी संगीत-शैली का पर्याप्त सम्मिलन हो गया। अतः उत्तर भारत का संगीत अपने मूल रूप में स्थिर न रह सका ।

भारतीय संगीत की परिवर्तनशीलता

शास्त्रमय की दृष्टि से भारतीय संगीत को निम्नांकित तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है

- १ प्राचीन संगीत
- २ प्राकृतिक (प्रचलित) संगीत
- ३ भावी संगीत

भारतीय संगीत सदा से परिवर्तनशील रहा है । प्राचीन युग में संगीत को जो रूपरेखा थी वह आज बरत नहीं है और प्राकृतिक युग में जो संगीत प्रचलित है वह भी मरिष्य में स्थिर न रह सकेगा । जिस प्रकार याया स्वभाव से

- १ "प्राचार्यो तु प्रसिद्धः हि संगीतस्य विद्यां वते ।
 प्राक्षुपा कर्नाटकी श्याता हिन्दुस्तानी तथा परा ॥
 कर्नाटिक प्रचारो या वा मद्रास निबन्धिनी ।
 सत्यत्र वर्धते हिन्दुस्तानीया बहुसंभवा ॥"

प्राचार्य भातवच्छे 'बी' कस्तूरप्रसंगीतम् पृष्ठ २
 (विद्वानों के मत में संगीत की दो शैलियाँ हैं । एक का नाम कर्नाटकी और दूसरी का हिन्दुस्तानी है । कर्नाटकी प्रचाली मद्रास में प्रचलित है। सत्यत्र हिन्दुस्तानी पद्धति ही बहुसंभवा है ।)

ही परिवर्तनशील है उसी प्रकार संगीत भी परिवर्तनशील है। प्राचीन संगीत से तात्पर्य उस मंचीत से है जिसका उद्देश्य मंचीत सम्बन्धी संस्कृत की प्राचीन पुस्तकों में हुआ है। मरुत कतिपय मतम नारद इत्यादि के ग्रन्थ इसी वर्ग में आवेंगे। आज का संगीत प्रचलित प्राचीन संगीत से बहुत बदल गया है। अब तो सभी गायक-बादक राग ही गाते बजाते हैं किन्तु मरुत के युग में राग-भाषण का प्रकार न था। मरुत के समय से राग रास्य अधिक प्रचलित होने लगता है। क्रमशः प्रमुख रागों की रागिनियों और उनके परिवार की परिकल्पना विकसित हुई परन्तु अग्रहणी सताष्टी के उत्तरार्ध से छः राग तथा (तीस प्रथमा) छत्तीस रागिनियों वाली पञ्चमि भी विकसित होने लगी अतः इस बीचकी शताब्दी में राग रागिनी पुनः पुनः इत्यादि की कहानी यदि कोरी बहानी ही रह जाय तो क्या आश्चर्य।

युग विधेय में मिश्र-मिश्र राग गायक-बादकों द्वारा जिस प्रकार व्यवहृत होने लगे हैं तदनुकूल ही संगीत-शास्त्र का निर्माण भी होता रहता है। इस प्रकार शास्त्र और क्रियात्मक संगीत में एकत्वता स्थापित हो जाती है। यह एकत्वता अनेक वर्षों तक स्थिर रहनी है परन्तु परिस्थितिवश अनगणित बदलते रहने से क्रियात्मक संगीत धीरे-धीरे परिवर्तित हो जाता है। सी-वा-सी वर्गों में बेधम्य इतना अधिक बढ़ जाता है कि कोई राग प्रत्यक्ष व्यवहार में जिस प्रकार गाया बजाया जाता है उससे मिश्र अथवा शास्त्र में लिखायी देने लगता है। रागों के इस बदलने हुए स्वरूप के आधार पर पुनः नवीन शास्त्र का सूत्रण होता है, पुस्तकों लिखी जाती हैं तथा उनमें रागों का बीजा ही वर्णन किया जाता है जैसा वे प्रत्यक्ष व्यवहार में गायक-बादकों द्वारा व्यवहृत होते हैं। इस प्रकार क्रियात्मक संगीत और उसके शास्त्र में पुनः एकत्वता प्राप्ति होती है किन्तु अनगणित और परिस्थितियों के निरन्तर बदलते रहने के कारण परिवर्तन का यह चक्र भी अन्त्याहृत रूप से घूमता रहता है।

आजकल गायक बादक जो राग गाते-बजाते हैं उनमें से बहुत से ऐसे भी हैं जिनके नाम तो वे ही हैं जो प्राचीन ग्रन्थों में दिये हुए हैं परन्तु उनका मूल स्वरूप पुरानी पुस्तकों में वर्णित मूल-स्वरूप से इतना अधिक बदल गया है कि उन पर पुरानी विचारधारा का शास्त्र लागू नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिए प्रचलित भासकोंस की ही लीजिए। आजकल यह राग जिस प्रकार गाया-बजाया जाता है उस प्रकार प्राचीन पुस्तकों में वर्णित नहीं है। अर्थात् प्रचलित भासकोंस की प्रामाणिकता प्राचीन ग्रन्थाधार से सिद्ध नहीं हो सकती। राग रागिनी नामी पञ्चमि के प्रायः सभी ग्रन्थकारों ने इस राग का वर्णन किया

भारतीय संगीत का संक्षिप्त इतिहास

(रीतिकाल से पूर्व तक)

(ख)

संगीत जब अभिव्यक्ति का रूप ग्रहण करता है तब उसकी कुछ मातात्मक प्रकृति कला की सीमा-रेखाओं से भी परित्यक्त होने लगती है। मन्त्रिक के विकास के साथ वैयक्तिक विशेषताएं और विविधताएं भी सम्पुञ्ज होती हैं। अतः कला में वैयक्तिकता अपरिहार्य है। अस्तु, अपने कला-रूप में संकीर्ण नौ कलाकार के मन्त्रिक की मयत तन्मीर मनोरम और मुदिचरित कृति है। भावनाओं का महज उच्छ्वास की दृष्टि से आदिम मूलक संगीत अवश्य ही विविध रहा होगा किन्तु शास्त्रों में कलागत बौद्धिकता के समावेश से उसमें कलाकार के व्यक्तित्व की प्राप्ति स्वाभाविक है। वही संगीत के कलात्मक स्वरूप के विकास का उल्लेख है और इन विकास का वैज्ञानिक विश्लेषण उसके घटन का निमात्रक। इसी लिए किसी युग-विशेष की कला के कथित विकास का लेखा-जोखा उनके तत्कालीन घासन में सुपेक्षित रहता है। अतः भारतीय संगीत के संक्षिप्त मूल्यांकन एवं उसकी परम्परा के अनुशीलन के लिए उसका ऐतिहासिक अध्ययन अनिवार्य है।

वैदिक युग

भारतीय संगीत के कथित विकास का अध्ययन वैदिक काल में प्रारम्भ होता है। वैदिक काल का संगीत ही आगे चलकर भरत-युग के संगीत में परिणत हुआ। इन युग के संगीत का अनुशीलन करने के लिए 'सामवेद संहिता' 'ऋग्वेद संहिता' 'सैविरीय संहिता' 'अथर्ववेद संहिता' 'याजुर्वेद संहिता' 'सामवेद संहिता' 'गारुडीय संहिता' इत्यादि ग्रन्थ अतीव महत्वपूर्ण सिद्ध होने हैं।

वैदिक कालीन संगीत में सामवेद का विशेष महत्व है। सामवेद में स्वरों

गित है अतः मात्र के संगीतज्ञ के लिए गीतवादीय संगीत के मूल्यांकन में कोई उल्लेखनीय व्यवधान उपस्थित नहीं होता ।

आवामी सी-दो-सी बर्षों में भारतीय संगीत की क्या रूपरेखा होगी यह तो आने वाली पीढ़ियाँ ही जान सकेंगी अतः उसके सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है । हाँ इतना अवश्य है कि जिस प्रकार मात्र का संगीत प्राचीन संगीत से भिन्न है उसी प्रकार भावी संगीत भी वर्तमान संगीत से भिन्न होगा ।

है और इसे प्रमुख स गयो म से एक माना है। परन्तु वह मासकोस मात्र अपने मूल रूप में प्रचलित नहीं है। प्राचीन ग्रन्थों ने मासकोस को मासबन्धैधिक मन्तव्यैधिक मासकोस इत्यादि नामों से पुकारा है। संगीत दर्पणकार ने पञ्च गह घंघ तथा ग्यास स्वर से मासबन्धैधिक को पूर्ण माना है एवं काकनी स्वर से कुछ प्रथमा मूर्च्छना मानकर उदाहरण में सा रि म म प ब नि सा लिखा है। स्पष्ट ही वह नादस्वरूप मासकोस के वर्तमान प्रचलित नाद-स्वरूप सा प म ब नि सा। सा नि ब म ब सा से भिन्न है। इसी प्रकार मैरव हिन्दोल भी इत्यादि रागों का नाद-स्वरूप भी अब पर्याप्त परिवर्तित हो गया है। अतः किसी राग के प्रचलित स्वरूप पर उस प्राचीन शास्त्र को लागू करना जो बहुत पीछे छूट गया है कदापि मुक्तिमुक्त नहीं कहा जा सकता। यही नहीं प्रब तो मुम इतना बदल चुका है कि यदि कोई प्राचीनता-सेमी संगीतज्ञ आज किसी राग के विस्मृत प्राचीन शास्त्रोक्त नाद-स्वरूप की पुनर्स्थापना का प्रयास भी करे तो उसके अध्ययन का मूल ऐतिहासिक इले ही हो सके म्यावहारिक दृष्टि से वह उपयोगी न होया क्योंकि रागों का वह विस्मृत प्राचीन नादस्वरूप ध्यान के संगीतज्ञों को प्राप्त नहीं हो सकता।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि भारतीय संगीत मदैव से परिवर्तनशील रहा है। अधिकतर रागों के नाम चाहे पुराने ही बयो न हों किन्तु उनका वर्तमान नादस्वरूप और रागों के साथ उन रागों का वर्तमान शास्त्र भी प्राचीन नादस्वरूप एवं शास्त्र से भिन्न है। ऐसी परिस्थिति में केवल रागों के नाम-धाम्य के आधार पर मध्यकालीन पद-साहित्य में बरिष्ठ राग-रागिनियों को सर्वतोभावेन वैसा ही नहीं माना जा सकता जिस रूप में वे आज व्यवहृत हैं। मुर-मुमरी और मीरा के मुम से ही नहीं हिन्दी के आदिकाल से लेकर मफिठकाल के अत तक जिन कवियों ने अपनी रचनाओं में राग-रागिनियों का समावेश किया है उनके सम्बन्ध में रागों के पुनः के शास्त्र को आधार मानकर उनके द्वारा प्रमुक्त राग-रागिनियों के नादस्वरूप का मूर्त्यांकन करना समीचीन होगा और इसी आधार पर यह जोर करनी पड़ेगी कि किसी कविता को किसी ज्ञास राग के अन्तर्गत रखने में किसी रूप विधेय के कवि की भावात्मक परिकल्पना ब्या भी।

सौभाग्य से आधुनिक संगीत क शास्त्र और उनके क्रियात्मक स्वरूप में ऐतिहासिक संगीतिक मापनाओं से कोई तात्त्विक अन्तर उपस्थित नहीं हुआ है। आधुनिक संगीत की ऐतिहासिक संगीत से प्राप्त अविच्छिन्न परम्परा स्वा

गिट है घन घात्र के संगीतज्ञ के लिए गीतिबामोद संगीत के मूल्यांकन में कोई उत्तमोत्तम व्यवधान अस्तित्व नहीं होता ।

आधुनिकी सौ-सौ वर्षों में भारतीय संगीत की क्या कपरेखा होगी यह तो घाने वाली वीदिया ही जान सकेगी अतः उसके सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है । हां इतना पक्कय है कि जिस प्रकार घात्र का संघीत प्राचीन संघीत से भिन्न है उसी प्रकार भाषी संगीत भी वर्तमान संघीत से भिन्न होगा ।

भारतीय संगीत का संक्षिप्त इतिहास

(रीतिबद्ध से पूर्व तक)

(२)

संगीत जब अविभक्त का रूप ग्रहण करता है तब उसकी कुछ मायात्मक प्रकृति कला की सीमा-रेखाओं से भी परिकृत होते लगती है। पश्चिम के विकास के साथ वैयक्तिक विषयताएं और विविधताएं भी सम्पुष्ट होती हैं, वह कला में वैयक्तिकता अपरिहार्य है। अस्तु अपने कला-रूप में संगीत भी कलाकार के पश्चिम की मजबूत पम्नीर मनोगम्य और सुविचारित मूर्ति है। भावनाओं के महत् उच्छ्वसन की दृष्टि से आदिम मानव-संगीत अवश्य ही विविष्ट रहा होगा किन्तु कालान्तर में कलात्मक बौद्धिकता के महावेग से उसमें कलाकार के व्यक्तिगत की भावना स्वाभाविक है। वही संगीत के कलात्मक स्वरूप के विकास का उत्पत्ति है और इस विकास का वैज्ञानिक विवेचन उसके घाट का नियामक। इसी लिए किसी युग-विषय की कला के क्रमिक विकास का पैला-जोला उसके उत्पत्तीगत घाट में सुरक्षित रहता है, यह भारतीय संगीत के अनुचित भ्रमण का एवं उसकी परम्परा के अनुशीलन के लिए उसका ऐतिहासिक अध्ययन अनिवार्य है।

वैदिक युग

भारतीय संगीत के क्रमिक विकास का अध्ययन वैदिक काल से आरम्भ होगा है। वैदिक काल का संगीत ही आगे चलकर बगल-युग के मंत्रों में परिचित हुआ। इन युग के संगीत का अनुशीलन करने के लिए 'नामवेद महिता' 'महक प्रातिघात्य' 'तैत्तिरीय प्रातिघात्य' 'अथर्ववेद प्रातिघात्य' 'शांखिनि घट्टाध्यायी' 'शांखिनि धिजा' 'भारतीय धिजा' इत्यादि ग्रन्थ अतीव महत्त्वपूर्ण सिद्ध होने हैं।

वैदिक कालीन संगीत में नामवेद का विशेष महत्त्व है। नामवेद में स्वरों

के मर्यात्मक प्रवाह का सुनिश्चित बिधान उपलब्ध होता है। उच्चारण की शुद्धता विभिन्न धारों पर जोर देने के निश्चित नियम यथास्मान् विधात्रि ह्यपारि आवश्यकताओं के कारण सामवायक के लिए अपने कण्ठ-स्वर का समुचित निबन्धन और परिष्कार आवश्यक हुआ। इस प्रकार धनवाने ही राग और ताल के संस्कार फूटकर अपनी जीवनीपानि की अधिकारपूर्णा सत्ता प्रतिपादित कर उठे और धीरे धीरे चलकर ये ही भारतीय संगीत के दो प्रमुख तत्वों के रूप में फलित हुए।

इसमें संदेह नहीं कि वैदिकयुग में संगीत का पर्याप्त विकास हो गया था परन्तु उस युग के पीछे की नावपरक यथायथा का प्रायः सम्पूर्ण स्पष्टीकरण सम्भाव्य नहीं है। वैदिक काल के संगीत पर अभी तक जो कुछ विचार सामग्री उपलब्ध हुई है उसके आधार पर असंदिग्ध रूप से केवल इतना कहा जा सकता है कि उस युग का संगीत भक्ति और धर्म के साथ संयुक्त था। ब्राह्मण ऋग्वेद संगीत के अध्ययन-प्रव्यापन के कार्य मार को संभाले हुए था। वैदिक युग में एक विशेष महोत्सव का भी सम्बन्ध मिलता है जिसमें कुमारियाँ ५ तन्त्रतापूर्वक अपने-अपने प्रभियों के साथ सांघीतिक कोसल को भ्यस्त करतीं और अपने मावी पति का चयन करतीं थीं। इस सांघीतिक मेस ने उस युग के संगीत को विकसित करने में बड़ी सहायता पहुँचायी।

यज्ञादि के अवसर पर मन्त्रों को सांघीतिक षुट के साथ गाना जाता था। ऋग्वेद के परचाएँ वैदिकयुगीन संगीत की समझने का प्रमुख साधन सामवेद है। ह्रस्व-दीर्घ धारों के आधार पर उस युग का संगीत समसंयुक्त हो गया था। सामवायक के प्रमुख मान हिकार प्रस्ताव तद्गीत प्रतिहार और विधान थे। सामवायकों द्वारा सप्त स्वरों का व्यवहार होने लगा था। उस काल में स्वर की संज्ञा 'मम' थी। स्वरों के क्रम ठीक भेद भी थे परन्तु मात्र की तरह एक ही ध्वनि को धारमिक स्वर मानकर गानन बाधन नहीं होता था। तत्कालीन संगीतज्ञ आवश्यकतानुसार मिल मिल स्वरों को 'स्वरित' कल्पित करके अपनी कला को कौशल दिखाते थे। उस युग के सप्त स्वर कृष्ट प्रथम द्वितीय तृतीय चतुर्थ पञ्च और अतिस्वार्थ इन नामों से पहचाने जाते थे। स्वरों का क्रम नि म प म प रे ता इस प्रकार अवरोहपरक था। 'पाणिनिविद्या' और 'नारदीय विद्या' के आधार पर यह भी संकेत मिलता है कि नि म को उदात्त रे म को अनुदात्त और सा म प को स्वरित कहा जाता था।

इन बातों के आधार पर यह तो प्रकट होता है कि वैदिकयुग में

संगीत का विकास हो गया था परन्तु उस युग के लघु स्वरों के स्वरांतर क्या थे ? पावन रसों क्या थी ? तत्कालीन पावन गीतों का प्रत्यक्ष स्वरूप क्या था ? इत्यादि प्रश्नों का सम्प्रमाण और सर्बप्राप्त उत्तर नहीं मिलता । उस युग के संगीत की मात्र यह जोर ही की जाय कि वह केवल ऐतिहासिक महत्त्व की पुरातत्व सम्बन्धी अनुसन्धिता होगी । क्योंकि मात्र का संगीत प्राचीन संगीत से इतना बहस गया है, मात्र ही सम्बन्ध विवक्षित रूप में इतना समृद्ध भी हो गया है कि आधुनिक शास्त्र-शास्त्र इसे छोड़कर वैदिक संगीत की ओर लौटने के लिए प्रस्तुत न होंगे ।

वैदिक काल के पश्चात् पौराणिक एवं बौद्ध काल आता है । इस युग के संगीत से सम्बन्ध कोई महत्त्वपूर्ण अन्त मात्र उपलब्ध नहीं है । हाँ 'अभोग्य' एवं 'बृहदारण्यक' उपनिषदों में साम-गायन का उल्लेख अवश्य है तथा महाभारत और रामायण में भी योत मात्र और नृत्य की बर्णना हुई है । पौराणिक युग में वैदिकयुगीन संगीत का—परिष्कार की दृष्टि से—ह्रास परिलक्षित होता है । 'समन्त' ने 'समन्ता' या 'समाज' का रूप ग्रहण कर लिया था तथा 'समन्ता' की संगीत शक्ति में स्वच्छन्दता अधिक बढ़ गयी थी । संगीत के ऐतिहासिक इन शक्तियों में मेघदूत, भस्मदूत इत्यादि अन्य अनेक प्रकार के श्लोक-समाये भी होते थे । बृहस्पति ऋषि ने संगीत में महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया था । सभी और युग के लोगों ही संगीत की शक्ति करते थे और यह संगीत ही लोगों को प्रेम के सुदृढ़ बन्धन में बाँध देता था ।

विष्णु पुराण, मार्कंडेय पुराण, वायु पुराण, हरिवंश पुराण, बृहत् बर्म पुराण इत्यादि में भी संगीत की बर्णना मिल जाती है, किन्तु नृत्य गीत और मात्र की बर्णना मात्र अपका पश्चात् सप्त स्वरों, धाम-रागी, भूर्धनागी की बर्णना या फिर उर्ध्वी मन्त्रा रम्भा त्रिभोक्तमा आदि शक्तियों के नामोन्मेष मात्र से पौराणिक युग के संगीत का भी तादात्म्य भूम्यात्मक उर्ध्व प्रकार सम्मान्य नहीं है जिस प्रकार वैदिकयुगीन संगीत का । अस्तु प्राचीन संगीत के ऐतिहासिक पक्ष का वास्तविक किन्तु संक्षिप्त व्याख्यापन सर्वप्रथम भरत के नाट्यशास्त्र में ही उपलब्ध होता है ।

भरत युग

भरत जिस प्रकार नाट्यशास्त्र के आदि आचार्य माने जाते हैं, उसी प्रकार के भारतीय संगीत शास्त्र के भी आदि गुरु हैं । भरत के 'नाट्यशास्त्र' में गीत,

बाद एक नृत्य पर सूत्रबद्ध ऐसी सामग्री भी उपागत्य है जिसका किसी सीमा तक वर्तमान संघीत से परम्परागत सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है । प्रत्यक्ष भारतीय (प्रथम प्रकाशन सन् १९२६) में भारत संघीत में वर्तमान संघीत के उत्तरतम्य स्थापन का ऐसा प्रयत्न हुआ भी है किन्तु इस पुस्तक की उपस्थापनाएं अभी विद्वानों द्वारा मास्य नहीं हो सकी हैं गीतवद (मध्य प्रदेश) से प्रकाशित होने वाली संघीत की वैमानिक पत्रिका 'लक्ष्मणी' के संक २ जिसमें ४ में लेकर पाये क कई पत्रों तक 'प्रथम भारतीय का आ प्रथम प्रकाश हुआ है वह इस कथन के प्रमाण स्वरूप उपस्थित किया जा सकता है ।

भारत का 'वाद्य-शास्त्र' प्रथम रूप से नाटक सम्बन्धी ग्रन्थ है, किन्तु नाटकों में संगीत का समावेश होने के कारण इस ग्रन्थ के अद्वैतत्व उन्नीसवें शीर तीसवें अध्यायों में संघीत-शास्त्र का भी संक्षिप्त वर्णन हो पायी है । भारत में धृति स्वर, धाम मूर्च्छना एवं जालियों का वर्णन किया है साथ ही 'जाति' के विभिन्नविधित इस लक्षण भी लिखे हैं यह धन तार मध्य ग्याम अथव्यास अथव्य बहुराज वाद्यव्य तथा शोडशक ११ इन दम लघुगायन में से यह ग्याम और अथव्यास का धात्र क संघीत में विशेष महत्त्व नहीं है किन्तु शेष सानों नियमों से धात्र का संघीत भी जसी-जाति परिचित है अतः अतः ने चाहे उप-राशियों का नाम न लिया हो अथवा धाम रागों की वर्णन न की हो किन्तु इतना अवश्य है कि भारत के नृत्य का संघीत ही कामाक्षर में विभिन्न होता हुआ अपनी वर्तमान दशा को प्राप्त हुआ ।

भारत में दो धामों का उत्पन्न किया है । एक पद्म धाम और दूसरा मध्यम धाम । पद्म धाम की सात शीर मध्यम धाम की ग्यारह इस प्रकार कुल अठारह जातियों का भारत में उन्नेक किया है । २ इस अठारह जातियों के फिर कुछ शीर विद्वान् द्वा भेद किये गये हैं तथापि भारत में न तो धाम शब्द की शीर न 'जाति' की व्युत्पत्तिमूलक व्याख्या की है ।

भारत में पद्म अथवा धाम शब्द सात स्वर मान हैं और इनमें चाईस धुनियों का समावेश किया है । पद्म मध्यम शीर पञ्चम में चार-चार, निषाद शीर धाम शब्द में दो-दो तथा अथव्य शीर शीर में तीन-तीन धुनियाँ वाली हैं ।

- १ इत्यर्थ—श्री भरतमुनिप्रणीतं वाद्यशास्त्रम्, पृष्ठ ३२४ संस्करण १९२६ (ई०) श्रीकृष्णा त्रिलोक, बनारस
- २ इत्यर्थ—श्री, पृष्ठ-३१५

इन सबके प्रतिरिक्त भरत ने बायी संवाही अनुवाही और विवाही इन चार प्रकार के स्वरों को मानकर इनमें पारस्परिक सम्बन्ध भी स्वीकार किया है । १. सवाहुरस्वार्थ पङ्क-मध्यम-भाब और पङ्क-पंचम-भाब को स्वीकार करते हुए बायी तथा संवाही स्वरों के बीच में भी कथना तेरह् श्रुतियों का अन्तर स्वीकार किया है । २. भरत का पंच स्वर भाब मात्र बायी स्वर बन कर रह गया है किन्तु पङ्क-पंचम-भाब कथना पङ्क-मध्यम-भाब भाब के युग में भी अपना महत्त्व बनाये हुए है ।

भरत ने जाति गायन के सम्बन्ध में जो कुछ कहा है उससे बही अस्पष्टता बृद्ध होती है कि भाब के युग में जो स्वान राग गायन को प्राप्त है वही स्वान भरत-युग में जाति गायन को प्राप्त था । जिस प्रकार भाब ठाठ से राग उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार उस काल में मूर्च्छना से जाति की सृष्टि होती थी । सम्भवतः उस युग की मूर्च्छना ठाठ सङ्घ स्वर समूह की संज्ञा थी जो रसपरक जाति गायन का मूल आधार थी । भरतोज्ञ श्रुति स्वर ग्राम और मूर्च्छना के वर्तुण को समझने के बाद अध्येता इसी निष्कर्ष पर पहुँचता है कि जाति-गायन ने उस समय अपने युग के अक्षय संगीत को धारण करने का प्रयत्न किया था वहाँ तक कि देवी राग भी इसी के अन्तर्गत समा गये थे । भरत ने बृहद्गी में 'जाति' पर प्रकाश डालते हुए यह ही बताया है कि इसका जन्म श्रुति और प्रहारि से होता है, यह सब रागों के जन्म का हेतु है तथा इसी के द्वारा रस प्रतीति का धारण होता है परन्तु जाति गायन का तत्कालीन प्रयत्न वैय स्वस्व धर्मी तक सर्वथा स्पष्ट नहीं हो सना है । हाँ इस सम्बन्ध में अधिकतर विद्वान् प्रबन्ध एक मत हैं कि भरत का सनीत सौक्तिक संदीप्त ही वा धिसा सन्धों की तरह वैदिक संदीप्त नहीं ।

१. 'पङ्कजस्य श्रुतमहर्षेण पाण्डुरी जप्यमस्तथा ।
पञ्चमा अक्षरशैव विवाहः सप्त च स्वराः ॥
अनुविद्यस्वमेतेषां रिचयं श्रुतियोगतः ।
बायी र्धवाप संवाही अनुवाही विवाद्यथि ॥

बही—पृष्ठ ३१७

(पङ्कज श्रुतम पाण्डुरा अक्षर संवत और विवाह से जाति स्वर है । ये श्रुतियों के दोष से चार प्रकार के हैं बायी सवाही, अनुवाही और विवाही ।)

२. इत्यथ—बही पृष्ठ ३१७ ३१८

वर्तमान संगीत भरत मुन के संगीत का विकसित रूप ब्रह्मस्य है, परन्तु उत्पत्तीय संगीत से धात्र के संगीत का अविच्छिन्न सम्बन्ध स्थापित नहीं किया जा सकता। वर्तमान संगीत का उत्पत्तीय संगीत से बसन्त सम्बन्ध स्थापित करने से धात्र के सभी संगीतज्ञ व्यर्थ में ही बैसुरे और धम्मानी निन्द्य होने लगेंगे। धात्र का संगीत भरतमुनीय संगीत से पर्याप्त परिवर्तित हो चुका है। इसका कारण भारतीय संगीत पर आरती संगीत का प्रभाव है। इस प्रभाव के कारण भारतीय संगीत ने जो अद्वितीय रूप ग्रहण कर लिया है उसकी भी एक स्वतन्त्र विधिष्टता है। इस त्याग कर भरतमुनीय संगीत को पुन अपना मेला सर्व प्राप्त नहीं हो सकता। भरत और साङ्ग मनेष की श्रुतिवा का धोषन करके जब उप-धोषन-रिक्त्य आरम्भ होती तब धात्र का संगीतज्ञ असमझ्य में पड़े बिना न रह सकता। अस्तु भरत का नाट्य-शास्त्र भारतीय संगीत के ऐतिहासिक सम्पन्न के लिए तो ब्रह्मस्य उपयोगी है परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से वह सामुहिक संगीत का निषामक और धात्रा नहीं है।

दक्षिण

'नाट्य-शास्त्र' के परधान 'दक्षिण' नामक ग्रन्थ का नाम लिया जा सकता है। कहा जाता है कि 'दक्षिण' की रचना भरत के पुत्र दक्षिण ने की थी। विद्वानों में मतभेद होने के कारण भरत के आदिर्मात्र का समय सुनिश्चित नहीं है अतः 'दक्षिण' की रचना का समय भी असम्बिधा रूप से निर्धारित नहीं हो सकता।

'नाट्य-शास्त्र' और 'दक्षिण' के संगीत सम्बन्धी विद्वानों में नहीं वा त्रिक प्रभर दृष्टिकोण नहीं होता। भरत को घटाए जातियों स्वर-भूति को व्यक्तता वाली-संवादी स्वरों की पारस्परिक दृष्टि इत्यादि सभी बातों को दक्षिण ने ज्यों-का-त्यों ले लिया है। किन्तु प्रकार भरत ने धाम शब्द का प्रयोग किये हुए भी उसकी कहीं व्याख्या नहीं की है उन्हीं प्रकार दक्षिण भी इस सम्बन्ध में मौन है।

मर्त्य

इन दोनों ग्रन्थों के परधान मर्त्य इत 'बृहद्देशी' एक उत्पत्तीयययययय है। भरत की तरह मर्त्य के आदिर्मात्र-काल के सम्बन्ध में भी विद्वानों में मतभेद है। इस मतभेद के कारण मर्त्य का समय तीसरी शताब्दी से छठी शताब्दी के बीच माना जाता है।

मर्तव्य ने अपने ग्रन्थ का धारम्भ 'ध्वनि' की व्यापक परिभाषा से किया है। उनके मतानुसार 'ध्वनि' से ही स्वर व्यञ्जन क्रिया का एक इत्यादि बनते हैं वही इनका कारण है। यह 'ध्वनि' व्यक्त और अश्रुत दो प्रकार की है। इनमें से व्यक्त 'ध्वनि' से बर्णोपलम्भ नाम की सृष्टि होती है। यह नाम ही देशी संगीत का कारण है। स्त्री पुरुष बालक बुढ़ सभी शोध अपने-अपने रेश में सामुदायिक को कुछ पाते हैं वह सब कुछ देशी संबंधी है। मर्तव्य के इस उल्लेख का प्रभाव धारण बसकर साइ गेबेज पर भी दृष्टिगत होता है। वह ध्यान देने की बात है कि भारत अपने संगीत को बाल्यक नाम से पुकारते हैं और मर्तव्य देशी संगीत के नाम से। साइ गेबेज ने भी मार्च और देशी नाम से संगीत के दो भेदों का उल्लेख किया है। उनके मतानुसार जिस संबंधी का निबधन बड़ा इत्यादि शब्दार्थों ने किया और जिसका प्रयोग भारत ने किया वह मार्च संगीत है तथा देश-देश में शौंगो की रीति के अनुसार मान्य होने वाला संगीत देशी संबंधी है। वही देशी संगीत की परिभाषा ठी बहुत कुछ बही है जो मर्तव्य ने की है परन्तु भारत के संगीत को मार्च संगीत कहना स्वतः भारत के ही कथन के विरुद्ध हो जाता है। हाँ यह सत्य है कि धारण बसकर साइ गेबेज ने मार्च और देशी संगीत को क्रमशः बाल्यक संगीत और अश्रुत संगीत भी कह दिया है।

मर्तव्य ने भारत और अतिथि का अनुसरण करते हुए स्वर-सृष्टि-व्यवस्था धारी-संबंधी स्वरों में भी या तो एक सृष्टियों का मन्तर इत्यादि प्रमुख सिद्धांतों को स्वीकार किया है तथा 'धाम' और 'मूर्च्छा' जैसे पारिभाषिक शब्दों की भी विस्तृत व्याख्या की है।

मर्तव्य के ग्रन्थ की एक महत्वपूर्ण बात 'राग' शब्द का प्रयोग है। वह 'राग' ही वर्तमान संगीत का प्राण है। मर्तव्य के इस उल्लेख से वर्तमान संगीत की परंपरा प्राचीन काल से स्थापित होती दिखायी देती है। 'राग' शब्द का प्रयोग मर्तव्य से धाम रागों का उल्लेख करते हुए किया है। 'बृहस्पति' के ग्रन्थमय से स्पष्ट हो जाता है कि उस समय सात जाति प्रकार प्रचलित थे जिनमें से एक का नाम 'राग जाति' भी था। जातियों के जो लक्षण मर्तव्य ने दिये हैं वे भी भारत के समान हैं किन्तु 'राग-जाति' के सम्बन्ध में मर्तव्य ने स्वतः यह कहा है कि भारत इत्यादि पूर्ववर्ती भाषाओं में 'राग' की व्याख्या या चर्चा नहीं की है तथा अपने ग्रन्थ के प्रचलित संगीत के आधार पर वे स्वयं ही इसका उल्लेख कर रहे

है। इस कथन से स्पष्ट है कि 'जाति-नायन' धनी-धनी ही परिवर्तित होता हुआ मठय के युग में 'राम-राज' या 'राम जाति' की रूपरेखा ग्रहण कर चुका था।

इस परिच्छेद के प्रारम्भ में ही भारतीय संगीत की परिवर्तनशीलता पर जोड़ा बहुत प्रकाश डाला जा चुका है। भारतीय संगीत के ऐतिहासिक अध्ययन में यह परिवर्तनशीलता सतत दृष्टिगोचर होती है। निश्चय ही मठय के युग के 'राम राज' या 'राम जाति' मात्र के प्रकसित रसों से भिन्न थे। फिर भी इतना अवश्य कहा जा सकता है कि मठय के युग में राम की कल्पना पर्याप्त स्पष्ट हो चुकी थी तथा पुरानी मायन-शैली ने एक नवीन स्वरूप भी ग्रहण कर लिया था। हिन्दी-गीति-काव्य में प्रारम्भ से ही संगीत की जिस रूपरेखा के दर्शन होते हैं उसका स्वरूप-निर्धारण मठय के पर्याप्त ही हो सका था। जो किसी न किसी रूप में—चाहे वह अपनी वर्तमान रूपरेखा से भिन्न ही क्यों न हो—एग का अस्तित्व पर्याप्त प्राचीन काल में भी विद्यमान था। कामिदास के 'प्रतिज्ञान-साकुन्तलम्' के प्रारम्भ में ही तनी द्वारा एक गीत गाया गया है, जो सम्भवत

१ राममार्जवस्य मधुपं पलोत्त भरतादिभिः ।

विकल्पेत तदस्मानिर्तय (ते) जलज संयुतम् ॥२७१॥

यतय मुनि इत्त बृहद्दीपि रावजसलम्,

पुष्ट-०१ त्रियेग्रम संस्करण

(राम मार्ज का जो रूप है और जिसका भरत आदि ने वर्णन नहीं किया उसका लक्ष्य और लक्षण मुक्त वर्णन हम करेंगे)

२ ईतीति शुम्बि धाद भमरेहि तुठमारचर केसर तिहाइ ।

धार्दंतसन्धि रघुमाछाय जलबाधो तिरीछ कुबुनाइ ॥

“(जिन मिरीच-मुक्तों के कोमल केसर-बल की मधुर प्रियाए ।

जुम-जुमकर जलको भीरे फिर-फिर बैठ-बैठ उड़ जाए ॥

रघुमाच से जलको चुनकर लहवयता है सेकर बस्वर ।

कर्कशुल रचकर कालो में पहुँच रही जलको प्रमशाए ॥)

श्री सीताराम चतुर्वेदी द्वारा सम्पादित कर्णिकदास प्रभाषती' (द्वितीय संस्करण) के प्रतिज्ञान साकुन्तलम् का पृष्ठ २

सारांग राग में है ।^१ अठ-राग शब्द की प्राचीनता निश्चित रूप से सिद्ध हो जाती है । अठराग के परवर्ती संगीत-शास्त्रियों ने तो निश्चित रूप से 'राग' शब्द का प्रयोग किया है ।

नारद

नारद हठ 'नारदीय शिखा' का प्रणयन काष्ठ पांचवीं अताम्बी से आठवीं अताम्बी के बीच माना जाता है । 'नारदीय शिखा' के अतिरिक्त 'संगीत मकरन्द' 'राग निरूपण' 'भारतीय संहिता' 'स्वर मञ्जरी' 'संगीत संहिता' इत्यादि कुछ ग्रन्थ ग्रन्थ भी नारद के नाम से उपलब्ध होते हैं । सम्भवतः नारद नाम के कई व्यक्ति समय-समय पर हुए और उन्होंने जिस-जिस कालों में अपने-अपने ग्रन्थों की रचना की । 'नारदीय शिखा' और 'संगीत मकरन्द' के रचयिताओं में तो निश्चित रूप से मिस्रता प्रतीत होती है । 'नारदीय शिखा' में साम-नायक की जो ध्वनि सुनाई देती है वह 'संगीत मकरन्द' में नहीं है तथा 'संगीत मकरन्द' में 'राग' के जिस विकसित रूप के वर्णन होते हैं वह 'नारदीय शिखा' के 'ग्राम रागों' में नहीं होते । 'नारदीय शिखा' में प्राचीन सात जातियों का नाम 'ग्राम रागों' का उल्लेख मिलता है । इसमें परम्परागत सात स्वरों काईस श्रुतियों एवं 'धन्तर' तथा 'काकली' स्वर-नामों का भी उल्लेख है ।

संगीत मकरन्द

नारद हठ 'संगीत मकरन्द' की महत्ता रागों के उस वर्गीकरण पर धारित है जो पुरुषराग स्त्री राग और नपुंसक रागों के नाम से किया गया है । नारद के इसी वर्गीकरण का विकास धारै बतकर राग-राजिनी-पद्धति में परि संश्लिष्ट होता है । 'संगीत मकरन्द' में स्वर-संख्या की दृष्टि से रागों का जो व्यवसाय तथा सम्पूर्ण जातियों में वर्गीकरण एवं समय की दृष्टि से प्राथम्य सन्धान

१ तबस्मि धीतरापेत्सु हरिस्ता प्रसन्नं हृत्ता ।

एव राजेव बुध्मन्तः तारपेत्तातिरंहृत्त ॥”

वही पृष्ठ—१ और ६

(यै तुम्हारे मनोहर गाये हुए तारंग राग से बलशु धाक्य हृमा है ।

जिस प्रकार यह राजा बुध्मन्त बड़े श्रेय से बीहते हुए इस तारंग (धिरल) के हृया है ।)

कानिक एवं रात्रियेव बर्गों में विभाजन भी मिलता है। किसी सीमा तक 'संगीत मकरन्द' के सिद्धांत अपने निश्चित रूप में वर्तमान संगीत का भी नियमन करते हैं। मत्स्य के कारण 'संगीत मकरन्द' का रचनाकाल आठवीं शताब्दी से दसवीं शताब्दी के बीच माना जाता है।

उत्तर भारतीय संगीत के आधिकारिक संक्षिप्त इतिहास यही है जो वैश्वामुनि से लेकर ईसा की दसवीं शताब्दी के अन्त तक माना जा सकता है, किन्तु भारत के 'मादयदास' के अतिरिक्त हम सुनीय काल में कोई भी ऐसी प्रायोगिक पुस्तक अभी तक उपलब्ध नहीं हुई है जो वर्तमान और प्राचीन संगीत के वारत्तम्य-स्थापन में अग्रद्विग्य एवं दृढ़ सहायता प्रदान कर सके। संगीत का आचार मात्र ध्वजा गायनोपयोगी वह ध्वनि है जो सामक्य कण्ठ ध्वजा किसी वाद्य यंत्र से उत्पन्न होती है। इसी का नियमन द्वारा संगीत का विकास हुआ है। नाद के नियमन में तथा तन्मन्त्रात्मी सिद्धांतों के स्थिरीकरण में हिन्दू-समाज को अमूल्य समय प्रदाना पड़ा है। संगीत के आदि काल की कहानी इसी परिधि में, स्वयं एवं स्वर सप्त के सामंजस्य की सम्बन्धी भाषा है। ऐतिहासिक दृष्टि से इसे हिन्दूकाल कहा जा सकता है।

हिन्दी-साहित्य के आधिकारिक के अन्त पाठ संगीत की अत्यधिक उपदिष्टी हुई चुकी थी। उस समय तक राज-दरबारों में भी संगीत का प्रवेश हो चुका था। नाट्यवेद भोज परमादि अनेक जैसे पञ्चांगु संगीत-कला के स्वयं प्रकाश पण्डित थे। यदि यह कहा जाय कि उक्त युग में लोग आश्चर्यकृतता से अधिक

१ "The most flourishing age of Indian music was during the period of the native princes a little before the Mohammedan conquest. With the advent of the Mohammas dans its decline commenced. Indeed, it is wonderful that it survived at all.

'MUSIC OF SOUTHERN INDIA'

by CAPT DAY

Page 31

(भारतीय संगीत की अरम समृद्धि का काल भारत पर यवनों की विजय से कुछ पूर्व भारतीय नरेशों का युग था। भारत पर यवनों का आधिपत्य होने पर भारतीय संगीत का ह्रास धारण हुआ। वास्तव में यह बड़े धारण्य की बात है कि वह अक्षित विल प्रचार रहा।)

संकीर्ण में प्रचुरता के तो कोई प्रतिषेधोक्ति न होती । राजपूतों की उत्कालीन प्रगति का एक कारण सम्भवतः उनका अतिशय संकीर्ण-प्रेम भी था ।

मुसलमानी शासन काल

ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी से भारत में मुसलमानी शासनकाल आरम्भ होता है । ऐतिहासिक अध्ययन के लिए सबसे शताब्दी तक के संगीत को हिन्दू-शासनकालीन संगीत और उसके बाद अठारहवीं शताब्दी के अन्त तथा उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ तक के संगीत का मुसलमानी शासनकालीन संगीत मानकर उसका अध्ययन करना सुविधाजनक हो जाता है ।

मुसलमानों के आक्रमण तथा भारत पर उनके आधिपत्य के साथ मूल उत्तर भारतीय संगीत में परिवर्तन आरम्भ हुआ । इस युग की राजनीतिक हलचलें प्रधानतः उत्तर भारत तक ही सीमित रही । बशिका भारत में अवेसाहृत उन्नत-पुनन कम हुई । हिन्दू राजाओं का आधिपत्य भी बशिका में अवेसाहृत अधिक समय तक रहा फलतः उत्तर भारत के संगीत का ह्रास हो चुकने पर भी बशिका भारत में मूल भारतीय संगीत अधिक समय तक बज्जुल बना रहा किन्तु उत्तर भारत के संगीत में फारस के संगीत का मिश्रण हुआ और यह मिश्रित संगीत अहमद के युग में अपने चरमोत्कर्ष को प्राप्त हुआ ।

अयदेव

आठवीं शताब्दी में अयदेव हुए 'वीरगोविन्द' उत्तरेकीय राजा हैं । 'प्रबन्ध' नाम के 'वीरगोविन्द' में अनेक वीर और अत्यधिक ही हुई हैं । इन प्रबन्धों को उचित रूप और ठाठ में पाये जाने का निर्देश भी अयदेव हैं । अहमदशाह 'वीरगोविन्द' के प्रथम प्रबन्ध के आरम्भ में ही 'अय प्रथमप्रबन्धो नामकययण क्यक तामे वीरते' लिखा हुआ है । वहीं पुर्नरी राम का निर्देश है तो वहीं अस्तु राम का अतः 'वीरगोविन्द' के आचार पर यह कहा जा सकता है कि आठवीं शताब्दी में राम-गायन प्रचलित हो चुका था । 'वीरगोविन्द' में आये हुए अनेक अस्तु इत्यादि रामों के नाम आज भी प्रचलित हैं, किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि अयदेव के युग के अनेक अस्तु इत्यादि राम अपने मूल गायन-रूप में आज भी क्यों-क्यों पाये जाते हैं । वैसे कि आरम्भ में ही बताया जा चुका है बहुत से प्राचीन रामों के नाम आज भी हैं ही पुण्य हैं परन्तु उनका गायन-रूप अब पर्याप्त परिपक्व हो गया है । अय

देव के प्रबन्धों की जस युग में स्थापितिपिया नहीं बनी थी अथ अपने-युग के संगीत का नाट्यात्मक स्वरूप आज निश्चित नहीं किया जा सकता । संगीत के विद्यार्थी के लिए 'गीतमोहिनी' इसी कारण केवल ऐतिहासिक महत्व की रखता है । हाँ हिन्दी-सीतिकाव्य की परम्परा के अध्ययन में यह पुस्तक अत्यन्त सहायक होती है ।

शाङ्गदेव

तेरहवीं शताब्दी में शाङ्गदेव द्वारा भारतीय संगीत का प्रसिद्ध ग्रन्थ 'संगीत रत्नाकर' लिखा गया । यद्यपि संगीत 'रत्नाकर' को मिथे हुए लगभग ६५० वर्ष व्यतीत हो चुके हैं परन्तु समीतज्ञों पर अभी तक इस ग्रन्थ का आतंक है और इसे सोच बड़ी मज्जा की दृष्टि से देखते हैं । भारत की संगीत-व्यक्ति जितनी मज्जा है, उतनी ही शाङ्गदेव की बुद्धि से देखते हैं । किन्तु संगीत का ज्ञान विस्तृत एवं सान्निध्यपूर्ण 'संगीत रत्नाकर' में मिलता है वैसे धार किसी ग्रन्थ में नहीं, अथ 'शाङ्गदेव' के पाण्डित्य के सम्बन्ध में कुछ मात्र भी सन्देह नहीं किया जा सकता । बुद्धि होने पर भी 'संगीत-रत्नाकर' क्या उत्तर भारतीय संगीतज्ञ और क्या शक्तिशाली नायक सभी के लिए संगीत-ज्ञान का देव बना हुआ है ।

'संगीत रत्नाकर' की बुद्धि का कारण शाङ्गदेव का भारत-व्यक्ति से मोह है । यदि उन्होंने अपने युग के प्रचलित संगीत को ही लेकर अपने ग्रन्थ का प्रस्थान किया होता, तो 'संगीत रत्नाकर' में इतनी बुद्धि न पायी ।

अपने ग्रन्थ के आरम्भ में शाङ्गदेव ने 'संगीत' के पारिभाषिक अर्थ में गीत गाय और नृत्य दोनों कलाओं का समावेश करते हुए उसे 'मार्गी और बेची' इन दो वर्गों में विभाजित किया है । 'मार्गी' संगीत से शाङ्गदेव का तात्पर्य उस संगीत से है, जिसका आविष्कार ब्रह्मा इत्यादि देवताओं द्वारा और प्रतिपादन भारत द्वारा किया गया था तथा 'बेची' संगीत से उनका अभिप्राय अपने युग के उस प्रचलित संगीत से था जो भिन्न-भिन्न प्रदेशों में जनसंघ के अनुसार प्रचलित था । शाङ्गदेव ने इसी पूर्ववर्ती और अपने युग के प्रचलित संगीत में सम्बंध स्थापित करने का असफल प्रयास किया क्योंकि तेरहवीं शताब्दी के संगीत का भारत-युग के प्रति प्राचीन—कमाल अथ कम में विस्तृत—संगीत से बजाए सम-

१. गीत गाय तथा नृत्य अर्थ संगीतमुच्यते ।

मार्गी बेचीति तद्वत् वा तत्र मार्गः न उच्यते ॥

इन्हीं संगीतज्ञों में से एक वा नाम गोपालनायक वा जो अपने युग का प्रसिद्ध कलाकार माना जाता है । कहा जाता है जब गोपालनायक अलाउद्दीन के दरबार में पहुंचा तब उसके गीत से अलाउद्दीन और उसके दरबार के विद्वान् आश्चर्य चकित रह गये । यहां तक कि अमीर खुसरो भी प्रतियोगिता में उसके सामने घाते का साहस न कर सका । किन्तु अमीर खुसरो ने विजय प्राप्त करने के लिए एक बाल सीधी । अलाउद्दीन के बिहास के नीचे छिपकर अपने गोपालनायक का गाना सुना और फिर अपनी विमर्श प्रथिमा से उसे स्मरण रखते हुए उसी सीधी के अनुकरण से गोपालनायक को पराजित किया ।।

(उस काल के पुस्तकालय इतिहासकारों का कहना है जब सन् १२६४ में अलाउद्दीन ने बसिद (रक्तम) पर आक्रमण किया तो सन् १३१० में उसके पुस्तकालयपालि मलिक जाफर न बसिद भारत पर विजय प्राप्त कर ही उस बन्धु संगीत इतना श्रेष्ठ था कि सभी संगीतज्ञ और उनके हिन्दू गुरु चाही सीना के साथ से जाये गये और उत्तर भारत में बसा लिये गये ।)

1 It is related that when Gopal visited the Court of Delhi he sang that species of composition called Gita the beauty of which style enunciated by the powerful and harmonious voice of so able a performer could not meet with competition. At this the Monarch caused Umir Khwarow to remain hid under his throne where he could hear the musician unknown to him. The latter endeavoured to remember the style and on a subsequent day sang Qawal and Tarana in imitation of it which surprised Gopal and fraudulently deprived him of a portion of his due honour.

—TREATISE ON THE MUSIC OF HINDUSTAN
by Capt. WILLARD Page-107

(कहा जाता है कि जब गोपाल दिल्ली के दरबार में आया तो अपने अपनी संगीत सीधी के बराबर को गाना जिसे गीत कहा जाता है । इस युक्त गायक ने शीघ्र और माधुर्य भरे स्वर में जिस ढंग से बाया उत तरह कोई नहीं था बरता था । इस पर अहमदशाह ने अमीर खुसरो को अपने सिंहासन के नीचे छिप कर बैठ जाने का आदेश दिया जहाँ से वह उन घनघन संगीतज्ञ का गायक सुन सके । अमीर खुसरो ने गोपाल की गायन-सीधी की स्वरसु रचने का प्रयास किया और अपने दिन पत्नी सीधी का अनुकरण करते हुए 'कोल' और 'ताना' वाचा जिससे गोपाल चकित रह गया । अमीर खुसरो की इस कोलवादी से गोपाल पराजित अन्ततः प्राप्त करने से चकित रह गया ।)

कुसरो की यह विजय यद्यपि ग्यापसंबत नहीं रही जा सकती किन्तु यह घटना कुसरो की विलक्षण प्रतिभा का प्रमाण परबन्ध है।

उत्तर भारतीय संगीत के शाब फारस के संगीत के सम्बन्ध का कार्य अमीर कुसरो द्वारा ही सम्पादित हुआ। अपनी विभक्तकालता और मुहम्मद से कुसरो ने सामग्री 'सरपरदा' 'मीसफ' जैसे नवीन गानों का निर्माण किया। पाइशीतास शूनफाक और झूमरा तानों का विधान भी कुसरो को ही देन मानी जाती है। कुछ लेखकों का मत है कि तितार और तबला जैसे बाजों का प्राविष्कार भी कुसरो ने ही किया था।

कुसरो के प्रपन्न से यद्यपि उत्तर भारतीय संगीत की बरबरीत में ठारिखत अन्तर उपस्थित हुआ, किन्तु उसकी आत्मा फिर भी भारतीय ही रही। कुसरो ही नहीं, परबर्ती मुसलमान संगीतज्ञों ने भी यद्यपि इन परम्परा में योगदान दिया परन्तु भारतीय संगीत की आन्तरिक व्यवस्था में उनसे केवलाश भी अन्तर नहीं आया। यह सर्वथा भारतीय ही बनी रही। कुसरो ने स्वतः यह घोषणा की थी कि वे तुर्क होने पर भी भारतीय ही है तथा उनकी कला भी भारतीय है, मिला या अरब से उन्हें कोई प्रेरणा नहीं मिली।

सोचन

अंशः साम्य के साधार पर सोचन कृत 'सुमतरंगिणा' बरबर्ती अताबरी की रचना मानी जाती है। सोचन ने अपनी पुस्तक में यैयिन कोकित विद्या

१ "Curiously enough Amir Khushru is the inventor of a lyre the famous Sitar of today

—"Hindustani Music by G H RANADE Page—9

१ "I am an Indian, if a Turk.

I do not derive my inspiration from Egypt.

I do not therefore Speak of Arabia

My lyre responds to the Indian "Tune"

Life and Works of Amir Khushru

by Dr Mohamed Vahid Mirza

(The University of the Punjab, 1935)

(तुर्क होते हुए भी मैं भारतीय हूँ। मुझे विषय से प्रेरणा प्राप्त नहीं होती। इसलिए मैं अरब की बर्बा नहीं करता। मेरे बाजे पर तो भारतीय संगीत ही प्रबलित होता है।)

पति के नीचे उद्धृत किये हैं तथा यमन जैसे मुससमानी रागों का भी उल्लेख किया है। प्रथम लोचन को पद्महर्षी सत्ताम्भी का विद्वान् मानने की वारणा बत बंदी होती है। तरंगिणी में गीतों के निबद्ध तथा अनिबद्ध चेरों का वर्णन करने के पश्चात् लेखक ने धृतिगोत्रों पर भी विचार किया है और भारत धृतिगोत्रों के नागों तथा पद्म मध्यम और पंचम में बार बार यन्त्रार निपाद में दो-दो तथा रिपम और चैवत में तीन-तीन धृतिगोत्रों की व्यवस्था को अपने पूर्ववर्ती प्राचार्यों (जहाँ काष्ठ नदिन इत्यादि) के अनुसार ही स्वीकार किया है।

वर्तमान संकीर्ण पद्धति का प्राचार्यगुप्त कुछ ठाठ विभावल है। समीप के प्रारम्भिक विद्यार्थी को प्राच्यरस पहले इसी को सावना करनी पड़ती है। विष्णु लोचन का कुछ प्राच्य वर्णनाम विभावक से मिल है क्योंकि 'तरंगिणी' के कुछ बंटे में जो यन्त्रार निपाद प्रयुक्त हुए हैं वे वर्तमान काफ़ी अठ के अनुसार हैं, अतः लोचन का कुछ ठाठ वर्तमान काफ़ी है।

लोचन की संकीर्ण-पद्धति में रागों की अत्यन्तक व्यवस्था महत्त्वपूर्ण है। जिस प्रकार प्राच्य प्रमुख बस या बारह व्यक्तों से सभी रागों की उत्पत्ति होती है उसी प्रकार लोचन ने बारह जनक राग तथा पञ्चतर अगम राग माने हैं। लोचन के सभी अगमरागों के नाम आज भी प्रचलित हैं। उनमें से प्रत्येक ऐसे हैं जिनके नाम तो वे ही पुराने हैं परंतु उनकी माधारणतः करीबन बहल पथी है और कुछ ऐसे भी हैं जो पुराने नामों और नादस्वरूप के साथ आज भी प्रचलित हैं। उदाहरणार्थ तरंगिणी में वर्णित वनम राग आज भी उसी नाद और उन्हीं स्वर-समुदायों के साथ गाया जाता है। इस राग के नाम और नाद-स्वरूप में कोई अंतर नहीं है; परन्तु लोचन के युग की धैरवी आज भी काफी है तथा पीठी, कैशर और वनाम्भी अथवा आज के धैरव विभावल और पुरियावनाम्भी रागों के अनुसार हैं।

लोचन ने अपने विभिन्न रागों के गाने जाने के समय का जो उल्लेख किया है वह भी आज के संकीर्ण का ध्यान बनायाव ही धातुष्ट कर सेवा है। बहुत से रागों के गाने जाने का समय बही है जो आज भी स्वीकृत है। उदाहरणार्थ धैरव और रामकभी का समय सुषोभन के निबद्ध विभावल का प्रातःकाल का प्रथम प्रहर, कल्याण का रागों का प्रथम प्रहर सारंग का यथ्याहुतात वीरगा का मध्यरात्रि मङ्गला का रात्रि का तृतीय प्रहर तथा मेघ का समय वर्षा-काल आज भी सर्वसम्मत है।

मध्यकालीन धार्मिक उत्थान और संगीत

हिन्दी-साहित्य के इतिहास की दृष्टि से देता जाय तो हम समय तक बीरबाबा कात समाप्त हो चुका था तथा महान् वैष्णव-भक्तोत्थान में भारत का कौना-कौना प्रभावित हो रहा था। तत्कालीन भारतीय संगीत पर भी इस भक्तोत्थान का प्रभाव पड़ा। फलतः उस युग का संगीत दो भिन्न धाराओं में प्रवाहित होने लगा। भक्ति-काम्य में निर्गुण ज्ञानाशयी वात्सा के सगुणों और मुर मीरा तुलसी जैसे सगुण भक्तों में भी संगीत को अपनाते हुए उसे भारत-व्याप्त का स्वरूप बनाया, अतः इस युग के संगीत तथा सत्य और सत्य कवियों के संगीत सम्बन्धी दृष्टिकोण पर भी विचार कर लेना समीचीन प्रतीत होता है। संगीत में तत्कालीनता प्रदान करने की जो अपरिमेय शक्ति है उसी के कारण सत्य और सत्य कवियों ने इसे अपने आप ही के साथ अपनाया था।

संगीत की सम्प्रदायिकी दृष्टि के सम्बन्ध में दो मत नहीं हो सकते हिन्दु बहुपयोग अथवा दुरुपयोग सम्बन्धीता का भी हो सकता है। संगीत से अलग तत्कालीनता प्रसपरक भी हो सकती है और धर्मपरक भी। अतः यह तथ्य सब दृष्टिकोण पर अवलम्बित है जिससे हम मानव-जीवन को ग्रहण करते हैं। हिन्दु-धर्म में जीवन का दृष्टिकोण प्रदानत धार्मिक है। अर्थात् बाण प्रक तथा अन्वय—जीवन का लक्ष्य हीन जीवार्थ भाग—निवृत्ति-मार्ग का ही अनुकरण करता है, प्रकृति मार्ग का नहीं। साथ ही हिन्दु-धर्म की माध्यमार्ग कर्मसुधार पुनर्जीव और संसृष्टि को भी स्वीकार करती है। फलतः भारतीय चिन्तन मार्ग धार्मिक दृष्टिकोण पर अधिक आश्रित है। इसी कारण संगीत भी हिन्दु धर्म में ईशोपासना का प्रमुख साधन बन जाता है।

यहाँ सत्य की मनोवृत्ति पर भी विचार कर लेना चाहिए। सत्य की अन्तिम स्वरूप एक तथ्य है, अतः सब पर धर्म राम का प्रभाव नहीं पड़ता।^१

१. म्याक विद्यालय और विज्ञान। ये सब पुस्तक सुनहु इतिहास।
 बाबा मन्ति सुनो सुनो बोझ। नारिकरं जाने सब कोझ।
 मीठु न नारि नारि के कथा। धर्मकारि बहु पीति धनूपा।
 तुलसीदास "राजवर्ति मानस" उत्तर काण्ड पृष्ठ—
 २८१ (पीठा प्रेस, पीरवापुर)

जन का मन अपने मनवान् में इतना तस्तीन हो जाता है कि उसे अपने मनवान् के प्रतिरिक्त और कुछ मुमता ही नहीं । इसी तस्तीनता के साथ संगीत की तस्तीनता भी जा गिराती है । फलतः मन्त्र की तस्तीनता अपने मनवान् क प्रति द्विगुणित हो जाती है । तात्पर्य यह कि यदि लौकिक वाक्यांश में तस्तीन व्यक्ति संगीत को अपनाता है तो संगीत उसकी लौकिक क्षिति को बढ़ा बढ़ा है और यदि आध्यात्मिक मनोवृत्ति का व्यक्ति संगीत का सहारा मता है तो संगीत उसकी आध्यात्मिक मनोवृत्ति को दृढ़ता कर देता है । मूर तुमसी और मीरा का युग हिन्दी-साहित्य का स्वर्ण-युग है किन्तु यही युग संगीत का भी स्वर्ण-युग माना जाता है । तानसेन जसा अग्रतिय गायक इसी युग का वरदान था । तथापि ध्यान रखना चाहिए कि इस युग में एक ओर तो प्रकृष्टर बंस बना प्रमी सम्राट् के दरबार में संगीत कला का उत्कर्ष और उसके द्वारा मनोरंजन का मनोरम सामर समझ रहा था और दूसरी ओर सीकरी से कुछ काम न रखनेवासे सम्र लौकिक सुखोपभोग का कुछ समझते हुए संगीत के साध्यम से अपने-अपने इच्छेक के ध्यान में लगे थे । यह ठीक है कि उस युग के राज दरबारों में संगीत-रचना का जो उत्कर्ष और निष्कार हो रहा था उसका प्रभाव नदरों के संगीत पर भी अक्षर्य पड़ा । भारतीय संगीत सर्वत्र से परिवर्तनशील अक्षर्य रहा है परन्तु कतिपय प्रपचारों को छोड़कर एक ही युग में जो राग भिन्न-भिन्न प्रकार से नही गाये जा सकत प्रत्य जो राग उस युग क-कल-श्रेणी दरबार-सायक प्रयुक्त कर रहे थे उन्हीं को नरक नीम की जगोम में ला रहे थे फिर भी दोनों क प्रवीन में भिन्नता थी । दरबारी गायक कला की कारीफियों में उलझे हुए मनोरंजन का एक अनुपम साधन उपस्थित कर रहे थे किन्तु अदरों को न इस प्रकार की कारीफियों से कोई मतलब था और न मनोरंजन उनका उद्देश्य । उन्होंने तो अपने युग के संगीत के सामान्य स्वरूप को अपनाकृत अपना लिया था और संगीत की मधुर स्वर-सहरी जनकी तस्तीनता को जहाँ तक बढ़ा सकती थी वस वहीं तक संगीत उन्हे पाह्य था । इस प्रकार उस युग में संगीत की द्विविध धाराएँ प्रकाहित हा उठी थीं जिनमें से एक का उद्देश्य कुछ नभारमक प्रसिध्दति और मनोरंजन था तो दूसरे का नरिः-नीतिनायक का मनोरम गुंवार ।

अक्षर

१७५६ ई० से १९०५ ई० तक अक्षर का समय माना जाता है । इससे के युग में भारतीय और अरबी संगीत के सम्बन्ध से जिस प्रकार

संयोग-शैली का प्रादुर्भाव हुआ वह इस समय धरने चरमोत्कर्ष को पशुप पुष्टी को । इसी दृष्टि से यह युग संयोग का स्वर्ण-युग माना जाता है । अमर वायक तानसेन का प्रादुर्भाव भी इसी युग में हुआ तथा हृदय और उप शक्ति-पाला के प्रसिद्ध कवि और वायक मूर मीरा एवं तुलसी भी इसी युग की विभूतियाँ हैं ।

अरब केवल संगीत-शैली ही नहीं उच्चतम सगीतय भी था । तबकात बंगाल में बहु मञ्जीर कृत्य था । अरबों के युग के नाम में धनी तक अरब के बनाई हुई कृत्य गने प्रचलित हैं ।

तानसेन और प्रपद-शैली

अरब के प्रोत्साहन में उच्च युग में तानसेन संयोग की वर्धित वर्धित हुई । प्रसिद्ध वायक तानसेन अरबकी दरबार का ही एक रत्न था । तानसेन मूलतः ब्राह्मण तथा कुलावत के प्रख्यात अरब संयोगी तानसेन स्वामी हुरियास का शिष्य था । तानसेन के अतिरिक्त अरब के दरबार में त्रिशकर्त, तमोबनसिंह, श्रीचन्द्र इत्यादि प्रसिद्ध वायक थे ।

इस समय प्रपद-शैली का प्रचार था । उर्वरक चारा कर्माकार प्रपद के अतिरिक्त विज्ञान थे । इन चारों की विभिन्न शैलियों का 'बानी' नाम से धनी तक प्रपद शैली के वायक अनुसन्ध करत हैं । तानसेन का 'बानी' शीखरी या गावच्छारी कहलाती है तथा मीरा की चम्पा दास, लखार और मीरा । प्रपद-शैली का चरमोत्कर्ष इन्हीं कर्माकारों के प्रयत्न में हुआ । इस युग के अरबों और अरबों पर भी अरबोत्कर्ष वर्धित का प्रचार पड़ा पशुप स्वामी क चरमोत्कर्ष प्रदर्शन की प्रवृत्ति इनका ध्यान हृदय की नातिक पुकार की सग अतिरिक्त की और अतिरिक्त रहा । दीननाथिन्ध' की रचना करके अरबोत्कर्ष चरमोत्कर्ष अताब्दी में ही इस युग में मार्ग प्रदशन कर चुके थे । पाये चरमोत्कर्ष चिणारीत हिन्दुविश्व स्वामी इतिहास प्रभुति ने उच्च मार्ग को धीरे प्राप्त किया तथा मूर, तुलसी और मीरा ने धरने मागत के इस शैली को युग-युग के लिए अमर बना दिया । इनके पीछे हिन्दी-साहित्य में उच्च प्रचार 'प' संज्ञा

१ इष्टय — आचार्य प्रातःपठे कृत 'हिन्दुस्थानी संयोग-धरति' भाग ४

से प्रतिष्ठित किये जाते हैं जिस प्रकार निर्गुण ज्ञानाययी शास्त्रा के वन्तों के गान 'बानों' कहलाते हैं। सुर सुलसी और मीघ के पलों में तो सचमुच साहित्य और संगीत का प्रथितीय संयोग हुआ है।

राजा मान

घकबर के विहासनाटक होने से कुछ पहले ही म्वातिपर-संवीत-बराता स्थापित हो चुका था। म्वातिपर के राजा मानसिंह इसके संस्थापक थे। वर्तमान म्पुपर-संवीत के सम्बन्धता राजा मानसिंह ही माने जाते हैं। उनके युग में 'मान-कुतुहल' नामक ग्रन्थ श्री रचना हुई जिसे इनकी प्रेरणा से तत्कालीन कई विद्वानों ने मिलकर सम्पादित किया था।

पुण्डरीक विद्वत्

घकबर के युग में सामरेश पर फारसी बंधन बुरहानखाँ का प्राधिपत्य था। बुरहान खाँ के दरबार में पुण्डरीक विद्वत् नामक एक प्रसिद्ध संवीतज्ञ हुए जिन्होंने (१) 'बदरप बग़ोरय' (२) 'राज माता' (३) राग मंजरी' और (४) 'गर्जन निर्णय' नामक चार ग्रन्थ लिखे। कहा जाता है कि सामरेश पर घकबर का प्राधिपत्य स्थापित हो जाने के बाद पुण्डरीक भी घकबर के दरबार में बसे गये थे।

पुण्डरीक कृत 'बदरप बग़ोरय' का कुछ बात 'मुबारकी' है जो इतिहास भारत में प्रचलित वर्तमान कल्पकाली' मेल के अनुस्यू है। पुण्डरीक ने अपने राजों को औरह स्वयं पर प्राप्त किया है। उपर्युक्त चारों ग्रन्थों के सम्बन्ध से यह जो स्पष्ट हो जाता है कि उस युग में संवीत केवल एक राग में ही सीमित हो गया था। 'राज माता' में पुण्डरीक ने राग-रागिनी पुन इत्यादि की ब्यक्ति से अपने राजों का वर्णन किया है।

जहांगीर-युग क संगीतज्ञ

घकबर की मृत्यु (१६०३ ई.) के बरबाद जहांगीर दिल्ली के विहासन पर आबद हुआ। यह निश्चयसत्यक रूप से नहीं कहा जा सकता कि घकबर के दरबार के जितने श्रेष्ठ गायक जहांगीर के दरबार में विद्यमान थे। 'गुजक और इकबालनामा के आधार पर यह कहा जाता है कि जहांगीरशाह बराला परबैर बाद मुल्बराद कल्प तथा इकबाल इत्यादि उस युग के प्रसिद्ध कलाकार थे।

१. हेतिलः— A Short Historical Survey of the Music of Upper India by Pandit V.N Bhatkhatke Page 25

मे राग और रागिनियों के ('ध्यान' शीर्षक के अन्तर्गत) जो शैव-स्वरूप उपस्थित किये हैं वे इतने मनोरंजक हैं कि हृदय बरबस उनकी ओर घाकूट हो जाता है । बाबकम भी अनेक ऐसे मोक्षे गायक विद्यापी बंगे जिन्हें 'ध्यान' सम्बन्धी श्लोक कछास हैं । लेखक ने 'वर्ण' के रागाध्याय में रागों और उनकी भार्याओं के त्रिम प्रतिबिम्ब के दर्शन कराये हैं उससे लेखक की पुस्तक का नाम 'राग वर्ण' साबक हो जाता है ।

'राग-वर्ण' हिन्दी के रीतिकामीन युग के कुछ ही पूर्व लिखा गया था घट रीतिकामीन मनोवृत्ति के यहाँ स्पष्ट दर्शन होते हैं । 'राग-वर्ण' में राग रागिनियों का बर्णन हिन्दी की रीतिकामीन कविता के नायिका-मेह के समकक्ष है तथा नैतिकता की तुहाई बैठे रहने पर भी त्रिस प्रकार नायिका-मेह रतिक कर्तों के मनोरंजन का अभी तक साबन बना हुआ है उसी प्रकार उगर्भुल बर्णन के कारण 'वर्ण' भी शोकप्रिय बन गया है । इस विवेचन से यह साभास मिलता है कि उस युग में किस राग का (मन-रसों में से) किस राग के साथ सम्बन्ध था । कामान्तर में चित्रकारों द्वारा इन राग-रागिनियों के शैव-स्वरूप के अनेक सम्य चित्र दने । ऐसे चित्र बाबकम भी विभिन्न प्रदर्शनियों की घोसा बहाते रहते हैं ।

घात्र का बुद्धिवादी युन प्रत्यक बात को ठक की कसीटी पर कसकर उसके यनाथ मूल्यांकन का प्रयास करता है । वर्णकार की 'तु गस्तनी' चरमुसी 'मनोज्ञा' वीरपुठिकानी' मूपाती का चित्र ३ चाहे उसके हृदय का

१—'वीरपुति' कुकुनविप्लवेष्टा ।

तु गस्तनी चरमुसी मनोज्ञा ॥

कीर्त स्मरंती विच्छेत्तु वृता ।

मूपातिकेयं रसप्राप्ति मुक्ता ॥"

डा० विश्वामरनाथ अड्ड द्वारा अनुदित (बाबोबर पण्डित इत)

'संगीत वर्ण' पृ३—११२ प्रथम संस्करण

(का गोर बर्ण की कागि वाली है । त्रिके घरीर पर केसर का लेव है । त्रिके तन ऊंचे है । वो चरमुसी वीर मनोज्ञा है । विरह से बस्त होकर वो वास्त का स्मरण करती है ऐसी मूपाती रागिनी है जो मस्तरस मुक्ता है ।)

मनोरंजन मने ही कर सके बल्कि उसका धार्मिक प्रतिष्क मह जाने बिना कभी सम्पुष्ट नहीं हो सकता कि भूपाली का आरोहावरोह उसके बाही संवादी इत्यादि स्वर तथा उसके स्वर-विभ्राम का स्वरूप क्या कीर केना है ? एम के देव-स्वरूप की प्रवेला धात्र उसका ना-स्वरूप अधिक महत्वपूर्ण बन गया है । वर्षाचार के तदन नीलकमल के समान वाग्निबाधे मधराग । स धात्र हमारी ठक तक सम्पुष्टि नहीं हो सकती जब तक वर्षाचार हम प्रतीमाति यह न समझा दे कि समक युग के मधराग को हम ठीक-ठीक किस प्रकार मा समक हैं परन्तु यह पढ़ने ही कहा जा चुका है कि वर्षाचार क स्वराध्याप धीर रागाध्याप से वैपम्य है यत वर्षाचार के यह, धंय स्याम स्वर धमका मुछनाएँ राम-नरानो करण में हमारी विदोष सहायता न कर सकेंगी ।

संशत वर्षक के अध्ययन से हम यान के भी मधन विमने हैं कि उन समय एक ओर ता लोचन के युग से जती धानी हुई जस्य जनक पदति प्रचलित थी तथा दूसरी ओर राम-रायिनी-पदति भी जनक लोगों को मास्य थी । बल्लुन उन युग तक राम रायिनी-पदति में विचयन ह्युमन मरनमन ह्युमान मय कचिनाम मत्र सोमेस्वर यत इत्यादि धनैक प्रमातिमा प्रचलित हो गयी थी । वर्षाचार ने 'रायाम्याय' के बारहूँ दबोक में इसी धार सदेन करत हुए पारंती द्वारा राम रायिनी, समय अतु इत्यादि के मन्त्रम में प्रदन करा कर सिव क मुन से 'विचयन' का उन्नेक करचाया है । 'संशत वर्षक' के बा ह्युमान मय का ही प्रकार धयिक रहा । आजकल भी जो लोग प्राचीन राम रायिनी-पदति को मानते हैं उनमें से धनिकंस की अडा ह्युमान मय पर ही है ।

१—“नीलोत्पलावधपुत्रितुलनावधकः ।
 नीताम्बरस्तुभित्वातकवाच्यमानः ।
 पीयूषमंजुसितो मनमध्ववर्ती ।
 नीरेषु रात्रति युवा क्लिप्त मैधरागः ॥”

वही पृष्ठ—१०६

(नीलकमल के समान जिसका धंय है, अट्टमा के समान जिसका युव है पील रंन के वरत्र है तथा से व्याकुल बन का वायक पक्षी जिसकी पाचना करता है । समूत के समान मधुर जिसका म्ब हास्य है । जिसका निवास मैध में है । पीरी में गुणोपित होने वाला तथा तदन एगा मैधराग प्रोमित होता है ।)

अस्तु सुचलनामी घासन काम के पूर्वार्ध के संगीत का संक्षिप्त इतिहास यही है। संगीत के प्राचीनतम और कलापक्ष का पारस्परिक सम्बन्ध यथोचित रूप में न रहने के कारण मात्र पुस्तकों की सहायता से उस युग के संगीत को समझना बठिन है। ह्रीं अध्ययन के परिणामस्वरूप इतना प्रबल्य पता चल जाता है कि इस काल में मध्यम ग्राम का लोप हो गया था और मात्र बहून् ग्राम पर ही तत्कालीन संगीत धातुत था। उत्तर भारत में राय-रायिनी पद्धति का प्रचार था तथापि लोप भेस (ठाठ) पद्धति या जनक-जन्म पद्धति से भी प्रपत्तिभित न थे। मूर्च्छनाधों प्रचवा जातिधों है विभिन्न राय निकालने की प्रवा पीसे कुट गयी थी तथा संगीत प्राक् बारह स्वरोँ पर धातुत हो गया था।

भारतीय संगीत की प्रमुख शैलियों का श्रालोचनात्मक अध्ययन (रीतिकाल से पूर्व तक)

(ग)

भारत और साइबेरिया के युग का संगीत आज बहुत कुछ अस्पष्ट है, तथापि भारत के 'नाट्य शास्त्र' और साइबेरिया के 'संकीर्ण रत्नाकर' के आधार पर उत्कृष्टतम विद्वानों के संगीत को जो कल्पना होती है वह एक पामीर और हिमालय स्वस्व के संगीत को मानस नेत्रों के सम्मुख उद्घोषित करती है ।

'रत्नाकर' में 'वादि' के जो सप्त उदिये दिये हुए हैं उनसे पता चलता है कि वादि-वादन यह, प्रथम सार, मध्य, ग्राह्य उदयमान बहुल मन्त्राल, वाद्यवाद्य एवं शोभावाद्य से युक्त था । इस विवरण से उस युग के संगीत का स्वर-प्रधान स्वस्व बोझ-बहुत स्पष्ट हो जाता है । इन विशेषताओं का दिग्दर्शन ध्यान में विशेष रूप से हो सकता है, यद्यपि प्राचीन संगीत के सम्बन्ध में हमारे ध्यान प्रधान स्वस्व की कारण अधिक स्पष्ट होती है ।

१—“प्रार्थित्तारवशात्तस्य ग्राह्य-वशात्तदी तथा ।

अपि तन्मन्त्रवादिभ्यामी बहुलं वाप्युता तत ॥

एतावन्तस्मात्तु बहु मन्त्रानि वादिषु ।

वाद्यबोद्धिते क्वाचित्पिबन्धुप्रयोग ॥”

श्री साह्यदेव इत्य 'संकीर्ण रत्नाकर' पृष्ठ—७६ और ७० ध्यान-प्र-

धान संकीर्ण रत्नाकर, अध्याय १३, विद्वान् १६४७

(यह संज्ञा सार, मध्य, ग्राह्य उदयमान उदयमान विद्वान् बहुल मन्त्राल से ध्यानपूर्वक किन्तु ग्राह्य मन्त्र 'वादि' के है । यही वाद्य और शोभा भी माने जाते हैं, इन प्रकार के हैं ।)

काव्य में जो स्थान भावपल और कलापल का है, किसी सीमा तक संगीत में वही स्थान जमघट आभास एवं ताल इत्यादि धार्मिक-कारिक प्रयोगों का है। संगीत में जो रसतरंगता है वह उसके साम्य आभास में ही निहित है। उसकी ध्रुव मायात्मक आत्मा यही है। सुन्दर उच्चारण से युक्त पीठ की बलिष्ठ उच्चरी ताल मुरली उसके तथा स्मृति प्राङ्ग, वृष्णाङ्ग, ज्योतिष इत्यादि ऐसी सामग्री और संस्कार हैं जिन्हें उनके मन्त्रोक्त धरीर का निर्माण एवं गूँगा होना है। आभास की बलि मन्त्रीर ही है, अर्थात् इसमें गायक को मानसिक-व्यक्ति की पूरी सुविधा प्राप्त हो जाती है किन्तु ताल उसके धीरे मुरकियाँ जपसता की व्यञ्जक हैं जपसारी के छात्र इनका प्रयोग अधिकतर में कलात्मक संस्कार का ही सुजन करता है।

‘रत्नाकर’ में ‘स्वस्थान’ नियमों का जो उल्लेख हुआ है वह भी प्राचीन संगीत की प्रीति आभास-शैली को इंगित करता है। इसमें कोई शंका नहीं कि बहुत ही उच्च कोटि के स्व-ज्ञान एवं राग-ज्ञान के बावजूद इन नियमों को अपेक्षित रूप से क्रियात्मक संगीत में निभाना सम्भव होता होगा। वही नहीं

१—“अधोपदेश्यते राग स्वरे स्वाधी त कन्वते ।

ततश्चतुर्धी इयं स्यात्स्वरे तरमावसतने ॥

आत्मन मुञ्जन्नात् स्यात्स्वस्थानं प्रथमं च तत् ॥

१ ; - इयं स्वरे आत्पित्वा स्वसत नदिइतीवकम् ॥

स्वापिस्वराङ्गमस्तु द्विगुणं परिकीर्तितम् ॥

इयं द्विगुणमोर्ध्वे स्थिता प्रथमस्थिता स्वरा ॥”

श्री आर्य वेदिक कृत ‘संगीत रत्नाकर’ पृष्ठ—२६९ आनन्दधाम संस्कृत
अध्याय-नी क्रमांक ३२, धारणा १९४२

(अर्थात् स्वर पर ताल राग निर्भर रहता है। कहीं को स्वाधी स्वर कहते हैं। स्वाधी स्वर के नीचे स्वर इयं समझना चाहिए। स्वाधी ही आर्य द्विगुण स्वर है। इयं और द्विगुण इन दो स्वरों के बीच के स्वर अर्थात् स्थित मानने चाहिए। (हर एक आभास-गायक को उपयुक्त स्वीकारों में, इयं हुए स्वस्थान इयं से गाना पड़ता है। मन्त्राने स्थान से प्रारम्भ करके, कहीं कहीं बहु स्थान नहीं कर सकता था। प्रथम स्वस्थान में गायक को प्रथमता अपना आभास इयं स्वर के नीचे रखना पड़ता था। मन्त्र-सतक में वह मन्त्रानु विस्तार कर सकता था।)

ये नियम उक्त युग में अनिवार्य थे ही। इनका उद्देश्य में सामन किया जाता था सर्वथा साम्राज्य एवं सुनियमित रूप से आतार द्वारा गण-निर्वाह किया कठिन साधना को बनेका रसता है यह मात्र भी विमो मन्त्र मनीष-प्रमो से किया नहीं है।

छाह वीर के युग में ध्रुप का गद्य का पद्य प्रचलित म थी। उक्त युग में 'प्रबन्ध', 'वस्तु' 'रूपक' इत्यादि का दान की प्रथा थी। इनका भी आशयक स्वरूप मात्र प्रजातु है। प्रबन्ध का मिश्र-मिश्र नाम या प्रथम हीने थे जिन्हें 'पानु' कहा जाता था। उद्दाह ममान् प्रभु मन्तग इत्यादि मिश्र मिश्र 'वानुषो' के ही नाम हैं। मात्र त्रिम प्रकार लयास म 'स्वापी' और 'मन्तरा' होता है पद्यका ध्रुप में त्रिम प्रकार 'म्यापी' 'मन्तरा' 'मन्वापी' और 'पामोप' विषय-युक्त युपक-युपक प्रथम हीने हैं उर्मा प्रकार उद्दाह मेला एक इत्यादि लक्ष्मीन 'प्रबन्धों' के नियम-मयुक्त विभिन्न भाग म। 'प्रबन्धों' को छाह वीर के निबन्धान के अन्तगत रखा है तथा 'अनिबन्ध' पानक लीपक में 'आपत्तिगान' को स्थान दिया है। मन्मन्त्र उक्त युग में दो प्रकार का लपीय था। त्रिम प्रकार में 'गीतों के बोध' (छन्द-योजना) विद्यमान थे उने निबन्ध पान कहा जाता था इसके विपरीत अनिबन्ध पान छन्द-योजनारहित था। वह केवल आत्राप-युक्त स्वरूप था। धागे चमकर अब राय-यापन का प्रकार हुमा एक आति-गायन के लक्षण राय-गायन में समाहित हो गय।

ध्रुपद

ध्रुपद प्राचीन भारत का परबाना गाना है। कृमरी कयास इत्यादि पीय वीक्षियों की तुलना करने से यह स्पष्ट हो जायगा कि भारतीय लपीय की सहज सम्पीरता रीतिकाल में किस प्रकार अर्थारपरक एवं मार्तकारिक हो गयी थी।

ध्रुपद-लीली में संसकरण को कयास या कृमरी जैसी मुषिषा नहीं है। यह कयास या कृमरी की तरह इतमें तानों या सुरीयों प्रथम अटकों का प्रयोग कर दिया जाय तो यह बोध माना जायगा। ध्रुपद की बीर सम्पीर प्रकृति ऐसे प्रयोगों से बर्षया अष्ट हो जाती है। १। बिलम्बित लय स्वरों के

१ "This may properly be considered as the heroic song of Hindustan. The Subject is frequently the recital of some of the memorable actions of their heroes or other didactic theme. It also engrosses love matters as well as trifling and frivolous subjects. The style is very masculine and almost entirely devoid of studied ornamental flourishes. Manly negli-

स्विकर रूप तथा अपमत्ता के अभाव में यह सर्वथा पुष्पप्रियत रीति बन जाती है। म्रुपद के पीठों की शब्द-योजना प्रायः ईसोपासना सम्बन्धी अथवा बीरता के भावों को लिये हुए होती है। कभी-कभी शब्द-योजना मृमारिक या इति नृत्तात्मक भी होती है।

म्रुपद-गायकों को प्रायः नलाबन्ध कहा जाता है। तानसेन म्रुपद गायक थे। तानसेन के बंधन अथवा उनकी शिष्य-परम्परा के गायक तानसेन के बन्धने हुए म्रुपद गाय भी जाते हैं, परन्तु इनका लिखित रूप न होने के कारण उनकी स्वर-योजना एवं शब्द-योजना दोनों में ही अब पर्याप्त अन्तर था गया है।

म्रुपद के चारों भाग स्वायी अंतर, संभारी और आश्रय भी नियम बद्ध हैं। इन चारों भागों के कारण म्रुपद गाते समय उसकी सम्भीरता उत्तरीतर बढ़ती जाती है। प्राचीन म्रुपद संस्कृत और हिन्दी दोनों में ही होते थे तथा उनके पीठों में पंक्तियाँ भी अधिक होती थीं किन्तु कालान्तर में वे संक्षिप्त होती गयीं। ऐसा माना जाता है कि शाह जहाँ के युग के निबद्ध मान ने ही परि-वर्तित होकर कालान्तर में म्रुपद का स्वरूप ग्रहण कर लिया था।

प्रायः बीरताम सुमध्यक मन्था वीरता आदिताम इत्यादि में म्रुपद गाये जाते हैं। इनमें सबसे अधिक प्रयुक्त होने वाली शाल बीरताम है। मुरीग और तबला म्रुपद की संगत के प्रमुख वाद्य हैं। इन दोनों वाद्यों की ध्वनि से

gence and ease seem to pervade the whole and the few turns that are allowed are always short and peculiar

"Treatise on the Music of Hindustan by Capt Willard
Page-88

(इसे उचित रूप में हिन्दुस्तान का बीररत मछ पीठ माना जा सकता है। इसका विषय प्रायः बीरों के कुछ स्मरणीय कार्यों का वर्णन होती है या कोई अचरितपरक कथा। इसमें शैव-सम्बन्धी विषयों तथा आचार्य और इनके शिष्यों का भी उल्लेख होता है। रीति बहुत सुरबोधित रहती है और उसमें उन आसक्तिरिक्त तानों का अभाव होता है जो आनन्दकर ली जाती हैं। शत्रुर्ष भाग में सुरबोधित अवेजानाव और स्थानाविरता व्याप्त रहती है और जो पौड़ी ली सुरबिधा (Turns) ली जाती हैं उनमें लघुता और वैचित्र्य का पूरा होता है।)

यह कल्पना सहज में की जा सकती है कि प्रपद की गम्भीरता कैसी होती है ? प्रपद के साथ मूर्धन-बादन उसे घोर भी विराट् रूप प्रदान कर देता है ।

धमार

प्रपद-गायक धमार-गायन में भी प्रवीण होने हैं । धमार-रीती बहुत कुछ प्रपद के ही अनुरूप होती है । धमार के भीत प्रायः शृंगारित होते हैं जिनमें उदात्त-रूप के परस्पर होनी खेनने का आकर्षक बर्णन होता है । आसाप का आवागम्य इसमें भी है अतः प्रपद के समान इसमें भी संगीत का गम्भीर स्वरूप दबलुप्त बना रहता है । इस रीती के भीतों के लिये चौदह मात्रामों की धमार ताल कठिबड हो बसी है । इस ताल पर अधिकार प्राप्त करन के लिये पर्याप्त अभ्यास की आवश्यकता है अतः पायक जब इसमें प्रपद-रीती के अनुरूप बाहु कुम्हार इत्यादि का काम बिलाने लगते हैं तब एक घोर तो इसकी सरस सम्पत्तिका घोर आकर्षक धाराओं से हृदय को तोष प्राप्त होता है तथा कुसरी घोर तय के अमलकार से बुद्धि भी अमल्लुठ होती है ।

भजन-कीर्तन

भजन-कीर्तन की प्रथा भक्ति-काल में अपने पूर्ण उत्कर्ष को प्राप्त हुई । मुर तुलसी भीरा हरिदास आदि भजन-कवि पर निबद्ध तथा संगीत के स्वारस्य से उनका अभिसिञ्चन करके अपने अपने श्रुष्टदेव को रिम्भते थे । मुर तो साक्षात् श्रीनाथ जी के मन्दिर में भजन-कीर्तन किया करते थे । भीरा भी सङ्गतान बना कर अपने भिन्न-भेद के रंग में रग उठती थी, अतः सिद्ध है कि भक्ति-काल में भजन-रीती अपने उत्कर्ष के चरम बिन्दु पर पहुच पयी थी ।

परिच्छेद-३
गीतिकाव्य

गीतिकाव्य

परिच्छेद-३

(क)

काव्य मानव-जीवन के स्वरूप से अनुसंधान और प्रेम के सौरभ से सुसज्जित है। इसी लिए मातृक कवियों का प्राण इसमें नुमा और मातृक भावों के प्रतिभा की यह कर्मोत्थी भी बना। फिर भी परिभाषा की सीमाएँ हम घाबराने न कर सकीं कर ही नहीं सकतीं। सम्भवतः दिन दिन मानव प्रेम और जीवन की सही परिभाषाएँ बना लदा उन्नी दिन का भी सर्वसम्मत सही परिभाषा बन आयी।

यों तो काव्य के सभी रूप अजीब-तरंगों से सुसज्जित समृद्ध हैं। किन्तु काव्य और संकीर्ण का महत्त्व समग्रव्य शैलिकाव्य में ही निष्पन्न होकर होता है। अतः प्रतिपाद्य विषय के सम्यक् परिभाषा के हनु गीतिकाव्य का रूपरेखा और उसके विषय का अध्ययन यहाँ आवश्यक है।

संस्कृत-साहित्य में महाकाव्य अथवाकाव्य मुख्यतः काव्य काव्य की सुन्दर व्याख्याएँ मिल जाती हैं। किन्तु गीतिकाव्य की स्पष्ट परिभाषा नहीं मिलती। फिर भी अब शैलिकाव्य की परंपरा पर विचार होता है। तब अम्बर की व्याख्याएँ वाणिदास के नामों गीत-शैलिकाव्य के अर्थों व्याख्या का उल्लेख होता ही है। व्याख्या की शीघ्र में अनुसंधान प्रारंभ और अन्त में ही शीघ्र मुहता है। यही भी शीघ्र ही मिलता है। गीतिकाव्य का वास्तविक निर्माण नहीं। हिन्दी में विद्यापति के पर हैं। पुरु, तुलसी और मीरा के पर हैं। किन्तु विवेकानन्द मध्य-काव्य में भी उल्लेख नहीं होता। ही आधुनिक काल में गीत गुरु मिले सके और व्याख्या तथा परिभाषाएँ भी प्रस्तुत हुईं। किन्तु आधुनिक शैलियों की व्याख्या चाहे भारतीय या विदेशी हैं। ये अक्षरों विशिष्टता पाठकों से प्रभावित, अथ

हिन्दी में जब वीतिकाम्य की परिभाषा बनी तब 'निरिक्रम पोइट्री' की व्याख्या उपेक्षित न हो सकी । अतः मूल अर्थ में 'निरिक्रम पोइट्री' ऐसी कविता की श्रित्ती रचना 'सायन नामक वाद्य-यन्त्र के साथ साथे जान के लिए की जाती थी । कालान्तर में नीच शैलिक राधारमक अनुभूति से अनुप्राणित कोई भी ऐसी कविता जो साधारण में छोटी तथा माया के सारस्य के साथ मधीवतामयता से युक्त हो 'निरिक्रम पोइट्री' नहीं माने जाती । अन्तु, हिन्दी में भी परम्परागत पद्य-साहित्य से भिन्न ऐसे वीत तिनके जाने लने जो राम-उपनिषदों के शब्दों से युक्त होकर भी शैलिक तथा और धार्मिक श्रुत-योजना के कारण प्रथम युक्त न हो जाते सके ।

परिभाषा

साधुनिक हिन्दी वीतिकाम्य में 'निरिक्रम पोइट्री' की यह विशेषता ध्यान देने योग्य है । उदाहरणार्थ डा० स्वामिभुवनेश्वर दास के शब्दों में 'माया विषयगत सम्बन्धी कविता वीतिकाम्य में ही श्रित्ती लिखी जाती है । छोटे छोटे ऐसे पदों में मधुर भावनात्मक आत्म-निवेदन स्वाभाविक ही जान पड़ता है । ऐसे पदों में मधुर की साधना के साथ स्वर (संगीत) की भावना भी उत्कृष्ट हो सकती है । १. पण्डित रामशङ्कर मिश्र ने उपर्युक्त विशेषताओं में कल्पना की समन्वयता एवं अभिव्यक्ति का अभावपूर्ण होना आवश्यक मानकर कुछ ही शब्दों के साथ 'श्री वाद्य को सुदरा किया है । २. तथापि इस शब्द-योजना में वीतिकाम्य की परिभाषा उपेक्षात्मक श्रित्ती सनीत हो गई है । डा० गुणाधरदास ने काव्य के अर्थ में विशेषकर काले हुए वीतिकाम्य के श्रित्ती शब्दों का उल्लेख किया है जिनमें मधीवतामयता शोभनीयता तथा पद्यमयी श्रित्ती साधारणता मधीवता

१— डा० स्वामिभुवनेश्वरदास द्वारा 'साहित्य-मीमांसा' पृष्ठ ११३ पर दी जाती

२— "जिस भीति कविता में शब्दों की सुन्दर स्थिति सुन्दर संघर्ष तथा सुन्दर तथा मधुर शब्दों के साथ कल्पना शोभनीयतामय रूप में अनुभूति की श्रित्ती भावनात्मक भाषा और अभावपूर्ण अभिव्यक्ति हो वह भीति कविता प्रशंसनीय है - काव्य दर्पण' पृष्ठ-२२५, तृतीय संस्करण

घोर भाव की एकता को आवश्यक माना है ।^१ इसमें कोई संदेह नहीं कि मीट्रिकाध्य के ये अनिवायं तन्त्र हैं किन्तु परिमाणा की दृष्टि से मुझी महादेवी वर्मा के निम्नस्म गद्य इन सम्बन्ध में अधिक महत्त्वपूर्ण जान पड़ता है

'मापास्तुत' शीत व्यक्तिगत सीमा में तीव्र सुख-दुःखारमक अनुभूति का वह गहर-रूप है जो ध्यनी चम्प्यात्मकता में देय हो सके । २

महादेवीजी ने ध्यनी परिभाषा में स्तूतनम चर्यों में अधिकतम दर्प भर दिया है । प्रत्यक्ष चर्य मीट्रिकाध्य के स्वरूप को स्पष्ट करता हुआ काव्य के ध्यन चर्यों से उल्लेख भर भी स्पष्ट कर देता है ध्यन इस परिभाषा की व्याख्या यहाँ आवश्यक जान पड़ती है ।

व्यक्तिगत सीमा

मीट्रिकाध्य को व्यक्तिगत सीमा के अन्तर्गत रखने में यह स्पष्ट हो जाता है कि काव्य के दो प्रमुख भेद—विषयप्रधान (Subjective) और विषय प्रधान (Objective)—में से यह विषयप्रधान काव्य कथ्यमान माना है । विषयप्रधान काव्य में कवि अपने चारों ओर फल हुए समाज की बात कहता है । यहाँ उसका सम्बन्ध मात्र बहिर्जगत में रहता है । कवि क व्यक्तिगत विचारों अथवा मनोभावों से उसका सीधा सम्बन्ध नहीं होता । नारा काल्पनिक अथवा जो प्रतिबिम्ब उसके हृदय पर पड़ता है अपनी ध्याना को प्रकट करने हुए—उत्की की अभिव्यक्ति यही उस अभिव्यक्ति होता है किन्तु विषय प्रधान कविता में कवि अपने ही अन्तर्गत की अभिव्यक्ति करता है । यहाँ वह प्रकट नहीं रहता प्रत्यक्ष हो जाता है । कवि की उल्लेख अपनी ही बात कहने की होती है अथवा बाह्य जगत से प्रेरित कवि की अनुभूति भी उसका हृदय के तंत्र से रंग उठती है । यही कारण है कि मीट्रिकाध्य को व्यक्तिगत ध्याना अभिव्यक्ति निजी भावात्मकता से युक्त अन्तर्गत का परिभाषक मानानुभूति

१—बाबू पुताहराय हठ काव्य के रूप पृष्ठ—१२२ डिछीय संस्करण

२—इच्छेय - महारथी का विवेकाल्पक पद्य (संभवकर्ता की संपात्रकार पाठ्य) पृष्ठ—१४७

अन्तर परब्रह्म में सुकम धरम है । एक की सीमाएँ दूसरे की सीमाओं को इतनी दूर तक खीनी हैं कि दोनों में स्पष्ट भेद करना कठिन है और कभी कभी तो भेद किया भी नहीं जा सकता ।

इस कठिनाई के निराकरण के हेतु एक अन्य तर्क उपस्थित किया जाता है कि गीत में टेक होती है मुक्तक रचना में इसकी आवश्यकता नहीं होती । परीक्षा की कमीटी पर यह तर्क भी सरा नहीं उठता । गीत में टेक है तो टीक है नहीं तो गीत या किमी भी मुक्तक रचना की पहली पंक्ति टेक बन सकती है । अतः येही-अर्थक हेतु टेक पर टिकने से भी समस्या की कुछ भी ह्रास नहीं लगती । अन्तुन ये सब अर्थों कीतिकाम्य की गनीतात्मकता से सम्बन्धित हैं इसी कारण महादेवीजी ने कीतिकाम्य को अपनी ध्वन्यात्मकता में वेम कहा है ।

ध्वन्यात्मकता में गेय

वैयक्तिक रागात्मक अनुभूति की अपेक्षाकृत बहुत तीव्रता के कारण गीत काम्य मुक्तक काम्य से पृथक है । निजी भावात्मकता कीतिकाम्य में अधिक तीव्र होती है नाप ही कीतिकाम्य ध्वन्यात्मकता में वेम भी होता है । तात्पर्य यह कि कीतिकाम्य में तनातात्मकता का जो भाव है वह वा ठरिक्त संकीर्ण का भी है । वहाँ साम्प्रतिक संकीर्ण विद्यमान होता है वहाँ उठे बाह्य संकीर्ण से संयुक्त कर देना कठिन नहीं है । मुसल कवि की कृति में सर्वैव वातावरण के अनुकूल सध-योजना रहती है । कवि अर्थ-विषय वा धर्म-विषय ही उपस्थित नहीं करता अर्थों की ध्वन्यात्मकता से तबक नाव-रक्षण को भी अधिम्यक्ति प्रदान करता है और यदि वैयक्तिक रागात्मक आर्य उपयुक्त विषयताओं से संयुक्त हो तब तो सोने में सुनस्य मा जाती है । प्रस्तुत प्रथम के प्रथम परिच्छेद में संकीर्ण और कविता के अयोम्याधित सम्बन्ध को स्पष्ट करते समय अनुकूल सध-योजना द्वारा समुचित भावात्मक सौन्दर्य की मार्गता पर विचार किया जा चुका है अतः यहाँ उसकी पुनरुक्ति अनावश्यक प्रतीत होती है ।

गीतिकाय्य भावनाओं का सध रूप है । भावता के आर्य में अयोम्याधित जहाँ सगल होती है वहाँ तरम भी जाती है । उम समय विचारणीयता प्रबल न होने क कारण किसी प्रकार की अनाद्यत मा पाणिशय-प्रदमन की इच्छा अयवती नहीं रहती । अतः अरिभता मा दुःखता को बहुत पीछे छोड़ती हुई भावानुभूति पीच-साधे अर्थों में वि-सत हा जाती है । ऐम उम भावना-वित्त हाने

के कारण तरल होत है। आबावेग में प्रायः कष्ट पस्य हो जाता है। भोज के आशेष में बाणो मङ्गलदा जाती है। प्रथम दीनि का ता पेंडा हा म्पाय है। आबेदूग बाणी की निरक्षयता किसी से छिपी नहीं रहती। एषु रधी तक भी इसे बरत कूड सन्ध सत है। तीस मुख दु कारनक अनुमति का ताण बन पही है।

निष्कर्ष

उपरोक्त सम्पदन के निष्कर्ष-रूप वीतिशास्त्र के आशयक ताव निम्न लिखित हैं

१. वीतिशास्त्र अन्तःशास्त्र की जिनमें तथा साधारण-रूत नीत बन-दिन है।
२. इनका आधार छाटा होता है।
३. इनमें किसी एक ही भाष की अभिव्यक्ति हाती है तथा उच्चत प्रभाव पनीसुत होता है।
४. इनमें माण का सारभ्य एवं नासों का सारभ्य साधन विद्यमान रहता है।
५. वीतिशास्त्र संपीडात्मकता से ओतप्रोत हाता है।

वीतिशास्त्र की ये सभी विशेषताएँ अनिवाद हैं। इनमें के एक के भी कम होत तब वीतिशास्त्र की शुरुआत में अन्तर आ जाता है। और वहाँ ये सभी विशेषताएँ हैं वही वीतिशास्त्र को विश्व में स्मरह नहीं रहता अतः वीतिशास्त्रीय कवियों का धनक एते बलिष्ठ-दर्शय को यद्यपि विम्व-विधान की दृष्टि से पर से भी के अन्वयन नहीं पाते किन्तु वीतिशास्त्र की उपर्युक्त सभी विशेषताओं से युक्त है। अन्वय ही वीतिशास्त्र की परिधि में आ जायेगे- तथा मूर और तुजरी के अनेक ऐसे पर जो यद्यपि विम्व-विधान की दृष्टि से अकारण हा पर वही नाम के कविताएँ हैं यदि वीतिशास्त्र की उपर्युक्त विशेषताओं से रहित हैं तो वे नाम मात्र के पर हैं अन्वये योज नहीं। मूर के सावर में ग्ल ही रूप हों यह बात नहीं छोपे योग वीतिशास्त्री ज्ञानमें हैं। फिर भी 'मूर सावर' हेन्वी-दर-साहित्य का अनुस्र भाग्य है। इसका कारण यही है कि उसके कवितान पर तीस बर किरक सापत्नक अनुमति से अनुमतिगत एवं संगीतात्मकता से प्रज्जाकित है। साम्प्रतिक रूपत ही नहीं उनमें बाह्य संगीत का भी प्रायः भुक्तिभुक्त विधान है। अन्व प्राय का प्रयोग यही जाल मुक्त कर किया जा रहा है क्योंकि मूर के अपने

स्वतः पूछ होती है। मुक्तक में प्रपंच के घौंचित्य अथवा घनौंचित्य का निरूपण कठिन होता है तथा भावज्ञ पाठक या ध्याता से यह प्रार्थना की जाती है कि वह अपनी धीरे से समुचित चिन्तनामा एव परिस्थितियों का यथा-स्थान निष्कर्ष कर लेता। सहृदय व्यक्ति में लेनी क्षमता होती है जिसके द्वारा वह जीवन के बाह्य और अन्तर्गत को बुझि द्वारा प्रकट कर लेता है। हिन्दी का पर-साहित्य मुक्तक ही है। 'भूतनामर' या तुलसी की गीतावली जैसी रचनाओं में तो विविध कथात्मकता का आशय है ही किन्तु उर्जा नहीं भी है वहाँ उस समय प्रपंच का आकर्षण होता या पाठक की चिन्तना की दृष्टि से ऐसा केन्द्रित कर लेता है कि वह इतर उच्चर भक्तके नहीं पानी चमन रस-नाभी सहृदय—घोड़ी डेर के लिए ही सही—बुझि का सहारा लेकर प्रपंच को घौंचित्य प्रदान कर देता है और इस प्रकार अपनी रस-लोभी वृत्ति को सम्पुष्ट कर लेता है।

अव्य और दृश्य

लोक अथवा साहित्यिक रस प्रबन्धों के अव्य और दृश्य को भेद और हो करने हैं तथापि वे भेद साहित्यिक प्रबन्धों की अथवा लोक प्रबन्धों में ही अधिक स्पष्ट हैं। लौटभी स्वयं ज्ञानादि ऐसे ही लोक प्रबन्ध हैं जो रस तो हैं ही लोक-संदर्भ पर लैने जाने के लिए ही प्रयोजित रहे भी जाते हैं। इनमें पाशों के क्रिया ज्ञाना वादीनाय आदि सभी कुछ गीतात्मक होने हैं। आत्मग मनुग हाथ रस जगतपुर बीमपुर इत्यादि ज्ञाना म तथा इ की शोच के साथ जोड़ते प्राय भी सुनायी दे जाते हैं और ऐसे गीतात्मक कथा प्रवाह में मग जोड़ा जाना-पीना और सभी कुछ मूलकर रात रात भर बैठे रहना है।

साहित्यिक रस प्रबन्धों के दृश्य भेद में प्रसाद जी के 'कल्याण्य' की मीथिलीकरण गुण के अन्तर्गत आ भवनी चरम वर्मा कुल 'ताप इत्यादि रस पाशों का नाम दिया जा सकता है। पाशों का वादीनाय इनमें भी बीजमय होता है परन्तु इनका अन्तर्गत साधारण पाठकों की अथवा कठिन होता है। हिन्दी में रसमय का भी अभाव है और उच्च साधारण पाठकों के लिए ही रसमय को नहीं मगनी है न गीता-पाठकों के लिए उदात्त संदर्भ की अथवा ता निरूपण ही नहीं बाध है। आदि-पाठक हेतुविजन तथा रसियों के लिए अथवा उदात्त गिड हा रहे हैं। यद्यपि रसियों से प्रभावित होने पर वे सर्वथा अथवा बन जाते हैं दृश्य नहीं रहा क्योंकि रसियों में पाशों के व्यापार की अन्ति

व्यक्ति भी ध्वनि से ही हो जाती है। तथापि गीति-नाटकों में ध्यापार मौल्य एवं अन्तर्दृष्ट प्रमुख होने के कारण यह कमी विक्षय नहीं बढ़ती।

गीति-नाटक के ही निरन्तर की वस्तु नाट्य कविता (Dramatic poem) है, किन्तु इसमें गीति-नाट्य की अपेक्षा नाट्य-तत्त्व की शून्यता होती है। इसमें निहित अभिव्यक्ति का रसास्वादन भी पढ़कर ही प्राप्त हो जाता है। पञ्चवटी प्रसंग (निराशा) नाट्य कविता का सुन्दर उदाहरण है। इस प्रकार की रचनाओं में नाट्य-तत्त्व के प्रभाव का गीतितत्त्व के सम्मिश्रण से दूर करने का प्रयास सन्निरहित रहता है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि काव्य के विभिन्न रूपों में गीतितत्त्व किस प्रकार और किस क्षेपण तक अनुस्यूत है। नाटक में तो भारत में ही गीतों का समावेश रहा है। जनता के मनोरंजन एवं तरल भावों के संस्कार के हेतु नाटक में गीत अपरिहार्य से ही है। गीति-नाट्य में भी बड़ी भावों का आवेग प्रबल हो जाता है वहाँ से बह गीतों का समावेश करने लगता है। एकर पाबुनिक काम में जो महाकाव्य लिखे गए उनमें भी गीतों का प्रयोग किया गया है और वह सर्वथा उत्कृष्ट भी हुआ है। साकेत एवं कामायनी के गीत इस कथन की सबल पुष्टि करते हैं। उपन्यास और कहानी में गीतों को सुविधा कम रहती है। यद्यपि सहज बौद्धिकता में गीत भली भाँति खप नहीं पाते अतः कहानी और उपन्यास में यथा वदा ही कोई गीत मिले तो मिले प्रथमया गीति काव्य के लिये ये अधिक अनुकूल नहीं हैं।

गीतिकाव्य की कसौटी

काव्य के विभिन्न रूपों में जो गीति-तत्त्व उपलब्ध है उतनी ही वैयक्त्य का आग्रह है तो कहीं वैयक्तिकता का। दो बात की एक बात तो यह है कि वैयक्तिक रसात्मक अनुभूति की सनीतमम अभिव्यक्ति ही गीतिकाव्य की वास्तविकता है। यद्यपि यह प्रश्न उपस्थित किया जाय कि क्या मात्र सगीतात्मकता गीतिकाव्य की अन्ततम कसौटी है तो उत्तर प्रथम ही नकारात्मक होगा। इसी प्रकार केवल वैयक्तिकता भी गीतिकाव्य की एक मात्र परब नहीं है। कलाकार का—साहित्यकार का—व्यक्तित्व उसकी कला से सर्वथा पृथक् नहीं रह सकता। अभिव्यक्ति में उसकी कला की विक्षयताएँ समाहित ही होती हैं। यह बात सुलभ है कि कहीं कलाकार प्रयत्न रहता है ता कहीं प्रच्छन्न यद्यपि काव्य के सभी रूपों में बौद्धी बहुत वैयक्तिकता रहती ही है। इसलिए न तो मात्र वैयक्तिकता

और न केवल संगीतात्मकता वीनिकाव्य की एकमात्र कसौटी है। आश्चर्यकृत है दोनों की धीरे-धीरे एक-दूसरे का सुन्दर सम्बन्ध भी बाँझनीय है। हृदय-बट में न समा सकने पर जब अन्तर का प्राकृत उन्मत्तवास अपनी सम्पूर्ण मग्नता तरलता मानिकता और म्लिच्छता के साथ संगीतात्मक अभिव्यक्ति बाहर कूट पड़ता है तबो यह गीतिकाव्य की कवोने पर परा उतरता है।

आत्मनिष्ठा और संगीतात्मकता का सुन्दर सम्बन्ध बोई बिरमा ही कर पाता है अतः विविष्ट प्रतिमा-मग्न्य कवि और बहु मी वीतिमय भाव (Lyricall Mood) से विभोर होने पर ही अत्यन्त भीत भित्त सजता है। आत्म हीना यह है कि वही संगीत-तत्त्व अधिक हो जाता है तो कहीं आत्मनिष्ठा का पत्ता जारी दिखायी देन लगता है। अनुपात की इन विषमता के कारण वीत धीरे गीतकारों के अयोनिधित्त कार बने बन सकते हैं।

- १. बलीय सामान्य कोटि के पात्र के हैं विषम न तो अनुभूति की विभूति है और न संगीततत्त्व की मत्तारमता।
- २. दूसरी ओली के गीत के हैं जिनमें संगीतात्मकता का विचार तो बर्लानीय होता है किन्तु अन्तजगत की अभिव्यक्ति मानिक नहीं होती। भाव का दर्श प्रभाव ही दिखायी देता है।
- ३. तीसरा वह उन गीतों का है जो निजी आत्मरमकता के माधुर्य से तो घोट प्रसन्न होते हैं किन्तु उनमें संगीत-तत्त्व निर्बन्ध होता है।
- ४. चौथा धीरे सबधष्ट वह उन गीतों का है जो सहज अन्त-प्ररभा की आशय-शक्ति से अनुप्राणित एवं हृदय-स्पर्शी संगीतारमकता से अनुस्रुप्त होकर अनुप पर अड बाज की तःह मर्मस्पर्शी बन पाते हैं। यहाँ आभासहीकरण की प्रक्रिया से सार्वजनीय बनी हुई हीन समात्मक अनुभूति संगीतारमक गरिब न पारण करके अपने रूप पर धार ही रीक उठती है और भाव (स्वर-संकीर्ण)की माधकता के आशय में डिवा का अकदुष्टन हटाकर अपनी भाव संविधा व्यंजन; धीरे संकेतों की निर्मन्दीब होकर व्यक्त करने मचडी है। इनी का नाम मृद वीनिकाव्य है।

मानव हृदय कभी मुग्न न उल्लास से भर उठता है तो कभी दुःख से दुग्ग भी हो जाता है। इन गुणात्मक यह अनुभूति भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है।

१ इत्यत्र—संगीत प्रथमा अथ १८, १९ प्रथम संस्करण

नसत विपयिप्रधान काव्य के प्रकार भी अनेक हैं । पाश्चात्य काव्य-शास्त्र में भी इसके 'ड्रिम्स' 'पेट्रियाटिक सोन्ग' मक-मिरिबन 'एलिजी 'मोड 'सोनेट' कनविबियन मिस्त्रिस इत्यादि भेद हैं । इस प्रकार क विभिन्न पीढ़ा में परोक्ष सत्ता के प्रति अज्ञातचित् राष्ट्रीय भावना प्रम घोष सम्बोधन अस्त्र उस्मास इत्यादि की अभिव्यक्ति होती है ।

अंगरेजी-साहित्य स प्रभावित होकर हिन्दी में भी इसके अनुकरण पर कुछ बात लिखे गए हैं । उदाहरणार्थ 'समाधि क प्रदीप स १ 'मोड की सीरी पर लिखा हुआ गीत है । 'मरोज स्मृति २ 'एलिजी के अंग पर लिखा घोष-गीत है । प्रभाकर मापके में 'सोनेट' के अनुकरण पर अनुसंधानियाँ लिखी हैं । राष्ट्रीय योर्तों की भी हिन्दी में कमी नहीं है और प्रम तथा सीधय जो पीठि काव्य की प्रमुख अभिव्यक्ति है ही ।

अंगरेजी-अंग के कुछ गीत ऐसे भी हैं जा भारतीय संस्कृति अथवा हिन्दी की निजी प्रकृति में मली मांति सन नहीं सके । उदाहरणार्थ 'कोटिंग मिस्त्रिस का हिन्दी में प्रथमन न हो सका । 'सोनेट भी हिन्दी के अनुकूल नहीं है । अर्बु में मनिये पर्याप्त हैं पर हिन्दी में सोकगीन छोड़े ही मिलिये । प्रायः प्रेम ककणा दुःख रीय बेवना देस मक्ति धात्मनिवेदन दार्शनिक एव बार्मिक भाव इत्यादि को ही बकर हिन्दी में गीत लिख जाने हैं ।

१ विमकर ।

२ निराला ।

हिन्दी गातिकाव्य का संक्षिप्त इतिहास

(रीतिकाल से पूर्व तक)

17

(ख)

ऐतिहासिक दृष्टि से हिन्दी नीतिकाम्य की परम्परा वैदिक काल से स्थापित होती है किन्तु नीतिकाम्य के सम्बन्ध में प्रायः जो चारखारें एवं उसके सुष्ठु सम्बन्ध के सम्बन्ध में जो मायगाएँ हैं वे सब युग में दृष्टिगोचर नहीं होतीं—हो भी नहीं सकतीं क्योंकि नीतिकाम्य में जब जो स्वतंत्र रूप प्राप्त कर लिया है वह उनके अधिक विकास का ही परिणाम है।

वैदिक युग

। वैदिक युग के ऋषियों की जो मनुष्यवृत्ति उत्कृष्टतम साहित्य में अभिव्यक्त हुई है उसका अन्तर्भाव एक महान् कृतज्ञता से युक्त धार्मिक दृष्टिकोण विशेष सबल है। प्रकृति के माहुर्य में उनको बेतना कमपा विकसित होती स्पष्ट दिखायी देनी है। प्रकृति का मौम्य और मनोरम रूप जहाँ उन्हें घातविधोर करके साह्यारित करना था वहाँ वे इमक रोग और मवानक रूपों से भी परिचित थे। जबकी अथा घोर विरवान की माचना ने जागकक हाकर प्रकृति की विभिन्न शक्तियों में देवताओं की स्थापना की और उस युग का मानव अपनी मंगल कामना के निरु इत्ये १ सुवे १ अग्नि १ इत्यादि का पुनगात कर उठा।

१ यः बुद्धिं ध्यवमानमाव हे।

य एो पर्वताग्रपुपितां धरम्भुतात्।

यो धरुतरित विनमे वरी यो

यो धामस्तध्यातवनात् इत्ये ॥

(हे मनुष्यो! जिनमे कपित पुष्पी को अतपर्वतो को धरत बनाकर विवर कर दिया जितने धरमात्र को सीमित दिया मयन मंडल को धनुषा

तन्वासीय धर्म धरती धारणपत्रामो की पुन के हेतु इन मन्त्रिनिमित्त देवताओं के ध्यान-स्त्रयन में लग हुए थे । उनके सामने धरती की ममत्त उर्बर और बिस्तीर्ण भूमि को जो पयस्विनी लिंगामों के निमित्त इन्द्र धरती गम से राशि राशि बाम्य उदास कर रही थी उस वैदिक माहिर्य के पुत्रों पर मानस्य का भाव भी धारोपित हो गया था । इसी भावना को धारणपूर्व प्रोढ़ अभिष्यक्ति प्रदान करते हुए अर्बुद्विद्वे का श्रुति भी गा उठा

‘माता भूमिं पुत्रो ह्यं पृथिव्या ।’

अग्ना की लमाई के मनीस्य दुर्गम से सोभासमान मन्वर पति से दिव्यभोग का अतिवसन करती हुई उषा दुग्धी को देकर उदनायक श्रुतियों के कल्पनाशील कवि-मस्तिष्क में ‘अपक’ का भाव भर उठा और उनक हृदय की काम्यपूर्ण धरतीधरता सहज-बिनिमू ल भावावधारणा की अभिष्यक्ति का उठी । पित्त अर्पित करने वाले धर आत के महा धरस्य से दूर गया धर्य प्ररथ के बाह्यारण से रहित मन्वद्वय श्रुतियों की सीसी-गारी यह अभिष्यक्ति महदय संवेद है

या वा बोधव सुतसु वा याति प्रनुवती ।

अरयन्ती अत्रिनं पश्येय उरानवीत वक्षिन ॥

ऋ० १।२५।२

धित रिया, वही इन्द्र है ।)

ऋषुवेद ६ । सू० १२ । म० २

२ पुत्रस्तव धते अयं न त्विष्येय कदाचन ।

सोभारतस्त बहु स्मृति ॥

“ (हे पुत्र ! देवी इन तुम्हारे उपायक हैं ऐसी कृपा करो कि हम तुम्हारे धर्म में निर्बल विवाह कर सकें)

ऋषुवेद ४ । सू० १२ । म० ६

१ ये सुप्रो बोधवकः सुतंवासी रियावकः

अर्बुद्विद्वे वा पति ॥

(देवतुल्य और ममत्त भावति जाने कुछ धारक, अपने धर्मों का भरण करने वाले हैं अन्ति अस्त उचित धरारण करो ।)

ऋषुवेद १ । सू० १२ । म० १

१ अर्बुद्वेद १२ । सू० १२

अथा आभाहि मामुता वाग्नेय बुहितीवैव ।

अबहृत्नी मूर्ध्निभ्य मोमन म्युञ्जस्ती विविष्टिषु ॥

ऋ १।४८।१

विश्वस्य हि प्राचनं बीजनं ये वि अयुञ्जसि मूर्तरि ।

सा मो रथेन बृहता विभावरि यृभि विनामये हवम् ॥

ऋ० १।४८।१

विश्वो देवां वा बहु सोमनी-येऽभ्यर्षिस्तदुपस्त्वम् ।

माम्मानु वा मामगन्वावदुवस्वमुपो वात्र सुवीवैम् ॥

ऋ १।४८।१२

वत्या दमन्ते धर्मस्य प्रतिभया मह्यम् ।

मा नो रयि विश्ववार सुपिपाममुपो वदानु मुग्धम् ॥१

ऋ १।४८।१३

उपा क आयमन को 'न मेधावी ऋषियों ने जिस दृष्टि से देखा है उस में उनके धर्म की सर्वेशतात्मक अनुभूति का एक मूलक उदी है । उपा का पर संशामन नि शक्य है किन्तु फिर भी उसकी छाहट में निशामन कागदुल काय कर कसकर कर उठना है । उपा क रगहन में उन्होंने जिन विशेषताओं का प्रयोग एवं ध्यानमग्न पर-संज्ञना से जिन संयंतात्मक प्रकाश की सृष्टि की है वह उतनी काय दृश्यता मनीमप्रियता धीर महती भावुकता का ठोप प्रभाव है । तब मुद्र हत्यादि से उत्पन्न वोगों में वेना महत्त्व प्रकाश यही चाहे दृष्टिकोषर में ही किन्तु अत्यंतवचन वा धर्मिष्ठात्क ओर रग प्रतीति अग्रिमिदम् है । नीतिगम्य के तात्का वा यदी उमगते हुए देगा जा मकता है ।

उन दिनों यशास्त्र के समय वैदिक ऋषियों के उत्पन्न पाठ की प्रथा प्रचलित हो चुकी थी । इन कीन रूप मन्त्रों का ही नाम 'शाम' था । यही मनी-माय-संज्ञा में बुद्धि हुई उसने मायन उदुति का पारस्व निमित्त हुआ और शाम कीर्तों एवं उमरं शास्त्रीय स्वरूपमान के समुच्चय को 'शामवेद' कहा जाये तथा १२ वमी सामवेद का उमवेद मन्त्र वेद है जिसमें मनीन क नाम माद्वय का भी विशेष

१ वैदिक मापरी प्रचारितली पमिता अयं ३२ अंक ५ (सकत् ३० ७) का अर्थ सामहित्य की वाग्धोम्पुगतों दीर्घक लल ।

२ सामीय प्रचलित सामवेदित्ता माग्धय काहृत्त मारवीमिता इत्यादि अर्थ इस सामवेद में इत्यम् है ।

बन गया। जमुबेद घामुबेद इत्यादि धार्यों को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि उस काल में वेद पर किसी भी उच्चकोटि के विषय के पूराज्ञान का बोधक बन गया था। अतः गणपर्व वेद उस महत्त्वपूर्ण संगीत का आधार है जो वेदार्थन से पूषक या धीर त्रिसका उद्देश्य प्रथमज' सोदरंजन था। इस प्रकार प्राचीन काल से ही संघोष के दो रूप वृत्तियोत्तर होते हैं। एक वह जो धार्ये वसकर काम से ही संघोष के दो रूप में विकसित हुआ धीर वृत्तय वह जो पूष मनोरंजन के उद्देश्य से वस-वस-रंजन करता रहा।

महाकाव्य काल

वैदिक साहित्य के परन्तु महाकाव्य काल (Epic Period) धारम्भ होता है। काम-मोहित शीघ्र के बस धीर उसकी माता के कश्यु विनाय से व्यथित महर्षि बार्मीकि की गीती धार्यों से अब एक दिन मनमाने ही चुपचाप कविता वह उठी तब उनका शोक ही स्तोत्र बन गया। यह था धीर में छन्द वाल धीर मय का समावेश। आदि कवि के आदि काव्य की रचना अब पूर्ण हो चुकी तब उसमें मिहित इस गूढन संगीतात्मक प्रवाह के कारण ही सबकृप ने उसे भवमान् राम के सामने पाया था।

रामायण की अथवा महाभारत में बर्णन का आधार कहीं धमिक है। इसी में मोह-विमूक धर्तुन को भवमान् कृष्ण ने जो उन्नेष दिया है वही मात्र 'वीता' के नाम से सुप्रसिद्ध है। 'वीता' धर्य का मर्ष ही है जो 'वायी वयी' हो किन्तु ब्यास ने महाभारत में त्रिस तबल पर इसका समावेश किया है उसके सहसा यह विश्वास नहीं होता कि कुछ का वह समय गाने के लिए विशेष अनुकूल रहा होगा। ऐसा प्रतीत होता है कि उस युग में वैदत्य से विभूषित धनका धनवार रूप समझे जाने वाले व्यक्तियों के उपदेशात्मक वचनों को बड़ा एवं आश्चर्य से प्रेरित होकर वीता वह बिया जाता था। २

भी मधुभगवत्वीता में मुन्दर काव्यत्व धीर संगीतात्मक प्रवाह विद्यमान है। अनु न ने वहाँ मोह-धमिक होकर अपने क्षिप्त मन के विचार धीर शोम की अभिव्यक्ति की है वहाँ कथितय स्वर्णों में वीतिकाव्य की बीबनीधक्ति भी परि

१ विष्णु पुराण में 'यमवीता' मिलती है। राम ने लक्ष्मण को जो उन्नेष प्रदान किया है उसे भी 'लक्ष्मण वीता' कहा जाता है।

संक्षिप्त होने सपत्नी है फिर भी 'गीता' में बार्सनिक स्वर इतना प्रबल है कि बड़ा उछका बादी स्वर बन बैठा है। यद्यत् वर्तमान दृष्टिकोण से गीतिकाम्य में कवि की जिस प्रसन्नता की अपेक्षा है वह 'गीता' में उपलब्ध नहीं होती।

गीतिकाम्य के ऐतिहासिक अध्ययन में श्री मद्भानवत् भी उपयोगी रचना है। इसमें बेसुमीत १ प्रलयगीत योपिका-गीत ३ युगलगीत ४ इत्यादि कठिनपय सुन्दर गीत मिलते हैं। इन गीतों में जिस तीव्र अनुभूति की अभिव्यंजना हुई है वह योतिकाम्य की दृष्टि से मायिक है।

गीतिकाम्य के विकास क्रम में वैदिक साहित्य के पश्चात् बौद्ध साहित्य की बेर पाषाणों (अथवा बेरि गाथाओं) का स्थान प्राप्त है। पाणि साया में लिखे हुये स्लोक पाषाण कहलाते हैं। इन पाषाणों की रचना मिथुणों द्वारा प्रायः पतक-काव्य-सैषी पर हुई है। इनमें बुद्ध-जर्म के मूल सिद्धान्तों एवं वैराग्यमूलक मनोवृत्ति के प्रति भावनात्मक मिथुणों (अथवा मिथुनिना) की व्यंग्यता की प्रायोग्यपूर्ण अभिव्यक्ति दृष्टिगोचर होती है। १५

संस्कृत-साहित्य

कालिदास के नाटकों में भी सुन्दर गीतों का समावेश हुआ है। अग्निमान वाङ्मयम् के पंचम् अंक में 'नय तान के साय अत्यन्त मीठे स्वरों में

| | |
|-----------------|----------|
| १ श्रीमद्भानवत् | १०-२२ १५ |
| २ बही | १०-२६ ३४ |
| ३ बही | १० ३१ ४ |
| ४ युगल गीत | १० ३५ ४ |

५. मङ्गलमे विविध रोप निवान भूते
 कामे तथा रविरमूलाकरीतपुष्पे ।
 सो एव नगरीत नरो सनिमान मन्त्र
 कामं हि सोचति वरत्य स बालकृष्टि ।

तेहितकटाहापा ६६

(बोड़े के समान विविध रोपों के निवानस्थान रविर मूत्र मन्त्र इत्यादि से भरे भू-मार्गों द्वारा मध्य एत शरीर को इत्यकर को व्यक्ति मान-विन्द होता है वह प्रकाश परलोक म बुद्ध जाता है।)

के-प्य से' जो शीत गाया गया है उसमें मधुसूत प्रेम का कारण बह उठी है । ११
 कानिदास के गीतों में जो मीन आये हैं वे प्रायः प्राकृत में हैं । सम्भवतः इस
 का कारण यह है कि स्वाभाविकता की दृष्टि से एक ओर तो कानिदास ने
 स्त्रियों को प्रायः प्राकृत और पुरुष पात्रों को संस्कृत बोलते हुये दिखाया है तथा
 दूसरी बात यह भी हो सकती है कि स्त्री-पात्रों का माना अधिक मान्यक प्रतीत
 होता है ।

कानिदास के मेघदूत में हृदय की महती अनुभूति मानिषता से व्यक्त
 हुई है किन्तु इसमें बसंत का घाघरु कुछ अधिक हा जाने से उसके प्रयोगों में
 मेघदूत को गीतिकाम्य कहने में संकोच हा सकता है, फिर भी मेघदूत में अनेक
 ऐसे स्वतन्त्र गीत जात हैं जहाँ गीतिकाम्य के लक्षण सुसर हैं । १२

संस्कृत में गीतिकाम्य का सुन्दर स्वरूप अर्थात् कुछ 'शीत-योनिव्य' में
 मिलता है । अपनी इस रचना से अर्थात् नै गीतिकाम्य परम्परा में बस्तुतः
 कानिदास उत्पन्न करती है । तन्मयता पर-कानिदास, राय काव्यियों से युक्त संघीत
 की मर्यादा, भावार्थ से सभी कुछ जैसा 'शीतयोनिव्य' में परिलक्षित होता है वैसे
 पूर्ववर्ती गीति-साहित्य में दृष्टिमोचन नहीं होता । अनेक स्थलों पर छन्द से सर्वथा
 स्वतन्त्र 'प्रकृत' लिखकर अर्थात् नै गीतिकाम्य को जो स्वरूप प्रदान किया

१ इच्छन्तः—श्री सीताराम अनुबंसी द्वारा सम्पादित कानिदास
 प्रयागजी के अविज्ञान पाण्डित्यम् का पृष्ठ-७६, तृतीय संस्करण

२ कानिदास प्रयागजी

स्वाभाविक्य प्रलयकृपितां घातुरामिं घिनारा
 नात्मानं ते अरुण पतिव वाचविद्यमानि कस्तुम् ॥

प्रार्थस्तथाधमुत्तुक् पचित्तुं विद्वानुप्यते मे

कुरस्तस्मिन्नपि न सृष्टे संगमं नो वृत्तान्तः ॥

घिनारिणी

घिला मे एक से कृपित लसता तोहि निजि के ।

पर्यो भीलों बाहु तन घनन क्षीरे जयज में ॥

जलें घानु तीनों कृपनपय रोकें उमवि के ।

मूर्धा बाता बन्ती बहनु, हम बाहु विधि मिलें ॥

कानिदास द्वारा 'मेघदूत' का हिन्दी अनुवाद (अनुवादक राजा लक्ष्मण
 सिंह) पृष्ठ-११४ संस्करण १९७३ विक्रमी

उसमें मानव मान के ह्रास की तरल अनुभूति बैपत्नी स्रिता के समान प्रकाशित हो उठी है। बस सम्प्रदाय भक्ति इत्यादि को बहुत दूर रखकर कुछ काव्य की दृष्टि से जो 'गीत गोविन्द' का रसास्वादन किया जा सकता है और जो वैश्यात्मक है उनके लिए तो जयदेव का जान पावन ही नहीं पठित-पावन भी है। १ फिर भी 'गीत गोविन्द' आद्यन्त गीतिकाव्य की मनोरमता से समवेत नहीं। २ वर्णन का विशेष आग्रह और संवाद 'गीत गोविन्द' के गीतों को कभी कभी गीतिकाव्य और गीतनाट्य के बीच की वस्तु बना देते हैं। अर्थात् महाकवि की पूर्ण अधिकरण निष्ठा सर्वत्र दृष्टिगोचर नहीं होती तथा अनेक गीत नाटकीय प्रणाली की ओर उन्मुख से प्रतीत होते हैं।

संस्कृत साहित्य के उत्तर काल में अधिकतर मुक्तक पद्य लिखे गये जिनमें प्रभावशाली शृंगार की ही अतिव्यक्ति हुई। यह सम्भवतः धार्मिक जाति का धार्मिक जाति के सम्पर्क में जाने का परिणाम था। धार्मिक जाति जीवन का उद्देश्य 'बानी गियो और मौन उड़ायो' मानती थी फलतः उसके सम्पर्क में जाकर आत्म-विस्तार में मीन रहने वाली धार्मिक-जाति भी श्रुति-व्यतिकर गीत का उठी तथा मनोरंजन की दृष्टि से भी संगीत का महत्त्व बढ़ा। अतः अतः यह प्रवृत्ति संस्कृत से स्वतन्त्र होती हुई अपभ्रंश भाषा में आ गयी।

अपभ्रंश साहित्य

समय क्रम की साठवीं शताब्दी से अपभ्रंश की रचनाएँ उपलब्ध होने लगी हैं। बीडों के बसमान शाखा के शिखा की रचनाएँ अपभ्रंश में ही लिखी गयीं। बसमान सम्प्रदाय के बीड शिखाओं के गीतों में शोभिनी रचनी

१ 'यद्यत्कृतं प्रबन्धो बसन्तरायेण कृपकृताये गीयते' ॥

अष्टपदी

ससित सचनलता परिधीलन कोमल मलय समीरे ।
मधुकर निरकरम्बितकोटिल कृत्रित कुम्भ कुटीरे ॥
बिहरति हृदिह सरतसाम्भे ।
मृत्पति मुरति जनेन समंनति विरहिजनस्यपुरम्भे ॥

इत्यादि

जयदेव द्वारा 'गीत गोविन्द' पृष्ठ १७

२. इष्टव्य—बही पृष्ठ- १ ४ २ और ६

जमायी इत्यादि जाति की किसी मुन्वरी के साथ बिहार और मद्र-प्रदेश की जहाँ कुछकर हुई है ।

दोरखाना के नायक का मूल भी बौद्ध बखाना था ही है तथापि नायक में बखाना सिद्धों जैसी भीमसत्ता नहीं पा लगी । इस पद्य में ईश्वर का स्वोकार करके हृदय-साधना अद्वय है । नायकियों की माया उदुम्बरी है तथा इसका हाँसा पड़ी कासा निमित्त राजस्थानी है । इनके पीछों में ग्राम बाला मय पवन नाथ, मुक्ति निधि इत्यादि विगमा मुमुक्षा मुक्त-महिमा नाथा 'विन्दु' मुक्तिपूजा के निपकर इत्यादि साधना-मूलक बातों का उल्लेख मिलता है ।

नायक्यी मायिकी और उदुम्बरीयिका म उदुम्बरीयिका का कुछ अन्वित्त पी । हिन्दी की ज्ञानामयी शास्त्रों पर नायक्यिकी और सिद्धों का पुण अभाव परिलक्षित होता है, १ मत्र हिन्दी गौत्रिवाच्य का उल्लेख अत्र उ-साहित्य

- १ घालो डोरि । तीणु छम करिब म साथ ।
 निधिप कम्हू जपासी बोइ साथ ॥
 एक सो परमा बोधरिठ पाबुड़ी ।
 ठहि बहि नाथप डोरि बालुड़ी ।
 हालो डोरि । सो पुणमि सुदमाये ।
 अस्तति जाति डोरि काहरि नाये ॥

(कम्हू)

इच्छम घालाय पुनन हुन 'हिन्दी साहित्य का इतिहास,
 पृष्ठ १२, संस्करण संवत् १९१९

- २ कहे बोलों पडिठा बच कोने टारि
 निम्र छत निहारती घाम्हे कुम्हे माहीं ॥ १६ ॥
 पनीबची बेबनी पनीबच बच
 बनीण पुबिता कहे छोडीला अनेहू ॥१६॥

३ पौठम्बर बस बङ्गुवाल द्वारा सम्पादित 'दोरखाना' पृष्ठ-

१११

१ 'गदि बडोर धारि विमु'रुमठबची उम्हों की बाजियों की बाहरी मय रैला पर बिहार किया जान तो मामुय होमा छि यह सम्पूर्णतः भारतीय है और बौद्धधर्म के अन्तिम सिद्धों और नायक्यी योदियों के पश्चात् स उदुम्बरी

का पीठिकाव्य ही है।

जो हाथों वहाँ जैन य। अथ काव्य पर भी विचार कर लेना समीचीन मान पड़ता है। ये जैन रचनाएँ उस युग की भाषागत प्रवृत्तियों के अध्ययन में तो सहायक हैं ही। साथ ही तत्कालीन सौन्दर्यापा के काव्य-रूपों को भी यानि काँध में स्पष्ट कर देती हैं।

जैन पीठिकाव्य का एक उत्तम संग्रह 'ऐतिहासिक जैन-काव्य संग्रह' श्रीरंक से वि. सं० १९२४ में प्रकाशित हुआ था। इसमें बारहवीं शताब्दी से लेकर बीसवीं शताब्दी तक की रचनाएँ सम्बृहीत हैं। इनमें से बहुत से गीत मिश्र-भिन्न राग-रागिनियों में भी हैं। राहुल जी ने 'काव्यभारत' में धीर भी पद्य की जैन रचनाओं का उल्लेख किया है। इन गीतों का विषय साम्प्रदायिक भक्ति बचवा महापुरुष-कीर्ति-स्मरण है।

धीरगाथा काल

हिन्दी-गीतिकाव्य की पूर्ण पीठिका के रूप में अथवा अ काल की ये रचनाएँ उपयोगी हैं। सं० १२० से १४० तक का समय हिन्दी-साहित्य में धीरगाथा काल कहलाता है। यद्यपि राजनीतिक परिस्थितियों के कारण यह युग गीतिकाव्य के विषय अनुकूल नहीं है तथापि पहले से जो परम्परा बनी आ रही थी उसका सम्बन्ध—मुख्यतः अथवा अ की भाषागत प्रवृत्तियों का सम्बन्ध—यहाँ जुड़ा हुआ दिखायी देता है। राजस्थान उन दिनों राजनीति और युगों का नेत्र बना हुआ था। अतः अविषय अपने आभयदाताओं के पुरों, भावों, विचारों इत्यादि के वर्णन में ही सम्पीत था।

इस युग के गीतिकाव्य का कोई निश्चित तथा परिभाषित रूप अस्तित्व

में अस्तित्व है। वे ही पर, वे ही राग रागिनियाँ वे ही दोहे वे ही शीपाइयाँ कबीर आदि के व्यवहार की हैं जो उत्तर काल के मानने वाले उनके पूर्ववर्ती संतों ने की थी। क्या भाव क्या भाषा क्या प्रसंगिक क्या छंद क्या पारिभाषिक अथ सर्वत्र वे ही कबीरवाण के मार्गदर्शक हैं।

डा० हजारा प्रसाद द्विवेदी द्वारा हिन्दी साहित्य की भूमिका,

पृष्ठ ३१ प्रथम संस्करण

१. अथवा अ—अथवा अ अथवा अ अथवा अ

(वक्तव्य तत्कालीन)

नहीं। एक तो बीरदास का काल से सम्बन्ध अन्य ही बोधे मिलते हैं दूसरे तो ही उनकी प्रामाणिकता में शक करने हैं। अमीर खुमरो की विद्यापति की रचनाओं को छोड़कर हम काल में किसी ऐसे कवि को खाना नहीं मिलती जिसका प्रत्यक्ष जाने के लिए हाँ दिया जा हो सकता जिन्हें पीठिकाय की दृष्टि से कोई निश्चित दृष्ट काल प्राप्त हो सके हो। बल्कि इन 'पुष्पोपम रासों' की प्रामाणिकता संश्लेष है। 'बीरदास रासों' की एक अन्तर्भाविक मान्यता माने जाते हैं। अन्तर्भाव के आसह सन्दर्भ में बीरदासों की सुन्दर समिप्यति हुई है, किन्तु वेक्यों कर्णों से उम्कहा मीठिक काल ही प्रचलित है, अतः अन्तः काल रूप में वह भी सुपलित नहीं है।

अमीर खुमरो

अमीर खुमरो (सं० १३१० से १३८० तक) के साहित्य की मनोरंजित की दृष्टि से अन्तर्भाव। खुमरो जिस प्रकार अन्तर्भाविक के कवि के उन्की प्रकार अन्तर्भाव के अन्तः सपीठक भी य अन्तः अन्तर्भाविक काव्य-रचना के माय संवीत की भी अन्तः प्रकृति की अन्तः अन्तर्भाव किया। उनके दोतों में अन्तः अमीर काव्य का सुन्दर अन्तर्भाव हुआ है।

विद्यापति

विद्यापति के मनोरंजित वर्णों में हमें दृष्ट रागात्मक आशय की संवीतान्तरक समिप्यति प्राप्त होती है। पीठिकाय की दृष्टि से विद्यापति पर अन्तर्भाव का प्रभाव माना जाता है, किन्तु यह काल पूर्णतः सुनिश्चित नहीं है। विद्यापति अन्तर्भाव के अन्तः अन्तर्भाविक माने अन्तर्भाविक कवि अन्तर्भाव की अन्तः रचना 'अन्तः अन्तर्भाव' को अन्तर्भाव पड़ा होगा। विद्यापति के अन्तर्भाव में नहीं 'देवि

१

अन्तर्भाव-अन्तर्भाव अन्तर्भाव

अन्तर्भाव अन्तर्भाव अन्तर्भाव अन्तर्भाव अन्तर्भाव

अन्तर्भाव अन्तर्भाव

अन्तर्भाव अन्तर्भाव अन्तर्भाव अन्तर्भाव अन्तर्भाव

अन्तर्भाव अन्तर्भाव

अन्तर्भाव अन्तर्भाव अन्तर्भाव अन्तर्भाव अन्तर्भाव (अन्तर्भाव)

अन्तर्भाव-अन्तर्भाव अन्तर्भाव

बसना सब जन मिट्टा' में अपने गीत लिखे घट' जन साधारण से जनका सम्बन्ध समुच्च बना रहा। संदीप्त की दृष्टि से उन्होंने राम राविसिंहों और विभिन्न ठालों का प्रयोग न करके लोकगीतों को ही अपनाया था। यही कारण है कि उनके गीत प्रायः भी मिथिला में खूब प्रचलित हैं। तात्पर्य यह है कि विद्यापति के गीतों में चाहे 'भीतगोविन्द' के अनुकरण पर राम-कृष्ण की स्थापना भरो ही हो यही हो किन्तु विद्यापति के कृष्ण वस्तुतः शृंगार रस के वैभवा कृष्ण हैं भक्ति के आत्मबन्धन कृष्ण नहीं। महाप्रभु भैरव्य जैसे गणों को उनके गीतों में भक्तिरस की प्रभाव सरिता बहती हुई बिसाली दे सकृती थी किन्तु प्रायः के युग में ऐसे गीतों को प्रचुरता नहीं है। विद्यापति के गीतों में भौवन उन्मत्ताय प्रणय विरह श्रव्यादि की जो धारणपूर्वक तथा संगीतात्मक अभिव्यक्ति हुई है वह भावुक हृदयों को सहज ही अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है। अतः इसमें कोई संशय नहीं कि हिन्दी में विद्यापति के गीत प्रभूतपूर्व और अनुपमेय हैं। विद्यापति को सामोचक अभिनय व्यवस्था मानें या न मानें परन्तु उनके गीतों से हिन्दी में भक्तिरस की अभिनय परम्परा का मूलपाठ प्रथम हुआ।

ज्ञानाशयी शाखा

वीरसाया काल की समाप्ति के पश्चात् पूर्व मध्यकाल में निम्न लक्षण-

- १ जनम होयए अनु जो बुदि होई
 बुबती अए जनमए जन कोई ॥
 होई बुबति अनु हो रसमति ।
 रसयो बुबए अनु हो रसमति ।
- २ पन मापसों बिहि एक पए लोहि ।
 निरटा छिहू प्रबतानहु मोहि ॥
 मिलि सामी नापर रसचार ।
 परवत अनु होए हमर पिपार ।
 होए परवत बुछ बुझए बिचारि ।
 बाए बिचार हार कओन नारि ।
 मनइ विद्यापति अछ परचार ।
 बर-समुद होय जोब इए पार ।

श्री रामकृत बनोपुरी द्वारा संकलित 'विद्यापति की बराबरी

बड़ी शाखा के कवियों का समय आता है। प्राचार्य सुब्रह्मण्य के अनुसार^१ सिद्धों एवं निरुपियों के बीच की बड़ी महाराष्ट्र के समस्त प्रौढ प्रतिष्ठ भक्त नामदेव हैं जिनका समय बहीर से लगभग सौ वर्ष पूर्व माना जाता है। इन्हीं मगदी के समय लिखे और हिन्दी में पढ़े। इनकी रचनाओं में बही एक धार प्राचीन भक्ति-सम्प्रदाय का अनुसरण दृष्टिकोण से होता है जहाँ कृपरी कोर निगुण पम्प के रूप की उक्तिवा भी उपलब्ध होती हैं। नामदेव ने अपने समुत्तोरामता तथा में 'धरदार भीला का कीर्तन और भगवान् की भक्तवत्सलता का उम्पन बड़ी सम्पत्ता से किया है।^२

निरुपण पम्प को एक निरुप्य स्वकप प्रदान करने का श्रम करीब की है। उद्य युग की सांस्कृतिक और सामाजिक परिस्थितियों में प्ररित होकर कथाई, बुबाहा बाई, जाट बमार मोषी इत्यादि प्रायः निम्न श्रेणी की जातियों में से अनेक कर्मोपदेशक उठ खड़े हुए थे जिनकी माध्यमताओं में सामान्य सा प्ररार से अवरम दिशायो देता है किन्तु स्तुन रूप से उनकी विचाररणा बहीर के ही समान थी। इन समस्त कवियों ने जहाँ-जहाँ अपनी सच्ची अनुभूति को उपात्मक भावेन से लिख कर दिया है जहाँ-जहाँ उनके सीधे-साधे शब्दों में हृदय को स्पर्श करने की अनुपम क्षमता भी पायी है, किन्तु जहाँ केवल मुखा उपदेश तथा विधि-नियंत्र की बातें या कोरा यजन-मन्त्रन है जहाँ उनके गीत बाई बानी करेखा में भसे ही गीत हों परन्तु कीटिकाग्र्य की भाविकता उनमें नहीं है। इला-निगसा की शीघ्र रट किधी सच्चे गीत का प्राण नहीं बन सकती फिर भी बाई संपूर्ण सत्य-साहित्य को काव्य की दृष्टि से महत्त्व प्रदान न

१. वैशिष्ट्य हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ ८९

संस्करण सं० १९९९

२. सम्बरीय की बियो प्रममपर राज विभीवन प्रथित वरुवो ।
 नरनिधि ठाकुर बई सशामहि, प्रुव को प्ररत प्रजह म टरुयो ।
 भयत हेत मापुयो हरभापुष, नृसिंह रूप हू वैहू वरुयो ।
 नामा कई भयति इन वैसव प्रजहूँ बनि के डार करो ॥

प्राचार्य अरुण कृत 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' पृष्ठ-७८ (संस्करण

सं० १९९९) के अनुसृत

किया जा सके किन्तु कबीर १ धर्मदास २ नानक ३ रैदास, ४ इत्यादि सन्त कवियों के कुछ पर ऐसे प्रभाव हैं जिन्हें यथिकाव्य में स्थान प्रदान किया जा सकता है ।

१ करम गति हारे जाहि ठरी ।

मुनि बसिप्य से पडित ज्ञानी सोचि के लखन बरो ।

सीता हरम मरण इतरण को बन में बिपति परी ॥

कहूँ कहूँ पंड कहूँ कहूँ पारबि कहूँ कहूँ मिरम बरी ॥

सीता को हरि भयो राखन सुबरन लंक बरी ।

भीम हाथ हरिबन्ध बिकाने बसि पाताल बरी ।

कोटि पाय गित पुन करत नृप निरनिठ कोति परी ॥

पांडव जिनके घायु सारथी तिन पर बिपति बरी ।

दुरजोधन को परब घटायो बहुकुल मास करी ॥

राहु वैतु घोर भानु बन्धमा बिधि संघोष बरी ।

बहुत कबीर सुनो मई सारयो होनी होके रही ॥

श्री रामनरेश त्रिपाठी द्वारा सम्पादित 'कविता कौमुदी' (पहला भाग—हिन्दी) पृष्ठ—११८ ११२ पाँचवाँ संस्करण

२ नितक मईया मुनि करि बेलो ।

घनन बलम परबेस निकरि पलो हमरा के कछु धोन मुन रे बेलो ॥

बोचिन हूँ के मैं बनबन बूझोँ हमरा के बिरह बराम रे बेलो ॥

सब की सखी सब पार बतरि बेलो हब बन ठाड़ी भकेली रहि बेलो ।

परम बास यह परब करतु हूँ सार सबह मुबिरन रे बेलो ।

श्री रामनरेश त्रिपाठी द्वारा सम्पादित 'कविता कौमुदी' (पहला भाग—हिन्दी) पृष्ठ ११८ पाँचवाँ संस्करण

३ सुमिरन करते मेरे मना ।

तरि बिति जाति बसर हरिनाम बिना ।

कूब नीर बिन धनु छीर बिन मन्दिर बीप बिना ।

भेस तदवर कम बिन होना लंस प्राणी हरिनाम बिना ॥

बहु मंग बिन रैन चर बिन घरती मैह बिना ।

बंसे बडित बैर बिहोना लंस प्राणी हरिनाम बिना ।

काम कोब पर मोह मिहारो दाहू रे घब सतबना ।

प्रेममार्गी शाखा

भक्तिभाव की निरुत्सु निर्बकरीली द्विविध पारायणों में प्रकाहित हुई। शास्त्रमार्गी सन्तों ने केवल मुक्तक रचनाएँ सिद्धी धीरे कम से कम बाह्य पिल्ल विद्याम (फॉर्म) की दृष्टि से ही उनमें से अधिकांश रचनाएँ, नीतिकाम्य का ही रूप ग्रहण किये हुए हैं। हमारे प्रेममार्गी सूफी कवियों ने प्रबन्ध-काव्य-दीप्ती का अनुसरण किया प्रकृत उनही रचनाओं में नीतिकाम्य की दीप्ती के अनुकूल संक्षिप्तता किन्हीं एक ही भाव की आवेगपूर्ण अतिव्यक्ति भास्य-निष्कृति इत्यादि बातें न था सही फिर भी सूफी कवि प्रेम की धीरे को लेकर जैसे मठ उनके प्रबन्ध काव्यों में घनेक हसन ऐसे मिल जाते हैं जहाँ हृदय की मार्ग कता का सहज उल्लसक वर्णनीय है। १ ऐसे स्थलों में नीतिकाम्य के तरंग स्पष्टतम बनने लगे होते हैं किन्तु कथा-प्रवाह में वे धीमे ही दृब भी जाते हैं, फिर भी नीतिकाम्य की दृष्टि से प्रेम की विभिन्न अन्तर्दशाओं की अतिव्यक्ति इन कवियों की रचनाओं में निश्चय ही हृदयरपणी है।

निरुत्सु भाव में प्रवसाहन करके साधारण जनता की बुद्धि की चोड़ी बहुत उन्मुष्टि अवश्य प्राप्त हुई, किन्तु यह धारा हृदय की उल्लसक न कर सकी। हृदय की बुलुं तुष्टि के लिए वैसा धामम्बन अपेक्षित है वैसा न ली जाया धवी छासा के कवियों के पास था धीरे न प्रेममार्गी कवियों के पास। इस परिस्थिति ने प्राचीन भक्ति-स्वरूप की कृति धूमिल कर दी, परिणामतः निरुत्सुधारा

कहे 'नामक धा' तुम अचरिता या जय में नहि कोई प्रपना ।

वही पृष्ठ-१७२, १०३

४ मरहुरि बचल है बलि मोरी ।

कैसे भयति कक में लोरी ॥ (देक)

तु मोहि बचें हों तोहि बेजू प्रीति परस्पर होई ।

तु मोहि बेक तोहि न बेजू यह मति तब बुधि छोई ॥

'दीवान की की वाली पृष्ठ-७

(बिजबैदियर संत, प्रयाग)

१ 'यह तन जातों द्वार कैं कहीं कि 'बचम । जड़ाव' ।

मकु तहि मारम उकि परे कत करे कहुं बाव ॥'

धाबाबे सुपन द्वारा सम्पादित 'चापसी पन्थावली,'

पृष्ठ-१७७ द्वितीय संस्करण

किया वा सके किन्तु कबीर १ धर्मदास २ भागक ३ रैदास ४ इत्यादि सप्त कवियों के कुछ पर ऐसे प्रयत्न हैं जिन्हें नीतिकार्य में स्थान प्रदान किया जा सकता है।

१ करम गति खारे नाहिं बरी ।

मुनि बसिष्ठ से पंडित ज्ञानी सोपि के लपन बरी ।

सीता हरन परन बसरन को बन में बिपति परी ॥

कई बह फर कहीं बह पारधि कई बह मिरन बरी ॥

सीता को हरि लैयो रावन सुबरन संक बरी ।

नीच हाथ हरिबन्ध बिकाने बलि पाठान बरी ।

कोटि पाय बित पुन करत नृप बिरनिद कोनि बरी ॥

पांडव जिनके धायु सारथी तिन पर बिपति परी ।

बुरबोवन को धरन घटायो बहुकुल नात बरी ॥

राहु कैतु और मानु धरमा बिधि संयोग बरी ।

बहुत कबीर मुनी कई साबो होनी हुके रही ॥

श्री रामनरेश त्रिपाठी द्वारा सम्पादित 'कविता कौमुदी' (बहुला भाग—हिन्दी) पृष्ठ—१२८, १२९ पाँचवाँ संस्करण

२ बितरु नईया मुनि करि गैली ।

अपन बलन परबस निकरि गैलो हमरा के कइ बोन पुन बे गैलो ॥

बोगिन हूँ के मे बनबन बूझो हमरा के बिरह वैराय ई गैलो ॥

सब की सखी सब पार परतिर गैलो हन पन डाढ़ी बकेलो रहि गैलो ।

धरन दास यह धरन करतु हूँ सार सबन मुभिरन ई गैलो ।

श्री रामनरेश त्रिपाठी द्वारा सम्पादित 'कविता कौमुदी' (बहुला भाग—हिन्दी) पृष्ठ १२८ पाँचवाँ संस्करण

३ मुघिरन करले मेरे मना ।

तरि बिति जाति उमर हरिनाम बिना ।

कूप नीर बिन धनु छीर बिन मगिहर बीच बिना ।

अत सरवर अल बिन होना तैस प्राची हरिनाम बिना ॥

बहु नन बिन रैन खंड बिन परती मैह बिना ।

असे पहित बैर बिहोनी संसे प्राची हरिनाम बिना ।

काम कोय नव मोह निहारो घाड़ि बे अक सोतबना ।

प्रेममार्गी शास्त्रा

मच्छिफाल की निरुण निर्मरिणी द्विषिय धाराओं में प्रवाहित हुई । आनमार्गी सन्तों ने केवल मुक्तक रचनाएँ लिखीं और कम से कम बाह्य विषय विधान (फॉर्म) को दृष्टि से तो उनमें से अधिष्ठा रचनाएँ गीतिकाम्य का ही रूप ग्रहण किये हुए हैं । इस प्रेममार्गी मूखी कवियों ने प्रबन्ध-काम्य-शैली का अनुसरण किया फलतः उनकी रचनाओं में गीतिकाम्य की शैली के अनुकूल संक्षिप्तता किसी एक ही भाव की धारणपूर्ण अभिव्यक्ति धारण-विस्मृति इत्यादि बातें न था सही फिर भी मूखी कवि प्रेम की शीर को लेकर जैसे बत उनके प्रबन्ध काम्यों में धनेक स्थल ऐसे मिल जाते हैं जहाँ हृदय की मार्मिकता का सहज उच्छ्वसन बर्णनीय है । ऐसे स्थलों में गीतिकाम्य क तरह स्पष्टतम बनने लगे हैं, किन्तु कथा प्रवाह में वे पीछे ही डूब भी जाते हैं फिर भी गीतिकाम्य की दृष्टि से प्रेम की विभिन्न अन्तर्दशाओं की अभिव्यक्ति इन कवियों की रचनाओं में निरन्तर ही हृदयस्पर्शी है ।

निरुण धारा में प्रवाहन करके साधारण जनता की बुद्धि को चोड़ी बहुत संकुचित अवसर प्राप्त हुई, किन्तु यह धारा हृदय को रसप्लावित न कर सकी । हृदय की पूर्ण सुष्टि के लिए जैसा आत्ममग्न अपेक्षित है वैसे न तो ज्ञानाभ्यास के कवियों के पास था और न प्रेममार्गी कवियों के पास । इस परिस्थिति में प्राचीन भक्ति-स्वरूप की कांति भूमिका कर बी, परिणामतः निरुणधारा

कहे 'नामक धा' सुन भगवंता या जय में नहि कोई अपना ।

बही पृष्ठ-१७२, १७३

५ नरहरि कबल है मति मोरी ।

कैसे नगति कक मैं तोरी ॥ (हेक)

तू मोहि बखे ही तोहि बेनू प्रीति परस्पर होई ।

तू मोहि बख तोहि न बेनू यह मति सब बुजि रोई ॥

'दिरात बी की बानी पृष्ठ-७

(दिलचैडियर प्रेम, प्रयाग)

१ 'यह तन जा मैं छार के कहौ कि पबन । जकाव ।

मकु तहि मारम जहि परै कत धरे कहुं पाव ॥

आचार्य शुबल द्वारा सम्पादित 'आमसी'

के समानांतर समुच्चय भी प्रचलित हो गयीं । सूर, तुमसी और मीरा के युग में इसी बात ने सृष्टे अन्त-अन्त को हरा भरा कर दिया । इस युग में भक्ति-विभोर कवियों ने धामानुजाचार्य बसवभाचार्य आदि विविध महात्माओं से प्रेरणा प्राप्त करके मुक्तकण्ठ से समुच्च-मीमांसकों का नाग किया । जनकी भक्ति का धामन्वज ये राम और कृष्ण ।

राम-भक्ति-शाखा

कृष्ण-भक्ति-शाखा में अनेक दिग्गम पामक और कवि हुए, किन्तु राम भक्ति-शाखा में तुमसी के अतिरिक्त स्वामी परदास नाभादास प्राणानन्द बीहान इत्यादि दो चार ही कवियों के नाम गिनाये जा सकते हैं ।

सीतिकाव्य की दृष्टि से तुमसी की 'मीतावली' 'कृष्ण-मीतावली' 'बिन्दव-मञ्जिका' 'राम लला नहूँ' 'जालगी मंगल' 'पार्वती मंगल' इत्यादि रचनारण्ये अमूल्यनीय हैं । इनमें से अन्तिम तीन पुस्तकें जो ठेठ अवधी में लिखी गयी हैं धामनीतों के हँस की रचनारण्ये हैं जिन्हें तुमसी ने संस्कारों के अक्षर पर गाने के लिए लिखा था । प्रथम तीन का निर्माता विद्यापति और सूरदास की बीठ-पैली पर हुआ और वे अक्षररूप में लिखी गयीं ।

'नहूँ' और दोनों 'मंगल स्त्री-समाज में गाये जाने वाले गीतों की पैली पर लिखे गये हैं । अस्तुन' बेबी-बेवताओं का अक्षर-अक्षर करने के लिए संपाद्यमानमूलक धरवा विद्याहरक मंगल काव्यों के लिखे जाने की प्रथा तुमसी के पूर्व भी विद्यमान थी । तुमसी ने जब 'जाली उबरी बोहण परदान' इत्यादि कहने वालों पर व्यंग्य किया था तब मंगल काव्य भी उनकी दृष्टि से प्रोद्यत न थे । उक्त प्रबंध में मुख्यतः पूर्वी धरव में सोहर (मीठ) खूब प्रचलित हैं ।

१ "शास्त्रीय रामरागिनियों के अतिरिक्त तुमसीबाह ने स्त्री समाज में गाये जाने वाले गीतों का भी अति धम्यधन किया था और उन्होंने 'जालगी मंगल' 'पार्वती मंगल' और 'राम लला नहूँ' की रचनारण्ये, (मी-मीतों) में की थी हैं ।"

श्री रामभरेत विपारी हृत 'तुमसीबाह और उबरी कविता

गाय हृतगा पुष्प-१८७ प्रथम संस्करण

इच्छम्य—डा० हजारी प्रगाव डिबेरी हृत 'हिन्दी साहित्य का आदि काल' पुष्प-१०१ १०४ प्रथम संस्करण

प्रायः पुत्र-व्रतम यज्ञोपवीत भयना विवाहादि के अवसर पर स्त्रियाँ सोहर गाती हैं ।^१ इस प्रकार के कीर्तों में कुछ न कुछ बदनीमता प्रायः रहती है, यद्यपि इस कथन में पर्याप्त बात है कि 'नहछूँ' की रचना विवाहादि के अवसर पर गाने कीर्तों के स्थान पर गाने के लिए हुई थी ।^२ दोनों संगनों का उद्देश्य यही प्रतीत होता है कि वे विवाह के अवसर पर गाये जायें ।^३ संगनों में तुलसीदास जी ने बरन (११+१२) और हरिगीतिका (१६+१७) छन्दों का प्रयोग किया है ।

श्री रामनरेश त्रिपाठी ने 'तुलसीदास और उनकी कविता' शीर्षक अपनी पुस्तक के दूसरे भाग (पृष्ठ ६७१—६८७) में तुलसीदास के संगीत ज्ञान के सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा है । ग्रन्थ में एक आलोचनाओं में भी उन्हें संगीत-कला का प्रकाश पवित्र कहा है ।^४ किन्तु इन आलोचनाओं में तुलसी के संगीत-ज्ञान की व्याख्या न तो सुष्ठुसुष्ठु है और न सारसमिथ । श्री त्रिपाठी जी ने त्रिपाठी के एक पद्य के राग-शीर्षक का औचित्य सिद्ध करने के लिए 'संगीत-रसंग' का उद्धरण उपस्थित किया है ।^५ किन्तु 'संगीत-रसंग' तुलसी के बहुत बाद की रचना है । यदि 'संगीत-रसंग' की अपेक्षा तुलसी के सपत्न्यासीन जितनी प्रामाणिक रस का आचार उपस्थित किया जाता तो उनका ठीक अधिक संभव हो सकता।

१ "यह ध्वज आनन्दोत्सव या विवाहादि के अवसरों पर स्त्रियों द्वारा गाया जाता है ।"

डा. रामकुमार वर्मा द्वारा 'हिन्दी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' पृष्ठ-१२५ प्रथम संस्करण

२ "योत्साई जी न हरी वास्तव में विवाह के समय के गाने नहछुओं के स्थान पर गाने के लिए बनाया है ।"

बाबू श्याम सुन्दर दास और श्री पीठाम्बर दास द्वारा 'तुलसीदास', पृष्ठ-२६ प्रथम संस्करण

३ "संभवत् १६६६ में तो योत्साई जी न उन्हें केवल अभिमन्त्रित किया जिससे वे विवाहादि के अवसर पर गाये जाकर रंगतकारी सिद्ध हों ।" पृष्ठ-२६

४ इच्छा—श्री विद्योती हरि द्वारा 'विनय पत्रिका की टीका' पृष्ठ-१७-२१ तृतीय संस्करण

५ तुलसीदास और उनकी कविता पाप द्वारा पृष्ठ-६८४

था। इसी प्रकार उन्होंने वो-एक ध्वज्य पदों को लेकर यह सिद्ध किया है कि पर के विद्य करण में कहीं धम है तथा वहाँ 'हमका आलाप'।^१ किन्तु जब तक तुलसी के पदों की तुलसीद्वय स्वरलिपियाँ भी उपलब्ध नहीं हो जाती तब तक दृढ़ता-पूर्वक यह कहना उचित नहीं कि तुलसी ने धमुक पर के धमुक करण में धमुक स्यात पर ही धम हलका आलाप या मुरकी इत्यादि का प्रयोग किया था। कोई भी कुशल धामक किसी भी पर को स्वेच्छा से किसी भी राग में गा सकता है। किसी पर को मनोवाञ्छित गायत्यक या स्वरात्यक स्वरूप प्रदान कर देना उक्त इच्छानुसार किसी ताल में बाँध लेना याने मनोनुकूल आलाप इत्यादि से विभूषित कर देना कुशल धामक के लिए बायें हाथ का खेल है। परत इस संबंध में बोधे कल्पना के आधार पर स्थापित निष्कर्ष रत्नाम्प धीर भाग्य नहीं हो सकते।

तुलसी वस्तुतः कवि शायतिक भक्त संगीतज्ञ समन्वयवादी समाज सुधारक इत्यादि सभी कुछ थे, किन्तु तुलसी का महत्त चिंतना धषम है यतना उनका ध्वज्य रूप नहीं। संसार उनके लिए सिवा राम-मय धार और माते सभी से राम से सम्बन्धित।^२ प्राकृत-वन-गज-यात्रा जहाँ पसन्त न का यद्यत्ता तुलसी की रचनाओं में सबसे बबल स्वर मल्लि का मुनापी देता है। उनकी वक्ति उन का परम सीमाग्य भी है धीर कुर्माग्य भी। जहाँ उनकी भक्ति स्वरं उनके लिए कल्याणप्रदायिनी धीर निराध हिंदू जनता का एकमात्र सम्बल है वहाँ

- १ तुलसीदास और उनकी कविता भाग दूसरा पृष्ठ-६७२
- २ 'सिपा राम मय सब धम जानी करों प्रभाव जोरि जुग जानी।
रामचरित मानस-बालकाण्ड पृष्ठ १० (टीकाकार रामेश्वर
मठ) संस्करण १९३२
- ३ 'माते नह राम के अनिपत सुहर मुनेध्व जहाँ ली।
धंजन नहा धाँव बहि कटे बहुतक कर्णो नही ली ॥
ओ बिबोनी हार हृत बिनय पधिका की डीका'
पृष्ठ-११० तृतीय संस्करण
- ४ 'कीहू प्राकृत वन-गज-यात्रा तिर धुनि बिरा जवति बलिनाता।
रामचरित मानस बालकाण्ड पृष्ठ-२२ (टीकाकार
रामेश्वर मठ) संस्करण १९३२

नक्ति की इस बेगबती सरिता में धबाकरा उनकी काम्याभुमूर्ति बूब भी मयी है ।

‘बीठाबली’ का एक पद है ?

बननी निरखति बान धनुहिर्वा ।

बार-बार सर नेननि लावति प्रभु बू की सलित पनहिर्वा ॥

बीतिकाम्य की दृष्टि से इस पद का धारण बड़ा ही सुन्दर है । बनप के स्वान पर ‘धनुहिर्वा’ शब्द का प्रयोग करके तुलसी ने बड़ी लूची से माता के अपत्य-प्रेम को व्यक्त किया है किन्तु दूसरी ही पंक्ति में उनकी नक्ति भाड़े मा मयी है । ‘प्रभु बू की सलित पनहिर्वा’ कहना चाहे मरठ तुलसी के लिए सर्वथा उचित हो किन्तु निश्चय ही यह भावना माता क्रीडस्या की नहीं हो सकती ।

तुलसी के नीतिकाम्य पर विचार करते समय निम्नस्थ प्रश्न धनायास ही घामने या बड़े होते हैं

- १ तुलसी ने यद्यपि अपने युग की पीठ-सीनी को धपनाते हुए राग रागिनियों में ही पदों की रचना की थी किन्तु उनके पद सूर और मीरा के समान प्रचलित क्यों न हो सके ?
- २ स्वभावतः मधुर ब्रजभाषा में ही यद्यपि उन्हींमें भी पद लिखे किन्तु फिर भी उनके पदों को सूर जैसी लोकप्रियता प्राप्त क्यों न हो सकी ?
- ३ तुलसी की दार्शनिक भावनाओं ने उनकी पद-रचना में कहीं तक स्वाभाव उपस्थित किया ?
- ४ सूर और मीरा ने अपनी अपनी भावुकता के कारण जैसी बौद्धिकता और मर्मस्पर्शिता अपने पदों में भर ली है वैसे तुलसी क्यों न उपरिबत कर सके ?
- ५ नीतिकाम्य की दृष्टि से तुलसी को अपने पदों में कहीं-कहीं तथा किस-सीमा तक उक्तता प्राप्त हुई है ?

उपर्युक्त प्रश्नों की दृष्टि से ही तुलसी के नीतिकाम्य का सूत्रांकन अधिक समीचीन होगा । तुलसी के युग में जो पीठ-सीनी प्रचलित थी वह तत्कालीन धार्मिक संगीत से पर्याप्त प्रभावित थी । उच्च युग की वह मनो-

वृत्ति जो बसा मास के विराट् और यम्भीर स्वरूप की ओर उग्रमुख की संगीत पर अपना प्रभाव डाले हुए थी। अपनी वैयक्तिक क्षमता के अनुपात और शक्ति की विशिष्ट दिशा के अनुसार मोम युग-विशेष की इस मनोवृत्ति से प्रेरित थे। दरबार में संगीत यदि कुछ कला और तन्त्रमय आनन्द की दृष्टि से समावृत्त था तो तत्संगीत उत्पन्न करने की अपरिमेय क्षमता के कारण स्वामी हरिदास जैसे भक्तों का कण्ठधार भी था। तुमसी ने भी धारमकल्याण की दृष्टि से ही संगीत अपनाया था किन्तु गूर, मीरा इत्यादि की परिस्थितियाँ तुमसी से भिन्न थीं। संगीत उनके लिए भी धार्मिककल्याण का साधन था किन्तु मीरा 'पय बु बरु बाब' कर गिरबार नावर' को रिझाने में मस्त थी और गूर तो मीनाक्ष जी के मन्दिर में संगीत के द्वारा ही उपासना कर रहे थे। निश्चय ही तुमसी का बाताबरस इतने भिन्न था। परिणामतः क्रियात्मक संगीत में गूर और मीरा का बितना समय व्यतीत होगा होगा उतना तुमसी का नहीं। इस प्रतिबन्ध संगीताभ्यास में गूर और मीरा के पदों में तुमसी के पदों की अपेक्षा स्वभावतः संगीतारमक प्रवाह अधिक भर दिना और यही कारण है कि धात्र भी गायक गूर और मीरा के पदों को तुमसी के पदों की अपेक्षा अधिक पसन्द करते हैं क्योंकि उनमें उन्हें एक ऐसा सरस प्रवाह मिलता है जो उग-रागिनियों में धनायास ही डल जाता है। स्वतः तुमसी पर भी गूर का महारा प्रभाव स्पष्ट दिखायी देता है। यहाँ तक कि कुछ पद को-बार घण्टा के हेरकैर के साथ शोनों में ही प्राप्त समान है। 'हृत्प पीठावनी' में तो तुमसी विशेष रूप से गूर के शब्दों दिखायी देते हैं। 'राम मीठावनी के उत्तर काण्ड में तुमसी के सीठाधम भी उपाहारम जैसा रूप ग्रहण करने पावते हैं।^{१२}

दुमरी काठ मापा की है। गौतिकाव्य में वज्रभाषा का प्रयोग शोनों में ही किया किन्तु तुमसी की मापा गूर की अपेक्षा अधिक साहित्यिक संस्कृत-निष्ठ और कही-कही किण्वत भी है। 'विजय पत्रिका' के अनेक पद—विशेषतः धारम के पञ्चम-छाठ पद—इस कवच के प्रभावस्वरूप उपरिष्ठ क्रिये जा सकते हैं।

१ इत्थम्—श। रामकुमार बर्मा द्वारा 'हिन्दी-साहित्य का भारतीयनात्मक इतिहास' पृष्ठ-४२१ प्रथम संस्करण

गूर—सेनन दत्तिए बाल मोदिरा ।

दुमरी—सेनन दत्तिए आनन्द कद ।

२ इत्थम्—वही पृष्ठ ४२४

हिन्दी गीतिकाव्य का संक्षिप्त इतिहास

गूर की भाषा ब्रज की चलती हुई भाषा है। यद्यपि वह जन-हृदय के अधिक निकट है। मीरा की भाषा में यद्यपि गूर जैसी मारबाड़ी शब्दों का भी प्रयोग पाया है किन्तु फिर भी उसका शास्त्रिक स्वभाव प्रमुख है। तुलसी की भाषा जिस सीमा तक साहित्यिक शब्दबन्धी में कसी हुई है उसी अनुपात में वह गीतिकाव्य के प्रतिभूत भी हो गयी है।

तुलसी की साधनिक विचारधारा ने भी उनका बहुत से पदों को गीतिकाव्य की सहायक-कान्ति से रहित कर दिया है। साधनिकता मुख्यतः विचारधारा की वस्तु है। उन्हे लिए गीतिकाव्य उपयुक्त शब्द नहीं है। इसी कारण तुलसी के ऐसे पद—सामान्यतः साहित्यिक दृष्टि से उत्कृष्ट माने हुए भी—गीतिकाव्य के शिल्प-विधान में उतने व्यवसाही नहीं हैं।

तुलसी की मन्त्र-बद्धी वास्य-भाव की भी 'मानस' में अनुमान और भरोसे का चरित्र ऐसा है जो तुलसी की मन्त्र भावना को समझने में सहायक हो सकता है। ऐसी मन्त्र में सर्वत्र मर्यादा का स्थान रचना ही चाहिए और यही तुलसी ने किया भी है। फलतः वैयक्तिकता का जो सहायक उल्लेख मीरा या गूर में विद्यमान होता है वह तुलसी में नहीं मिलता। मीरा की उपासना माधुर्य भाव की भी, इसीलिए जिस सच्ची वैयक्तिकता की गीतिकाव्य में प्रकट है, वह मीरा के पदों में बहुत ही स्वाभाविक ढंग से प्रायी है। सत्य भाव से हृदय की उपासना करने के कारण गूर भी बड़े कोशल से वैयक्तिकता का निर्वाह कर ले गये हैं, किन्तु निरक्षर ही उनकी सस्तीनता में मीरा जैसा साधक नहीं है और तुलसी में तो यह बात पा ही नहीं सकती थी।

फिर भी इस विवेचन का यह अर्थ नहीं है कि गीतिकाव्य की दृष्टि से तुलसी स्वभाव मग्न्य है। उपर्युक्त कथन का प्रीक्षित केवल साधनिक दृष्टि से ही निर्धारित किया जा सकता है। तुलसी की वैयक्तिकता का क्षेत्र बाह्य गूर की मीरा के समान विस्तृत न हो किन्तु अपने सीमित क्षेत्र में तुलसी की वैयक्तिकता अपनी तीव्रता मर्मस्पर्शिता और प्रमत्तियुता में निर्बल नहीं है। गोस्वामी की अपने मन्त्र के स्वरूप को मसीर्जाति समझते हैं और ईमानदारी के साथ उसे सत्य ढंग से उपस्थित कर देना भी उन्हें बुरा माना है। यद्यपि तुलसी के पद जिसमें उनकी वास्य मन्त्र की अभिव्यक्ति हुई है बड़े सजीव मन पड़े हैं।

१ यह पद देखिए

कमलुक धम्म धरतर पाई ।

मेरिपी गुवि साहबी कयु कवन कया जनाइ ।

भारतगानि १ दैव्य २ वीरगय ३ उद्बोधन ४ तथा धातम-जीवन ५ से सम्बद्ध पदों में भी उनकी मनोदशा बड़ी निरलसता से व्यक्त हुई है ।

बोन राव धीयहीन धीन मलीन प्रथी प्रयाइ ।
 नाम 'ई भर उबर एक प्रभु-बाली-बास कहाइ ॥
 बुझि हूँ 'सो है कीन' कहिबो नाम बसा बनाइ ।
 सुनत राम कृपाल के मेरी बिगारिणी बनि जाइ ॥
 बालसी बगवतनि जम की किये बचन सहाइ ।
 तरै तुमसीबास भव तब-नाप-गुनपम पाइ ॥

श्री बियोधोहरि कृत 'विनय पत्रिका की
 टीका' पर संख्या ४१

पृष्ठ १३३-४१ मृतीय संस्करण ।

- १ श्री बियोधोहरि कृत 'विनय पत्रिका की टीका
 (मृतीय संस्करण) पर संख्या-१३५, पृष्ठ ३५०
 'सैसि बँड मापहि सोरि ।'
- २ इच्छ्य—बही पर संख्या १ १ पृष्ठ २६४
 'जाइ कही तबिबरल तुम्हारे ।
- ३ इच्छ्य—बही पर संख्या-११६, पृष्ठ-२८८
 'आपक असितुम्हारि यह माया ।
- ४ इच्छ्य—बही पर संख्या-१०२, पृष्ठ ४०३
 'कयहुँन ही पहि रहनि रहोंगो ?
- ५ इच्छ्य—बही पर संख्या-७६ और १३३ अंशः, पृष्ठ-२२३, ३१७
 'कमल'

(क) 'राम को गुलाम नाम राजबोला राण्यो राम ।

(ख) 'राम सगरी सोँ से न सोहू बियो ।'

कृष्ण-भक्ति शाखा

हिंदी की कृष्ण-भक्ति काव्य-धारा का प्रारम्भ कव्यभाष्य के समय से हुआ है। इन से बहुत पहले राधा कृष्ण को लेकर विद्यापति अपनी पत्नी लाल कुंजे से परल्लु बल्लभ-मन्मथदाय न राधा कृष्ण व बिम रूप को उपासना की उच्च भावभूमि पर स्थापित कर दिया था वह इससे पहले कृष्टिगोबर नहीं हुआ था। कव्यभाष्य जो व सुपाय्य पुत्र और दिव्य बिट्मनाय व न कृष्ण लीला-गान के लिए ही 'घण्टछाप' की स्थापना की थी। 'घण्टछाप' के कवियाँ में सर्वोत्कृष्ट मायक मूरदास ही थे हममें सेना-मात्र भी मन्नेहू नहीं। र जान पड़ता है मूर की भक्ति के बिचिष्ट स्वरूप में—मुकयत सदनमाव की भक्ति म—

१ 'विद्यापति और मूरदास के पीछे में अन्तर विद्यापी रैता है। विद्यापति ने पीछों में श्रीकृष्ण का साहित्य-परम्परा में स्वीकृत रूप ही लिया है भक्ति क उपास्य रैबता क रूप में श्रीकृष्ण और राधिका के मोत उन्हेनै नहीं पाये। मूरदास की रचनाएँ भक्ति को लेकर बनीं। श्री बिभ्रनाय प्रसार दिव्य कृत 'बाङ्गमय-विमार्ग' पृष्ठ २३२ तृतीय संस्करण

२ 'अपने ही देवबाली की रचना पीपूद-बाद, जो काल की कठोरता से सब मयी थी, घबराता पाते ही लोकमाया की सरसता में परिणत होकर भिबिला की समरप्रदों में विद्यापति के कोकिल-कण्ठ से प्रकट हुई और प्राये बतकर बर के करील कुंजी क बीच केम मूरभाए मनों को सीबने लयी। प्राचायों को प्राप लयी हुई घाठ बोलाए श्रीकृष्ण की प्रेम-लीला का बर्लन करने उठी बिनमें सबसे ऊँची मुरीली और मरुत भंकार प्राये जबि मूरदास को बोला को थी।"

प्राचार्य रामचन्द्र गुप्त द्वारा सम्पादित
'जगत पीठ सार' की भूमिका पृष्ठ १
२ अनुर्व परिपोबिन संस्करण

कतिपय माम्य धामोचकों की विशेष धास्वा लहीं । १ इसका कारण सम्भवतः मुर की मरिच के विभिन्न दृष्टिकोण हैं । वे कभी हास रूप में कभी सदा रूप में कभी प्रेक्षणी रूप में तो कभी माता-पिता के रूप में अपने मवधान के प्रति ध्यात्मसमर्पण करते हुए बिलामी होते हैं और सात्त्विक अनुभूति की तीव्रता के साथ इन सभी रूपों में उन्होंने अपने हृदय के कोश को उन्मुक्त कर दिया है । २ वही कारण है कि एक ओर यदि वे मातृ-हृदय की सच्ची धमिध्वजना और बालकों की मनोवृत्ति का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने में सफल हो सके हैं तो दूसरी ओर उन्होंने बुद्ध-युक्तियों के सहज धाकर्षण की धमिध्वजना बड़ी सूक्ष्मता से की है । तात्पर्य यह कि मुर की वैयक्तिकता अपने पात्रों से पूर्व तादात्म्य स्थापित करके पाठकों के सम्मुख उपस्थित हुई है । ३

१ इच्छा—श्री विश्वनाथ प्रसाद निध इत 'आत्मसंविमर्श' पृष्ठ-२६३ तृतीय संस्करण तथा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा सम्पादित 'अमर शीत-तार की मुद्रिका' पृष्ठ-४४ चतुर्थ संस्करण

२ "मुरदास में विभिन्न पात्रों के माध्यम से वे सभी भाव जोड़े बहुत प्रकट हुए हैं पर मन उनका वास्तव्य सत्य और काष्ठा भाव में ही रहता है ।"

डा० हुजारी प्रसाद त्रिबेदी द्वारा 'हिन्दी साहित्य' पृष्ठ १८२ संस्करण सं० २००६ वि०

३ "मुर की भावुकता बड़ी प्रबल है । उनके ध्यात्मनिवेदन और विलय के पद तो निजी सात्त्विकता से धीत-भोत हैं ही लीला सम्बन्धी पदों में भी मुर की भावुकता अपना चमत्कार दिखा रही है । राजा कुपल के बाल-वर्णनात्मक पदों में शोषियों के बिरह-विषोय में, पगोरा के विलाप और वास्तव्य में, सर्वत्र हमें मुर का हृदय स्पन्दन करता हुआ प्रतीत होता है । कुपल से विभिन्न मित्रता स्थापित करके ही वे अपनी भावुकता का इतना ध्यात्मक प्रसार तथा धम्य पात्रों से तादात्म्य स्थापित कर सके हैं । मुर, इमान् कबवा मुरदास प्रभु बहूकर उन्होंने अपने पदों में विज्ञोपन की एतौ ध्याप लमा दी है जो धम्य पात्रों के माध्यम से धमिध्वस्त भावनाओं को भी उन्हीं के हृदय की भावना बना देती है ।

डा० बिरबन्धर भाग भट्ट का 'रत्न' में प्रकाशित 'हिन्दी शैतिकाम्य में मुर, मुलती और मोरा' शीर्षक निबन्ध पृष्ठ ३० (दिल्ली कालेज मैगजीन, १९३१)

दृग्म-मल्लि राधा

सूर के पदों का संगीत-विधान भी बहुत धारण्यक है। उनके बहुसंख्यक पद ऐसे हैं जहाँ रस धीरे पद-बाध के धनुकूल राग-सीर्यक के अवन में सूर ने अपने संगीत-ज्ञान का स्पष्ट परिचय दिया है।^१ कहीं-कहीं उन्होंने प्रबलरामकूल पदों के लिए समयानुकूल राधों का अवन भी किया है।^२ इन सब बातों का साथ उनकी कसती हुई मधुर ब्रजभाषा ने उनके पदों की भाव-गरिमा धीरे भी बढ़ा दी है। यही कारण है कि पदाधियों पुराने उनके पीछे आज भी अपने धारण्य में नब बने हुए हैं।

१ रत्नानुहल पर धीरे राग का समन्वय इस पर में बढ़ा सुन्दर हुआ है। महार के स्वरा में बरसते हुए गोपियों के दो धीरे सहृदय संवेद्य हैं

‘राग महार’

‘निशि विन बरसत नैन हमारे ।
 सदा रूति पावस जगु ह्य ये जब ते स्वाम सिचारे ॥
 म्यु अंजन लागत नहिं करहुँ, उर-कपोल मय कारे ।
 कंबुकि नहिं सुखत गुनु सजनी । उर-विष बहत बनारे ॥
 सूरदास मनु अंजु बघी है, गोपुल नेहु पवारे ।
 कहै लीं कहीँ स्वामजन सुन्दर बिकल होत प्रति मारे ॥
 प्राचार्य सुखत डाटा सम्पादित ‘अमर पीत सार’,
 पृष्ठ १२४, अनुर्भ पत्रोपिहित बंकरल

२ ‘यहाँ उनका ध्यान प्रबलरामकूल पदों के लिए समयानुकूल राधों को चुनना ही था। यही कारण है कि ‘उठे नखलात सुनन बननी मुख बानी’ यह पद ललित में बीबा गया। समय की दृष्टि से यह प्रातःकालीन सन्धिप्रकाश राग है, अतः सूर ने अपने पदों के विषय के अनुकूल ही राधों का अवन किया है। सूर्योदय के परबालु कृष्ण बोधारण्य के लिए बन में जाते हैं। इस प्रबलर से सम्बन्ध रखने वाले अधिकांश पर सूर ने बिलावल राग में बीये हैं। आजकल भी सन्धिप्रकाश राधों के परबालु बिलावल धीरे उसके विभिन्न प्रकारों के पदों बनने की प्रथा है। दौपहर के समय कृष्ण के लिए साक भेजी जाती है बन में सब गलात-गलात मिलकर डाक जाते हैं। इस प्रबलर से

पुष्टि मार्ग में जागृत् की लक्षणा मन्त्रि का विधेय महत्त्व है । नर भक्ति में कीर्तन नर बस इत कारण अधिक दिवा जाता है कि संगीत में लगभगता प्रदान करन की बीछी पक्ति है बीछी इतर साधना मे कम ही विद्यायी देती है । १ संगीत की शुम्भकीय पक्ति से तिष्ठकर मरुत का हृदय अपने उपान्त्य देव की भक्ति में एक तान एक ताल और एक सय हो जाता है । सूर ने अपने पदों की रचना नहीं की वे तो अपने ममबानु के नाम धुष सीसा नाम घादि का आरमबिभोर होकर यद्योपान करते हैं । २ इन गान में उन्हें बीछी धानग्वानुभूति होनी है बीछी अब तप और तीर्षत्वाना में भी उपसम्प नही होती । ३ हृदय की रोमस भावनाओं की अभिम्पवित में गीत-दीप्ती कितनी ससम है इसका प्वलन्त

सम्बन्धित प्रविकारा यह सारंग्य राग में है । मध्याह्न के रागों में सारंग्य एक प्रमुख प्रकार है ।”

डा० विश्वम्भर नाथ बट्ट का 'रक्षि' में प्रकाशित
'हिम्बो भीतिराज्य में सूर, तुलसी और मीरा शीर्षक'
निबन्ध पृष्ठ-३२ (दिल्ली कावेज मेगडोन १९३२)

- १ "इन प्रकार पुष्टिमार्गीय भक्ति-व्यङ्गि में धारती और कीर्तन की नर म्परा के साथ लक्षित का भी सारंग्य हो गया था । इस बुष्टि से भी सूर की रचना गेय होती आचार्यक थी । इन्हीं कारणों से हमारे भाषुक भवत कवि ने अपने नार मीत-दीप्ती में ही प्रकट दिवे हैं । काव्य और संगीत का बीछा सारंग्य सूर के पदों में मिलता है अता प्रत्यत्र दुर्लभ है ।”

डा हरबंस साज धर्मा इत 'सूर
और उनका साहित्य पृष्ठ-४२७

- २ "सह विधि आगम विचारहित तन्में सूर समुत लीला नर गाने ।”
भाषिती प्रकाशिलो तामा द्वारा प्रकाशित 'सूरसंगर' प्रथम स्कन्ध
पृष्ठ १ चरमत्या २
- ३ "ओ सूर होत दीपानदि गाने ।
सो सख होत न अप-तप बीगरे कोटिब तीरथ म्हारे ।”

श्री द्वितीय स्कन्ध पृष्ठ ११६ पर संख्या ३४९

कृष्ण मति वाखा

प्रमाण मूर के अक्षर पर है। उनही वीथ वींकी का मनारमता मे सभी धामा-
बकों का भाषणित किया है। धामाय मुक्क का अक्षर है कि मूर-सागर म
कोई राय या रागिनी छूटी न हायी। इमने बह मवीत प्रमियों के लिए भी
बड़ा भारी सज्जाना है।^२ भीयुत मुधीराम धामी ने भा यही कहा है कि 'इस
पायन में एसी कौन सी रागिनी है जो 'मूर सागर' में न घायी हा।' बहा जाता
है कि मूर क गान ऐसे राग और रागिनीयो म है जिनम स कुछ के ता लक्षण
भी अब प्राप्त नहीं है। ऐसे राग रागिनीयो या तो मूर की अपनी मृष्टि है या
अब उनका प्रचार नहीं है।^३

इस धामोचनाओं का मार संबंधा एत्य है। इमने अन्देह नहीं कि बिना
प्रधान कल्पना और धावरपहीन भाष-सौम्य को संघोत से गमबेन करने ही-
मूर ने अपनी वैयक्तिक रागात्मक कृति का उदात्तीकरण किया या बिन्दु यह
कहना मपार्य नहीं कि 'मूर सागर' में कोई राग रागिनी छूटी नहीं है। उदाहरण
के लिए 'मरपरदा' 'सावगीरी' 'मोमक' जैसे रागों का नाम लिया जा सकता
है। इन रागों की रचना धमीर कुमरो द्वारा चौदहवीं शताब्दी म ही हा गयी
दी। मूर द्वारा प्रयुक्त ऐसा कोई राग नहीं है जिसे धाम ने कुशल मपीलन न
कामते हैं तथा उनके द्वारा किसी लवीन राग की उद्भावनता के सम्बन्ध म भी
कोई ठीक प्रमाण उपलब्ध नहीं है। हाँ मस्तार क विभिन्न प्रकारों में मूरदासी
मस्तार नामक एक राय ऐसा प्रचार्य है जिसे मूरदास की द्वारा निर्मित कहा

१ 'चितनी लक्ष्मता के साथ मूर ने विभिन्न गेय धर्मों का प्रयोग किया है
जतनी सफलता के साथ अन्य कोई कवि नहीं कर सका है। उनके
पदों की संगीतात्म्यता सद्यतोनाबेन स्तुर्य है। उनके समस्त पद
संघीतमय हैं। प्रत्येक पद के साथ उद्यमे प्रयुक्त राग के नाम का
अन्वेष इस बात का प्रमाण है।'^२

डा० हरबंश लाल धामी द्वारा
'मूर और उनका साहित्य'
पृष्ठ-४२८

२ 'मूरदास' पृष्ठ-२०० दृतीय संस्करण
३ 'मूर-सौरभ' पृष्ठ-३०३ दृतीय संस्करण

जाता है ? किन्तु सूरमहाराज का निर्माता प्रसिद्ध कवि सूरदास से भिन्न कोई अन्य व्यक्ति भी हो सकता है ? फिर भी इससे सूरदास की महत्ता में लक्षमात्र भी घटार नहीं आता । हिन्दी में कृष्णकाव्य बाण का अरमोत्कर्ष सूर के पदों में ही दृष्टिगोचर होता है । यह सूर के पदों का ही आकर्षण है कि उनके बाद भी लगभग ४०० वर्षों तक ब्रजभाषा ही मीतिकाव्य की प्रमुख साहित्यिक भाषा बनी रही ।

अष्टछाप के कवि

अष्टछाप के सभी भक्तों ने पद लिखकर तत्कालीन गीतिकाव्य परम्परा में योगदान दिया किन्तु जो क्वाथि सूरदास को भिन्नी बहू अन्य किसी को नहीं । सूरदास के परचात् परमानन्ददास और चतुर्भुजदास का नाम भी उल्लेखनीय है । परमानन्ददास जी के किसी पद से बल्लभाचार्य के आलम्बिभोर हो जाने की बात सुनी जाती है । तथा रामसेन का गोविन्दस्वामी से प्रभावित होने का भी

१ अष्टम्य आचार्य भारतवर्षी कृत 'हिन्दुस्तानी संगीत कथति कथिक
दुस्तक मालिका भाग ६ पृष्ठ-२४३
'हो राम बल्ल सूरदासानी निर्मातु केना धर्ते म्हात्तात् ।

२ "श्रीराम का कोई विशेष प्रामाणिक कृत न पाकर उपर कुछ श्लोकों में
सूर के समय के आसपास के किसी ऐतिहासिक लेख में कहीं कहीं
सूरदास का नाम लिखा है वहीं का कृत प्रसिद्ध सूरदास पर घटाने
का प्रयत्न किया है ।"

आचार्य दुकल कृत 'हिन्दी साहित्य का इतिहास'
पृष्ठ-१५२, संस्करण १९९९

३ "कहते हैं कि इनके किसी एक पद को सुनकर आचार्य जी कई दिनों
तक तन बदन को तुमि धूने रहे ।"

आचार्य दुकल कृत 'हिन्दी साहित्य
का इतिहास' पृष्ठ-१९९
संस्करण संवत् १९९९

अ-मल्लि प्राणा

उल्लेख मिलता है।^१ बाह्य संगीत की दृष्टि से ही नहीं आन्तरिक संगीत की दृष्टि से भी अष्टछाप के कवियों की भाषा संगीतमयता से घोरप्रभण है। प्रासो-बद्धों न इन कवियों के गेय पदों की भाषा में तय घोर संगीत के बिना सुन्दर समय की घोर संकेत किया है वह प्रम्यया नहीं है।^२ इन्द्र-नाभ्य-पारा के मत्तों ने राधा इन्द्र की मल्लि में किमोर होकर गीतिकाम्य की बगवती निर्म-रिणी प्रवाहित कर दी थी। इस साक्षा में अनेक ऐसे पायक हुए जिनकी रच-कार् हिन्दी-गीतिकाम्य-परम्परा में अपना विद्युत् स्थान रखती है, किन्तु रीति-काल से पूर्व तक हिन्दी-गीतिकाम्य-परम्परा पर विचार करने के लिए यही स्वामी हितहरिबंध मीरसाई घोर स्वामी हरिदास का उल्लेख पर्याप्त होगा।

स्वामी हितहरिबंध

राजावस्थायी सम्प्रदाय के घास प्राचार्य गोस्वामी हितहरिबंध की रच-नाओं का मायुर्व इतना बढ़ा-बढ़ा है कि इसी विद्येपता के कारण उन्हें मगवान् इन्द्र की बंधी का अवतार माना जाता है।^३ 'हित चौपटी नामक इनकी एक

१ "ये कवि होने से अतिरिक्त बड़े पक्के पंडित भी थे। तानसेन कभी-कभी इनका भाषा सुनने के लिए प्राणा करते थे।"
प्राचार्य गुरुल इन्द्र 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' पृष्ठ-२०१,
संस्करण संवत् १९९९

२ "अष्टछाप का तयमय सम्पूर्ण नाभ्य गेय पदों में लिखा गया है घोर धीमाव की के समस्त इसरा कौर्तन भी होया स्वाभाविक है। रज्य रागिनियों के स्वर घोर ताल में बँधी हुई बाबावती तयपुत्र होनी ही चाहिये। संगीतमयता के गुण की बृद्धि अर्थों की सैत्री तथा भाषा-गुहल प्बलि वाले अर्थों की योजना से भी होती है।"
डा० बीमदयानु मुन्ड इन्द्र 'अष्टछाप घोर बलन-सम्प्रदाय'
(भाष-२) पृष्ठ-७११, प्रथम संस्करण

३ प्राचार्य गुरुल इन्द्र 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास,'
पृष्ठ-२०३, संस्करण संवत् १९९९

ही रचना प्राप्त है जिसमें विभिन्न १४ रागों में ८८ पदों की बर्णना है । इन १४ रागों का प्रयोग हितहरिबंध के समसामयिक अष्टछाप क कवियों ने भी किया है तथा आज के समीकत्रों के लिए भी ये राग महीन नहीं हैं ।

मीरा

मीरा की मातुर्य भावना तथा भाव-विह्वल चारमसमर्पण ने उनके मगधुद्विच्छ में ऐसा आकर्षण ऐसी मारकता और ऐसी प्रमादोत्पादकता भर दी है जिसके कारण हिन्दी-गीतिकाव्य-परम्परा में मीरा के पद निबिबाह रूप से धीरे-स्वान प्राप्त कर लेते हैं । मीरा की ही अपार लम्पयता नारी-हृदय की छद्मद्विच्छ-आवरण स्वानुभूति निरूपक प्रमोदगारों की तरलता और रामानुमान्तिक की अमोक्षर्पता अत्यन्त दुर्लभ है । मीरा के विरिपर नामर उसके पति से अभिन्न हो गये व २ फमत उसकी वैपत्किता भारतीय नारी-भाव के हृदय की भाव विह्वल पीड़ा की सखी अनुभूति और नैसर्गिक अभिव्यक्ति बन गयी है । यही कारण है कि भारतीय नारी-समाज में मीरा ने जो आकृषियता प्राप्त की है

- १ १४ रागों के अन्तर्गत ८४ पदों का विवरण स्वयं हितहरिबंध की अथवा उनके किसी शिष्य ने एक कवित्त में इस प्रकार किया है—

छे बर विभास मीक, सात हैं बिलावल म
 टोड़ी में अतुल, आसावरी में हूँ बने
 सत हैं घनापी में बुनल असात कलि
 बैचबंवार पंच दीप रस सीं लने
 सारंग में वीरगा हूँ चार ही अनाद, एक
 गीत में गुहापो, नव घीरी रस में भने
 पद अस्याल निबि बान्हरे कैदार बेद
 बानी हिन बु की सब चीदह राय में गने ।”

को हिन अतुरात्री सेवक बाली (की बुनारन घाय, हिलाय-४४६)
 पृष्ठ ७०-७१

- २ “मेरे तो विरपर गोपाल, दुसरो न कोई
 जाक तिर मोर मुकुट मेरो पति सोई ।”

‘मीराबाई की अवाजनी, पृष्ठ-३

मृनीय संस्करण (हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रकाश)

बहु धीर विभी को प्राप्त नहीं मिल सकी । गारी-हृदय क मासिक उद्गारों की पून परिपति मीरा में ही परिष्कृत होती है । उनके अन्तर्गत की यह अभिव्यक्ति भावना न पूर्ण निरलेख नहीं है परन्तु आत्मन्य की असीमितता के कारण मोरा की सहजामूर्ति का उदासीकरण कुछ ऐसे सहजिन रूप से हो गया है कि उसको आत्मविस्मृति निसनोत्पत्ता भावावेश आत्मसमर्पण प्रमोदभाद हृदय की बसक धारि धमी बाते मनुमूर्ति की टोस भाषार भूमि का सहज ही प्रतिबन्धन करके सोकोत्तर हो उठी है ।

संघीत की दृष्टि से मीरा के पद नहीं एक धीर सत्कामीय राष्ट्रीय संगीत क आचार को ग्रहण करते हुए पुरियासम्मान बागेयी दरबारी बौद्धिकता आत्मन्यमें जैसे रगों में बँधे हैं वही अनेक पद करारी सावनी इत्यादि लोक गीतों की धुनों पर भी रच पय हैं । अतः इसमें अन्वेह नहीं कि मीरा को संघीत का अन्वय जान था । वर्तमान युग के संगीतज्ञों द्वारा मन्हार राय के जो विभिन्न प्रकार करते जाते हैं, उनमें से एक प्रकार 'मीराबाई का मन्हार' शीर्षक से भी प्रकृत है । कहा जाता है कि मन्हार के इस प्रकार का निर्माण मीराबाई ने ही किया था किन्तु इस कथन का ठोस प्रमाण उपलब्ध नहीं है ।

संगीत की तन्मयकारिणी धक्ति से मीरा न पूर्ण मान उठाया । योत बाध मीर नृत्य इन तीनों को अपने अपने दृष्टिके साथ 'परम माव' के निर्वह का माध्यम बना लिया था । वह पम बृन्द बाध कर नाचता थी एकठाप या तानपुरे जैसे बाध से स्वरों को आचार प्रदान करती थी धीर अपने प्रम की पीड़ा को संकोच रहित होकर गीतों में इस प्रकार झल देती थी कि उस 'दरद दिवानी का दर्द सार्वजनीन बन जाता था । उनके मासिक गीतों का एक-एक शब्द भावना के आरत्य से आतप्रोत है । प्रत्येक पंक्ति के साथ बर उसकी भाव-विज्ञानता कमरा बढ़ती हुई अन्तिम पंक्ति में अमोत्कर्ष को प्राप्त हो जाती है । तब ऐसा प्रतीत होता है मानो प्रम भावना से बिभोर मीरा आकाशिक से सहसा मीन हो लगी हो धीर वही मीरा अपने विरिचर भायर को आत्मसमर्पण कर देती है ।

मीरा में पत्रि काव्य के भावपन का उत्कर्ष है तो कसावत की ग्युतता भी है । वह सबैत कसाकार थी थी नहीं । संघीत-नचा धीर काव्य-कसा दोनों ही की दृष्टि से यह बात अजरतः सत्य है कि कसा मीरा का साम्य न होकर साधना का माध्यम मात्र थी । उसकी अन्तिम भाव-भाषी अन्तिम थी धीर उनके हृदय के स्वप्न क्योंकि गीतों में साकार हुए प अत बिना इच्छा के ही वह कवयित्री थी कही-मुनी जान लयी थी ।

स्वामी हरिदास

स्वामी हरिदास की विस्तृत जीवनी के सम्बन्ध में इतिहास मौन है। अनुमानतः इनका प्राक्निर्वाण काल संवत् १९१७ के सममन माना जाता है। स्वामी हरिदास दृष्टी सम्प्रदाय के प्राधि पुरण हैं। सैद्धांतिक दृष्टि से वैठव्य सम्प्रदाय का इस सम्प्रदाय से पर्याप्त साम्य है।

हिन्दी-साहित्य के सभी इतिहास लेखकों ने हरिदास को उत्कृष्ट गायक-मण्ड मानते हुए उन्हें तानसेन का कुछ माना है और सभी ने प्रफुल्लित बारघाह का छय वैद्य में तानसेन के साथ इनका गाना सुनने की बटना का भी उल्लेख किया है। १ संपीठ की एक पुरतक में भी स्वामी हरिदास जी के मपार संगीत ज्ञान एवं तानसेन तथा वैद्व सहित उनके घाठ शिष्यों का उल्लेख हुआ है। २ घाठ भी संगीतज्ञ बुध्दायम निवासी स्वामी हरिदास जी का स्मरण बड़ी भडा मक्ति से करते हैं।

वस्तुतः मन्त्रिकाल के अनेक कवि ऐसे हैं जिन्होंने न तो कविता के लिए कविता की और न के कवि कहलाना चाहुत थे। कबीर की दृष्टि में तो पण्डित या कवि होना कोई प्रादरणीय बात भी न थी। ३ गूर ने भी अपनी मक्ति के

१ इच्छम्य

- (क) डा० रामकुमार शर्मा हुत 'हिन्दी-साहित्य का प्राचीननात्मक इतिहास' पृष्ठ-७१४
 (ख) डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी हुत 'हिन्दी साहित्य' पृष्ठ-१०१
 (ग) प्राचार्य सुबल हुत 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' पृष्ठ-२०८
 (घ) बाबू श्याम सुन्दर शाल हुत 'हिन्दी भाषा और साहित्य' पृष्ठ-४२०

२ इच्छम्य-'नाह विनोद प्रब' पृष्ठ ४३ ४८

३ 'कबीर के पाठ कविता के विषय में अनेक कहने को नहीं हो सकता क्योंकि कवि बनकी दृष्टि में कोई सम्भाव्य व्यक्ति नहीं था, और न विद्वान् ही उन लकी को के मना हुआ करते हैं क्योंकि इन्होंने अमर धारता को नहीं पहचाना, फिर भी उनकी लाली, सबही धीर रसनी कविता है। इतले दो शर्ते स्पष्ट होती हैं। प्रथम यह कि

कृष्ण-मूर्ति साक्षा

भाषेय में भगवान् की सीमा का गान किया है। यद्यपि उन्होंने किसी ग्रंथ तक पुष्टि मार्ग के प्रतिपादन और निर्गुण के लक्षण करने का उद्देश्य से भी अपने पदों को रचा है परन्तु उनके पदों का प्रायः जनकी मक्ति-भावना ही है। इसी प्रकार तुलसी यद्यपि काव्य-सास्त्र के पूर्ण साक्षा है और उनके काव्य में व्यक्ति मूल एवं सामाजिक जीवन के धारण की स्थानना भी प्रयत्नपूर्वक हुई है परन्तु काव्य उनके लिए भी भगवान् के गुण-गान का ही माध्यम है।

विक्रम की लक्ष्मणी घण्टाभी के मासपास जब इस धार्मिक मनोवृत्ति का ह्रास होने लगा तब बर्म की इस पवित्रता में विह्वलित उत्पन्न हुई। शृङ्गारिक मनोवृत्ति जैसे-जैसे बढ़ती गयी वैसे-वैसे मक्तिकाल की समुच्चय पवित्रता भी बासना के कानुध में लक्ष्मणी-घण्टा-तिरोहित हो गयी। मक्तिकाल में कृष्ण मक्ति घण्टा के कवियों में जिस वास्तव्य और माधुर्य भावना को प्रपनाया था उसमें भगवान् कृष्ण के जीवन का शृङ्गारिक पक्ष ही प्रबल था किन्तु इस मासपास माधुर्य के साथ उन्होंने प्राथमिक प्राकरण को भी ऐसी शृंगारिता से संभासा था कि शृङ्गारिक भावना उत्तर कर भी पगप नहीं पाती थी फलतः यह प्राथमिकता की सहायक बनकर ही रह जाती थी और बर्म की मर्बाबा प्रकृत्य बनी रहती थी किन्तु उत्तर मध्यकाल के कवि युग की बरबी हुई परिस्थितियों के कारण इस मर्बाबा की छात्रा न कर सके। युग-परिस्थितियों के कारण साहित्यिक मनोवृत्ति में जो परिवर्तन हुआ उसके कारण हिन्दी-गीति-काव्य-परम्परा का उत्तरोत्तर विकास बिच्छिन्न हो गया फलतः रीतिकाल में उसका ह्रास स्वाभाविक ही था।

रीतिकाल में गीतिकाव्य ह्रासोन्मुख ?

रीतिकाल में गीतिकाव्य के ह्रास को इमित करने वाली पहली बात पर

कबीर कविता को एक सीमित दर्ब में नहीं लेते थे और द्वितीय उनके समय में कविता केवल मनोरंजनार्थ ही होती थी।

‘कवि कबोले कविता सुए।

पोबी पड़ि पड़ि अप सुया, पंक्ति मया न कोइ।’

(कबीर की साखी)

दा० मालीरब मिश्र द्वारा ‘हिन्दी काव्य सास्त्र का इतिहास’

पृष्ठ १४०

परम्परागत धीर-शैली के रूप-आकार का परिवर्तन है। इस कथन का तात्पर्य यह नहीं कि रीतिकाल में पद लिखे ही नहीं गये प्रथम शीतों की उपर्युक्त परम्परागत शैली का इस काम में सर्वथा बहिष्कार कर दिया गया। इस काम में भी शर्तों धीर शक्तों ने पदों में प्रथमी भावनाओं को व्यक्त किया था। जमबीरन बुस्मा साहब खरनबास सहबो बार्ह, श्याबाई, हुसैनदास भीष्मा साहब पमट्ट साहब जैसे अनेक सन्त कवियों का प्राथमिक रीतिकाल में ही हुआ परन्तु इन कवियों में नबीर नामक दादू मुन्दरबास जैसे सन्तों की प्रतिभा भावों की प्रायः प्रथम पाण्डित्य परिलक्षित नहीं होता। नीतिकला के प्रभाव में एक ओर तो जो पद लिखे जा रहे थे उनमें वैसी प्राथमता धीर प्रथम-शैली नहीं थी दूसरी ओर जो कवि वस्तुतः कविकर्म के ज्ञाता थे उनकी कवि-सर्वियों की ओर इतनी आकर्षित हो गयी थी कि वे पद लिखन ही नहीं थे। सम्भवतः इसका एक कारण भक्तिकाल में पद-शैली का भगवद्भक्ति के लिए रुढ़िबद्ध हो जाना भी था। समय की रीति ने जब राधा कृष्ण का उपास्य कोटि से उतार कर सामारण मायक-नामिका के स्तर पर ला बिठाया तब राधा कृष्ण का स्मरण मात्र बहाना ही रह गया अतः रीतिकाल के कवियों ने पदों की पवित्रता को भगवान् के लिए सुरक्षित रखना ही उचित समझा धीर लौकिक उपासकता की प्रतिभक्ति के लिए कवित्त-सर्वियों के माध्यम को ग्रहण किया।

हिन्दी-साहित्य के प्रथमता का ध्यान उपर्युक्त परिवर्तनों की ओर जाये बिना नहीं रह सकता क्योंकि यह परिवर्तन रूप-आकार (फॉर्म) का परिवर्तन होने के कारण पर्याप्त स्पष्ट है। संगीत की दृष्टि से इस परिवर्तन का धर्म केवल यह है कि भक्तिकाल में पद रचना के साथ संगीत के बाह्य विधान का जो सम्बन्ध अनिवार्य रूप से जुड़ा हुआ था वह वही धारण कर लिया जा सकता है किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि कवित्त-सर्विये गेय नहीं हैं। यदि कोई नामक चाहें तो उन्हें स्वैच्छानुसार किसी भी राग में बाँध कर ठान स्वर के साथ गा सकता है। ऐसा करने में उनके परिवर्तित रूप-आकार के कारण विषेय बटिआई भी नहीं होगी अतः धीर-शैली की दृष्टि से संगीत के इस बाह्य विधान को एक अनिवार्य प्रतिपक्ष के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता।

एक बात धीर भी है। पद-साहित्य की यह परम्परा रीतिकाल में तो पड़ी बट्टन उपासक भी है किन्तु धार्मिक युग में भार्गवदास बाबू के परवान् सत्य नारायण 'कविकर्म' ही प्राचीन पद-शैली के अतिरिक्त अनुपासी दिशाया देने हैं।

उनके बाद पद-माहित्य का सिक्का जना बन्द-सा हो गया। इधर टिबेटी-युग में सुधारवादी धीरे राष्ट्रीय गीतों का प्रणयन हुआ और छायावादी युग में तो बहुत ही सुन्दर गीतों का निर्माण हुआ किन्तु ये गीत भी बाह्य संगीत विधान और पुरानी पद-रैती के बिनदूष हैं। यद्यपि कवियों के परिवर्तन को प्रात्यक्षिक महत्त्व प्रदान करना समीचीन नहीं है, क्योंकि कविता में धार्मिक संकीर्णता का महत्त्व भी कम नहीं है। रूप-भाषा के ऐसे परिवर्तन तो प्रायः होने ही प्दत हैं। साहित्य की अन्य विधाएँ भी ऐसे परिवर्तनों से रहित नहीं हैं। प्राचीन नाटकों और अर्वाचीन नाटकों में रूप-भाषा का भेद स्पष्ट है। वर्तमान बहानी प्राचीन बहानी से बिल्कुली भिन्न है। और मात्र कामायनी को महाकाव्य मानने में भी कम ही लोग सकार करेंगे किन्तु प्राचीन महाकाव्य के बिल्कुले लक्ष्य उनमें उपलब्ध हैं? यद्यपि मात्र भाषा प्रचार के परिवर्तन से कीर्तिकाम्य की विधा में तात्त्विक अन्तर उपस्थित नहीं होता। मौनिकाम्य का प्रायः वैयक्तिकता ही है और इसके साथ त्रिषु संगीतात्मकता का समावेश होता है बहु धार्मिक बाह्य धमका दोनों प्रकार की हो सकती है।

हिन्दी-कीर्तिकाम्य की परम्परा के अध्ययन से यही पता चलता है कि गीतों के रूप-भाषा में समय-समय पर परिवर्तन होते रहे हैं। बिनाम की घाठनी गताष्टी में सिद्धे को गीत मिलते हैं उनमें प्रायः एक का समावेश दृष्टिगोचर होता है। किन्तु इस समावेश के कारण उनके मेमबल की हानि नहीं होती। चाहे पत्रकार पत्रों में एक का प्रयोग भी होने लगता है। इसके अतिरिक्त अर्थों और अर्थों द्वारा किसी पर के रूप-रिची रात का नाम मिल दिया जाने का यह अर्थ नहीं है कि राम-नाम-निर्देश द्वारा त्रिषु संगीत का पद में समावेश किया जा रहा है उसकी बारीकियों का पद-रचयिता को अनिश्चितता पूर्ण ज्ञान भी है। अन्तर्गत अर्थों का राग प्राप्त-काल में नहीं गायेगा किन्तु कहा जाता है कि नियम भंग करके गाना साधुओं की एक विशेषता है २ यद्यपि निष्कर्ष

१ इस सम्बन्ध में विद्यापति के पद इच्छेय हैं।

२ साधुओं के सम्बन्ध में कहा जाता है —

“सोम को राग सकारे मारै । ली लोपु मोरे मन मारै ।

अर्थात् साधुओं लीतों का अपने अर्थों का अनिश्चित रूप से जान करना उनको एक विशेषता ही समझी जाती है।”

की परमुराम चतुर्वेदी हृदय 'सन्त काव्य' पृष्ठ-११०, प्रथम संस्करण

वही निकलता है कि इन सन्तों और भक्तों को व ठो काव्य की किसी विधा से मेलनब या धीर न ये संगीत-शास्त्र के बाह्य-बन्धनों से बंधे हुए थे। हाँ उनमें एक ऐसी मस्ती घबराह थी जो प्रतिभा-सम्पन्न वाक्क में बग्यबाज हुआ करती है और इसीलिए वे संगीत की धोर धाड़ष्ट हो बने थे। उन्होंने अपने उद्देश्य की सिद्धि में संगीत की धारस्मकता और महत्त्व को समझ लिया था परन्तु उनकी स्वातन्त्र्यपरक अभिव्यक्ति विभिन्न राज-राजिनिधियों में बिलर बनी थी।

संगीत और काव्य के सम्बन्ध पर विषेय ध्यान रीतिकाल में दिया जाने लगा और धाने चलकर जब छात्रावादी युग में हिन्दी-गीति-काव्य पारम्परिक गीतिकाव्य की विधा से प्रभावित हुआ तब उसमें भी प्रत्यक्ष-गण की अभिव्यक्ति के लिए बाह्य-संगीत की अपेक्षा आन्तरिक संगीत को अधिक महत्त्व मिलने लगा।

रीतिकाल में गीतिकाव्य के ह्रास का एक कारण राजात्मक धनुभूति में वैयक्तिकता सचाई और ईमानदारी की कमी थी है। भक्तिकाल में धनु भोपासकों की भक्ति-सम्पन्न विह्वलता और निर्भ्रुकोमासकों की रक्षक भावना के कारण वैयक्तिक धनुभूति की राजात्मकता अपने सहज और निष्कण्ठ रूप में अभिव्यक्त हुई थी, परन्तु रीतिकालीन वर्तमान में उन्मुक्त जीवन की निर्भ्रु बंधित बहुलवाक्यानिवेशित हो बनी थी। इसमें सम्येह नहीं कि शृङ्गार की मादकता गीतिकाव्य के बहुत ही अनुकूल है। गर-गारी के पारस्परिक स्वाभाविक आकर्षण के फलस्वरूप जो भावनाएँ उद्भूत होती हैं वे तीव्र भी धपिक होती हैं और बहती थी। इसीलिए बिरद-साहित्य का तीन-बीचार्थ माय शृङ्गार परक ही है और संगीत तो है ही मन्थन का प्रबलत किन्तु रीतिकालीन स्वर-विहार में एकैमुक्त श्रेय के अभाव और रतिकता के प्राचुर्य के कारण रति भाव में बहु बहलाई और उन्मी उपारमकता नहीं या लकी थी तीव्र वैयक्तिक राजात्मक धनुभूति के निरतिधय स्वरूप में समर्थ हुआ करती है।

धार्मिक और राजनीतिक बड़ता से संतस्त रीतिकालीन कवि स्वतन्त्र व्यक्तिक दृष्टिकोण धनाने में अक्षम थे। अपनी धनुभूति को तीव्रता प्रदान करने के लिए कवि जब तक जीवन और बयत के प्रति स्वतन्त्र और स्वतन्त्र दृष्टिकोण नहीं धननाता तब तक उसकी अभिव्यक्ति में उन्मुक्त प्रवर्धनगुना नहीं प्राती किन्तु वहाँ कवि अपनी काव्य-प्रतिभा को बेचकर धीरिकोपायन के लिए ही उसका शृङ्गार कर रहा हो वहाँ स्वतन्त्र और स्वतन्त्र जीवन दर्शन के लिए खान ही वहाँ रह जाता है? रीतिकालीन दरबारी वातावरण विनाश की रबीधो ने अत्रयता रहा था परन्तु उन पुन के कवि ने जब धाने धामय

दात्राओं की मनस्फुटि क हेतु अपना स्वर-संग्रहण किया तब उसमें विभाव की उरम मारवता तो थी किन्तु न तो प्रभुभूति की तीव्रता का मारक या घोर न हृदय की स्निग्धता ।

राम्य-संरक्षण के दृष्ट्युक्त रीतिकामीन कवि का मस्तिष्क कलात्मक सीमर्य के मूजन की घोर आकर्षित होना स्वानादिक या । मुसल मन्त्राओं के अपार बंधन घोर उन्मुक्त विभावप्रियता न रीतिकाम में ममी कलित कलाओं पर गहरी छाप डाली थी । काम्य घोर संपीठ तो य हो बरबारी मनोरजन घोर विभाव-भावनाओं के जहीपक अत बिम प्रकार सुगीठ अपनी धूपर-सीमा की विराट् मरिदा से हृतीरव्य हो कर इस काम न लयान-भावनी क कलात्मक कालित्य में परिषठ हो गया था जसी प्रकार काम्य का धारण भी अत्र पहले पैसा नहीं रहा था । कलिकाल की स्वामादिक प्ररवा के स्थान पर अत्र कलात्मक ज्वरेरव की लक्ष्य बनाते हुए दात्रों को चुन-चुन कर ऐसी पद-रचना की जाती थी जो अर्थ की विमलमगता से मोतप्रोत थी घोर बिने सममने के लिए बुद्धि घोर विद्वता की अनिवाय आवश्यकता थी । १ छन्द घोर विगल का ध्यान सावधानी से रखा जाता था । छाप ही गुण अलंकार, ध्वनि इत्यादि पर भी जोर दिया जाने लगा था । इन कलात्मक विभेपताओं की आवश्यकता इस कारण घोर भी बढ़ गयी थी कि इनकी लहायता न पद-रचना में एक प्रकार का ऐमा संपीठात्मक प्रबाहू भा जाता था जो हृय घोर प्रममता प्रदान करते वाला था । २ अपने मूल रूप में छन्द घोर सपाठ की लय (गति) बस्तुत एक ही

१ "मूजन की अगल मुसल एक ताजों वाली
तोएन अमल विधि बुद्धि है अबाहू की ।"

पण्डित उमापकर शुक्ल द्वारा सम्पादित 'कवित्त
रत्नाकर' (सिनापति हृत) पहली तरंग, कवित्त
संख्या-६ पृष्ठ ३ प्रथम संस्करण

२ "राकति न दीर्घ बाँव विगल के लक्ष्यन कीं
कुप कवि के जो उपकृष्ट हो बतति है ।
जोए पद नन कीं हृदय उपजावति है
तजै की कमरलें जो छंद सरतति है ॥"
वही पृष्ठ-३

वस्तु के ही नाम हैं। कोमल धर्मों का जगत् प्रयत्नपूर्वक कठोर प्रथमा श्रुति कट्ट धर्मों का परिव्याज भाष्य युग के प्रासेप तथा संयुक्तधर्मों और सम्भे सम्भे समासों से बचने की प्रवृत्ति ने रीतिकाल की भाषा में उन्नत संगीत-रमकटा का प्रासेप समावेश किया। ये सभी विशेषताएँ पारम्परिक संगीत में सहायक होती हैं किन्तु जनकार और कला-अवर्धन की युग में इस युग के कवि ने साधन को ही साम्य समझ लिया। जनकार भी किसी के शृङ्गार के लिए ही होते हैं, किन्तु यहाँ तो जनकारों की अकाशमय और माव युगों की ही प्रवर्धनी थी। युग जनकार इत्यादि की भाव-सौन्दर्य से निरपेक्ष छटा नहीं है, कला यह मनोवृत्ति भी गीतिकाव्य के ह्रास में सहायक हुई।

देव मतिराम बनारस इत्यादि उस युग के उन रस-सिद्ध कवियों में हैं जिनमें पारम्परिक धनुश्रुति की शैलि प्रामाण्य नहीं हुई थी परन्तु उनका कृतियों में प्रनेक ऐसे स्वतन्त्र मिस बाते हैं जहाँ समुदायश्रुति के पन से उद्भूत रस सागर को मनोरम उमिर्वा पाठक को साष्ट नुक्त में विभोर कर देती हैं। उनके कवित्त-सर्वेषों में भी संगीत की बँधी ही रूपरहाटी प्रकार है जैसी भक्तिकाशीन कवि रसजान के कवित्त सर्वेषों में सुनायी देती है।

छिद्र भी युग-परिस्थितियों से निर्मित कलाशीन अन्वित काव्य गीतिकाव्य की परिधि से बाहर हैं। युद्ध गीतिकाव्य की दृष्टि से उस युग में जो बोड़े से कवि और कवित्तियाँ हुईं उनमें नानदीवास समवेती मति जाया हित वृत्त-जन दास भगवत् रतिक पनामन्द, सहजोबाई, बयानाई, प्रताप बामा रतिक बिहारी युगभ्रमिया, प्रताप कुँवरि आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

हमारा अभिप्रेत गीतिकाव्य

गीतिकाव्य के नाम से ही यह स्पष्ट है कि संगीत का इतने अनिवार्य सम्बन्ध है। किन्तु हिन्दी-गीतिकाव्य-परम्परा में जितने पर-रचयिता हुए वे सभी अनि

१ "संगीत तो प्रगीत-काव्य के नाम से जाना हुआ है। शरीर रूप से यह उत्तक बाहरी आकार तथा आवाजितिक का स्वाभाविक व्यक्त्यन है। आवाजितिक के लिए बहाव चाहिए, यह साधारण रस में एक ता जाता है किन्तु गीतिकाव्य में तरंगित होकर यह घटता है।

तो निजी आवाजितिक उसकी धारणा है।"
 'काव्य के रूप' पृष्ठ-२, द्वितीय संस्करण

वार्ध रूप से संवीत के परिष्ठत नहीं थे। इसी प्रकार संवीत की परम्परा में बितने उत्कृष्ट वाद्यक हुए उन्होंने अनिवायंत पव रचना नहीं की किन्तु जैसे संवीतज्ञ न होने पर भी सोम बाते ही हैं इसी प्रकार कवि के लिए भी संगीतज्ञ होना अनिवार्य नहीं है। कविता में छन्द तब शब्दासंकार माधुर्य धोज धारि की विशेषताओं से जिस प्रबहमानता का सूजन होता है उमी का नाम प्रात्तरिक-संवीतात्मकता है। हृदय की वैयक्तिक तीव्र रामात्मरता जब संशोषरहित होकर धर्मों में मुञ्जरित होती है तब अपनी अभिव्यक्ति के लिए वह स्वभावतः ऐसे ही संवीतात्मक माध्यम को टटोलने लगती है। मोरा कबीर, स्वामी हरिदास धारि के पद हम कवन के प्रभाव स्वल्प उपस्थित किये जा सकते हैं। कवि या गीतकार के काव्य-कला-मर्मज्ञ होने पर तो वह माध्यम अपने प्राय ही कलापूर्ण होने लगता है। सुन्दरदास तुलसीदास धारि के पदों में इसी प्रकार वैयक्तिक रागात्मक अनुभूति कलात्मक माध्यम से अभिव्यक्त हुई है। गूर का धारिपत्य काव्य धीर संवीत दोनों ही पर था यत उनके प्रत्यक्षगत की अभिव्यक्ति भी यथा मर्मस्पर्शी है धीर कलापल भी सजस है। इसी वैयक्तिक रामात्मकता की कान्ति भूमित हो जाने के कारण केवल के कवित्त-सर्षियों में रगस्तान या बनान्त के कवित्त-सर्षियों जैसी रसात्मकता नहीं जा सकी।

यस्तु, मीतिकाम्य की पहली सर्त वैयक्तिक रागात्मकता की निष्कपट अभिव्यंजना है। ऐसी अभिव्यक्ति चाहे जिस छन्द में हो सकती है क्योंकि छन्द का धारण होते ही उसमें तब का समावेश हो जायगा। केवल पद के रूप-धाकार को लेकर यह कहना युक्तियुक्त नहीं है कि केवल परम्परायुक्त पदों में ही होता है इतर छन्दों में नहीं। बोहा चौपाई, हरिगीतिका सबेया कवित्त सभी में गेयत्व है। वर्तमान युव में भी कतिपय गायकों ने तुलसी की अनेक चौपाइयों को निम-निम रागों में बाँचा है।? किसी बोहे चौपाई धारि के ऊपर किसी राग का नाम लिखते ही (अर्थात् उसे किसी राग की बन्धित में बाँधते ही) उनका रूप-धाकार बरम्परायत रूप धाकार के निष्कट पहुँचने लगेगा।२

१ इदम्य—'राग-विज्ञान' के विभिन्न भाग।

२. प्रकाशस्वरूप 'गूर सापर' में ही ऐसे अनेक स्वल्प उपरुक्त किये जा सकते हैं जहाँ बोहे धीर चौपाइयों के ऊपर राग-वीर्यों का उल्लेख करके उन्हें पद-रूप में प्रहल कर लिया गया है। नामती प्रचारित्सी लजा द्वारा प्रकाशित 'गूर सापर' के दूसरे अक्ष में बिलावल राग के

यह रही भाषा की बात तो इसमें सन्देह नहीं कि विद्वान् हृदय से निकली हुई सच्ची पुकार सर्वत्र धपने धनुकूल शब्द और सब (छन्द) को लेकर निकलती है। इस भाषा का यदि काव्य-रूपा की दृष्टि से भी शृङ्गार हो जाय तो इसका धर्म नहीं होया कि समिध्यक्ति में जो सहज नैसर्गिक सुन्दरता भी उसे कलात्मकता के ऊपरी शृङ्गार से धीर भी धाकर्षक बना दिया गया किन्तु तीव्र वैयक्तिक रागात्मकता के प्रभाव में यह ऊपरी शृङ्गार केवल कृत्रिम शील्वर्य रह जायगा जिसका प्रभाव न तो मर्मस्पर्शी होना धीर न चिरस्थायी। रीतिक्रम कीन काव्य में ऐसी कृत्रिमता चिरल नहीं। अधिकांश काव्य ऊपरी धममगाहट से ही सम्पन्न है परन्तु वहाँ ये रंमोज्ज्वल लीने हृदय की तरल धावेन-कान्ति का शृङ्गार कर रहे हैं वहाँ छन्द चाहे ढोड़ा ही प्रथवा कवित्त या सर्वथा उसे रीतिक्राव्य के अन्तर्गत मान लेने में धापत्ति नहीं होनी चाहिए। वही कारण है कि रीतिकालीन कविता की प्रतीकारमकता के सम्बन्ध में साधारणतः लोग जिस कवित्त-प्रकृतित्त के श्रमे रास्ते से सोचते हैं उससे ही नहीं सोचती।

प्रस्तुत कृष्ण-२२ से १२२ तक 'दुसरी 'बुध नाम लीला' शीर्षक जो एक लम्बा पर दिया गया है उसमें ढोड़ा-धीपाई ही नहीं गीतिका भी उपलब्ध है।

० शोध-खण्ड

परिच्छेद-४

रीतिकालीन परिस्थितियों

रीतिकालीन परिस्थितियों

परिच्छेद-४

हिन्दी काल-विशेष की जसा अपनी युग-परिस्थितियों से अनिवार्यतः प्रभावित हुआ करती है। रीतिकाल की राजनीतिक सामिक एवं सामाजिक परिस्थितियों ने जिस प्रकार उस युग के साहित्य को प्रभावित किया था उसी प्रकार तत्कालीन संगीत-कला को भी विविध स्वरूप प्रदान कर दिया था। अतः उस युग के साहित्य एवं संगीत को समझने के लिए तत्कालीन परिस्थितियों पर विचार कर लेना आवश्यक है।

राजनीतिक स्थिति

संवत् १० • से लेकर १६ • तक का समय हिन्दी-साहित्य में रीतिकाल कहलाता है। इन दो सौ वर्षों में मुगल-बादशाहों ने बड़े-बड़े किलास और समृद्धि भी देखी तथा वे दिन भी देखे जब अपना पुरानी धान छोड़कर उन्हें घोंघों की हवा का मिठाई बन आना पड़ा।

संवत् १७ में शाहजहाँ दिल्ली के राज्य-निहासन पर बैठा। यह मुगल दरिमा के चरमोत्कर्ष का युग है। अपने पूर्वजों से प्राप्त बड़े-बड़े किलास और समृद्धि में विस्फोट परिचर्चन कर लिया था। दक्षिण में बीजापुर, पोलकुच्छा और यह मद नगर तक उत्तर पश्चिम में कन्नार और सिंग तक तथा पूर्व में सिमहट (घासाम) तक उसकी तृती बोल खड़ी थी। देश में पूर्ण शान्ति थी तथा राज्य कोष बम धान्य से परिपूर्ण था किन्तु शाहजहाँ यह कुछ अधिक दिनों तक न सोच सका। जिस प्रकार उदीयमान सूर्य मध्याह्न काल में अपने तेज की चरम प्रकृति प्राप्त करने ही बीरे-बीरे बनने भी लगता है उसी प्रकार मुगल ऐश्वर्य भी अब हाथो-मुह हो जाता था। नियति-बल के इस प्रयावर्तन को बड़े शाहजहाँ न अपनी निस्तेज शक्तों में देखा। दक्षिण में उपद्रवों का घोरान्त और पश्चिमोत्तर प्रांतों में मुगल-सेना की कराही हार इसी बात के सूचक थे कि अब मुगल-शासनाय के अधिन्य पर काल की काली छाया मँडरने लगी है।

संवत् १७१५ में साहजहाँ के रोमप्रस्थ हो जाने के कारण परिस्थिति और भी बिपन्न हो गयी। उन दिनों उसक पुत्रा में राज्य-सिंहासन के लिए कुछ धारणा हो गये थे। विनमस्त और बनता का हृदय-साम्राट् बारा कूटनीति में बपुर न होने के कारण धन प्रयत्नों में सफल न हो सका। उसे मौत के घाट उतार कर तथा धन पिठा को बर्ही बना कर औरंगजेब ने दिल्ली के राज्य सिंहासन पर अधिकार जमा लिया।

औरंगजेब के राज्यकास (मर्ग १७१३ से संवत् १७५४ तक) का समय और प्रस्तापि का युग है। भारत में बाटी बुन्देलखण्ड में और छत्रगाल और बलिया में महाराज विजयी के कारण मुगल-साम्राज्य की नींव हिल उठी थी। धन में बँस राजपुत्रों के कारण उदात्त हो रहे थे। इतर धर्मिक औरंगजेब की प्रविशोध की भावना नष्ट रही थी। वह हिन्दू-रीरस्थानों के बेबातकों को लोड कर नरिजरे गरी कर रहा था। हिन्दू-बिरोधी इस नीति के कारण हिन्दू धर्म के बिभिल समुदाय इमठ प्रतिकार के हेतु कटिबद्ध हो गये थे। फलतः बेबाद के उदनामी मगानुवापिदी हाठ औरंगजेब को मुँह की कानी पड़ी। बिल मुगल सेनबहादुर और गोबिन्दसिंह के बन्धों के साथ भी मुँस ध्यबहार हुआ उबके कारण गिरा बलि में धाबाया था किन्तु धनी उनमें इतनी धक्ति नहीं थी कि वे धनना प्रविशोध में सक्ते धतः प्रविहिगा की धान उनके हृदय में भी बबझने लपी थी। बनबन्तसिंह एवं निर्जा जयदाह जैसे मुगल-साम्राज्य के र्याक मरेयों की मूनु के परबाल औरंगजेब ने बयपुर कर धमिकार जमा लिया था फलतः राजपुत्राने में जो प्रविबिवा हुई वह भी औरंगजेब के लिए समक्या बन गयी।

औरंगजेब धन घामनराम के पुर्बान में पत्तर भागल और उत्तराई में बलिया भारत की राजनीतिक परिस्थितियों में ऐसा उमक्य कि फिर निरूप ही न नाता और मर्ग १७५४ में उसकी मृत्यु हो गयी।

मर्ग १७५४ से १२१४ बिजयी के बीच में औरंगजेब के बल उत्तरा विजयी रिष्नी के निहानन पर बीडे, किन्तु घामन-मूज संभामने की धमता इधमें ल रिगी में ल थी औरंगजेब के बीबन-बाय में जो बिरोड धारण्य हुआ था उनही मृत्यु के बरबाल वह और भी प्रबल हो गया। इतर मुपल सेना का धारुड और र्व धीब हो गया था धत जब संवत् १७२२ में नारिदगाह न दिल्ली पर धारमक कर धन जन की भारी शानि की लब मुगल-सामकों की रही सही धान भी किर्किरी हो गयी। राजधान की धया भी धण्टी न थी।

यहाँ के नरेशों की आपसी घूट-भूटी ऐंठ और बिसामी मनोवृत्ति ने उनकी एकि नष्ट कर दी थी। ऐसी परिस्थिति में किसी भी विशिष्टी एकि का भारत में अपनी जहाँ जमा लेना सरम था।

हुषा भी ऐसा ही। देश की इन अर्थव्यवस्था से विदशियों ने पूरा साम उठाया। भारत में व्यापारी बनकर धाने बाल प्रंप्रज और प्रसोषिणी धीरे-धीरे भारत के शासक ही बन बैठे। प्रसोषियों का अधिकार अतीव सीमित रहा परन्तु प्रंप्रजों ने साहू धामम और मराठों का भी परास्त कर, उत्तर भारत पर शासिकपरव स्थापित कर लिया। मुगल राज्य अब केवल कहन भर का शेष रह गया था।

आर्थिक स्थिति

देश की आर्थिक स्थिति भी इस समय अस्तोयजनक नहीं थी। जनता आर्थिक स्वतन्त्रता से रहित थी। किसानों को समान इतना अधिक देना पड़ता था कि मजदूरी से अन्धो फल होने पर भी उनके पास कुछ बचता न था। बेगार तो सामूहिक बात थी। बारदाह, धमीर, सामन्त आदीरदार सभी किसानों, मजदूरों और कारीगरों का कृम कृम कर अपने ठाट-बाट और बिसास की बहुमुख्य वस्तुएँ उठाने में सतम थे।

इस मुन में देश की आर्थिक स्थिति आर्थिक विगड़ गयी थी। इसे संभालन के लिए, शाहजहाँ ने राज-रुमचारियों को नियमित बैठन देना बन्द कर आदीर प्रजा शुरू की। राजनीतिक परिस्थितियों के कारण अब और-परदेब के युग में अर्थ-व्यवस्था और बिसही ठब एक ओर तो उसने आदीरदारों और सामन्तों से धन लेकर उन्हें कोई उच्च पद ब्रहान करना आरम्भ किया और दूमरी ओर खडिया कर सभा रिया। इस अर्थ-नीति से बुरही हानि हुई। खडिया के कारण हिन्दुओं में अर्थव्यवस्था और और-परदेब को बन देने के कारण सामन्त और आदीरदार अपने अर्थ-व्यय में कमी करने लगे। फलतः केन्द्रीय शासन निर्बल हो गया क्योंकि धमीरों सामन्तों और आदीरदारों का अर्थव्यय ही केन्द्र की एकि का स्रोत था।

सामाजिक स्थिति

ऐतिहासिक त्रिन राजनीतिक एवं आर्थिक परिस्थितियों का जल्सेक किया जा चुका है उनके आधार पर तत्कालीन सामाजिक बजा का चित्र भी बहुत

कुछ स्पष्ट हो जाता है। स्वूपरूप से उत्कृष्टतम समाज हिन्दू और मुसलमान इन दो बर्गों में विभक्त था। मुसलमान विजेता थे हिन्दू विजित। इस राजनीतिक पराक्रम ने हिन्दुओं के नैतिक विश्वासों को खर्ब कर दिया था। जिस प्रकार कोई व्यक्ति घर के बाहर बराबर अपमानित और घनावृत होने पर अपने घर की तुष्टि अपने ही परिवार के लोगों पर घासन और घातक बसा कर करने समता है उसी प्रकार उस युग का हिन्दू-समाज राजनीतिक क्षेत्र में पराजित होकर अपने ही बर्ग पर अपना हान्य प्रकट करके सन्तुष्ट होने का अछफल प्रयास कर रहा था। उसका वह घर पड़ोसियों के अधिकारों बेदमनों के सम्भारण सम्बन्धी मठभवा भाठि-पाठि सुभाषुत और बीके-बूहे की व्यवस्था में सीमित हो गया था। हिन्दुओं को जड़िया कर देना पड़ता था। तीर्थस्थानों के मन्दिर तोड़े जा रहे थे और उनकी जगह मस्जिदें खड़ी की जा रहीं थी। वे ही राजपूत जो कभी साम्राज्य के बुढ़ स्वम्भ थे अब घनावृत हो रहे थे। साहजर्ही के घासन-नाम के उत राबं म मुसलमानों की हिन्दू विरोधी जो नीति उभरन लयी थी बर्माण्य औरंगजेब के घासन-नाम में वह और भी तीव्रता के साथ बसकर घापने घायी। हिन्दुओं के देसि और उरसब सिपिड खोपित कर दिये गब थे उनके पुस्तकालय जला दिए जाते थे और विद्यालय मट्ट कर दिए जाते थे।

विजयी और घासक होने के कारण मुसलमान हिन्दू मात्र जो अपने से हीन सममते थे बिलु बिनाम ईर्ष्या द्वेष कलह, अनैतिकता जैसे अवनुर्गी के कारण मुसलमान भी पतनोन्मग थे। तिया और सुधी एक बुरे को प्टी घांन न देग गवत थे।

इन परिस्थितियों ने बिलाग और अनैतिकता की लव वृद्धि की। अस्तुन बेमन्य और बिनाम वा बोमी-नामन का घाय है। बल-देरबर्ब की घपिक वृद्धि प्राय मनुष्य को बिनामी बना देनी है और जब बिनाम निर्बाध पति से घाये बढ़ता है तब उनक प्रबाह में नैतिकता बह हो जाती है। राजनीतिक एवं घापिक बर्तिस्थितिया की बिपमता का सामना न कर सने के कारण मध्यम बर्ब भी धोम-बिनाम में ही गुण-बैज गोज रहा था। जहाँ तक उच्च बर्ब का प्ररन है घमोरों नामनों और जागीरदारों के सम्मुख गुण-बरबार क छटबाट घोर बिनामी जीवन वा घादर्मी जगिबन वा ही। मुसल-जेना क युद्ध में जाने पर भी जहाँ बरपाघों वा दन माघ-गाव बनना हो बढी युद्ध वा बातावरण न बनने पर घास्य ह्य क्या? वादिनी बांजन और वास्य वा बी भर कर

उपयोग उस युग का परम पुण्यार्थ था। राजा रथम सामन्त सभी इसी रग में सराबोर थे। उनके दरबारों में भी मुरा मुन्तरी के साथ शृङ्गारिकता मग्न मृत्यु कर रही थी। धीरे-धीरे की कट्टर धीरे धीरे समनगरपता भी बिना मिठा के इस प्रवाह को रोकने में समर्थ न हो सकी। उसकी मृत्यु के बाद तो कोई कुछ कहन-सुनन वाला ही न रहा। इन धार्मिक धर्मियों का उपहास करते हुए हिन्दू मुसलमान सभी पण्डित का भाग का पानी की तरह यम से नीचे उगारने लगे।

धीरे-धीरे के उत्तराधिकारियों ने विह्वल के लिए धनक मुद्रा धीरे धीरे प्रचलित हुए। इन प्रयत्नों में इस कपट धीरे धीरे मूर्खता का जो ताड़न हुआ उसका जन्म पर बढ़ा ही धार्मिक प्रभाव पड़ा। सब के लिए धनक प्रचारेण निज स्वार्थ प्राप्ति ही एक मात्र कर्तव्य-कर्म बन गया धीरे धीरे धार्मिक स्वामिभक्ति, त्याग इत्यादि की भावनाएँ हृदय से निरोहित हो गयीं।

रथम के भावी कर्णधारों धर्मार्थ सहजार्थ राजकुमारों धर्मका धनीर-उमर रावों के पुत्रों की समुचित शिक्षा की कोई व्यवस्था न थी। कर्मण य धनी निरपोषकता में ही बिगड़ जान थे। इनका सामान-यापन धर्मियों द्वारा होता था धीरे धीरे रथम के कुलधारों का इन पर प्रभाव पड़ता था। यही कारण था कि बड़े होने पर जब ये शासन-मूक मर्मन्त तब किन्हीं-न-किन्हीं वैस्या धर्मका रखस के बंधुल में भी कस जाते थे। ये स्थिति इनको इनकी मूर्ख सभी होती थी कि बड़े-बड़े सामन्त का धनमान कर बना इनके बाँट हाथ का खेल था।

धार्मिकता के धर्मका धीरे धीरे विनाशिता की वृद्धि में धार्मिकता छोड़ हो जाता है, धीरे धीरे धार्मिकता का धर्मका लोगों को धर्मका एवं धीरे धीरे धार्मिकता बना देता है। उस युग में समाज की यही मन-स्थिति थी। परिणामतः सभी का ज्योतिष पर धार्मिकता से धार्मिक धर्मका धर्म गया था। बिना धर्म-विचार के कोई बात ही नहीं होती थी। यह इस बात का प्रमाण है कि धार्मिकता के ह्रास के कारण उस समय किन्हीं धीरे धीरे धार्मिकता ही गयी थी। जब तक धार्मिक कर्तव्यनिष्ठ रखा है तब तक उसे धर्म पर धर्मका रखा है धीरे धीरे धीरे धीरे या धार्मिक को ही सब कुछ नहीं मान बैठता किन्तु जब वह धार्मिक धीरे से हटाया हो जाता है तब धार्मिक ही धर्मका धर्म का एकमात्र सम्बन्ध रह जाता है।

निम्न वर्ग की बच्चा तो धीरे-धीरे ही धर्म व्यवस्था में निरुत्थित थी। जिसे जो नाम मिलता धर्म की चिन्ता छोड़कर वह धर्म को करते हुए उदर

पूति में उत्तर हो जाता था। बगार करों के बोझ, राजपूती शत्रुघों की शूट से प्रजा की दशा बयनीय की दृष्टि पर अकास और महामारी ने तो लोगों को और भी निचोड़ डाला था।

राजा रईम सामन्त द्वारा रंगरेसियों में मस्त थे। अपनी विभात-वृत्ति को और भी अधिक उत्तेजना प्रदान करने की माससा से ही वे ललित कलाओं के प्रती एवं कवियों कायकों परवा पर्य कलाकारों के प्राययदाता बन गये थे। कवि और गायकों से भी वह बात छिपी न थी। वे यह भी जानते थे कि विभात की जिस सीमा तक वे सामन्त पहुँच चुके हैं, तथा जिस विभाती बाठावरण से वे लोग निरन्तर परिपेष्ठित हैं उसे देखते हुए शृङ्गारिणता की नितनी बड़ी मात्रा—कितना पहरा तथा—अपनी कला के व्यासे में आसकर उन्हें पिलाता है। एक तो कला विस ही शृङ्गारिणता के पकोस में बसती है फिर गिलोय और नीम बड़ी। अतः अपनी रोटी कमान के लिए कवियों और गायकों को अपनी कला द्वारा पुनः शृङ्गार की प्रवाहिणी प्रवाहित करन में कोई संकोच न था।

कवियों के सम्बन्ध में पाँडे यह बात उतनी बुझना से न शहो या तक किन्तु कायक तो प्रायः निम्न वर्ग के ही व्यक्ति थे जो अपनी कला क कारण राज-दरबार तक जा पहुँचते थे। इस प्रकार उन्हें उच्चवर्ग के व्यक्तियों के निकट सम्पर्क में आने का अवसर मिलता रहता था। निम्नवर्ग के संस्कारों के कारण वे लोग अतीव हीन भाव से सबकों के समान दरबार में उपस्थित रहते थे किन्तु उच्चवर्ग के सम्पर्क में आने से इनमें दम्भ और घाँकार बढ़ जाता था अतः अपने ही (निम्न) वर्ग के व्यक्तियों से वे इस प्रकार मिलते थे जहाँ वे उनसे बहुत अधिक ऊँचे हैं। इस प्रकार इनकी मनोवृत्ति बड़ी ही विचित्र हो गयी थी। फिर भी इनकी कला का धारण करने वाला उच्चवर्ग ही था। निम्न वर्ग के पास न तो इतना धन था और न इतना कला-बोही मस्तिष्क जो उन्हें धन का धारण प्रदान कर सकना किन्तु उच्चवर्ग से उन्हें पर्याप्त धन मिलता था। साहजिक ही दरबारी कायक उच्चवर्ग और दीर्घ था तो जारी में तोते गये क साथ ही प्रत्येक को ४१० रुपये पुरस्कार में भी मिले थे। १

१ इन्द्रधर-वाचार्थ भातवारे इत 'यु शोर्ट' हिस्टोरीकल सर्वे ऑफ़ दि म्यूजिक ऑफ़ इण्डिया,
पृष्ठ-२६ संस्करण १९३४

वहाँ तक पण्डितों धीर मीमंसियों का प्रबल है। ये सोच घपने घपने बर्म घास्त्रों को साक्षात् ईश्वर की बाधी मानकर उसपर पूरी आस्था रखते थे। कुचन को हिपत्र कर लेना या बेधों को कष्टाघ्न कर लेना इनके लिए भीरुत्व की बात थी। बर्मघास्त्रों की आत्माओं का ये लोग पक्षरूप प्राप्त करने से किन्तु इन लोगों ने जीवन के सामयिक प्रवाह के साथ प्राचीन बार्मिक साम्यताओं का सम्बन्ध कभी नहीं किया। सुबो-सुबो निर्धारित साम्यताएँ— जो उस प्राचीन काल में अपादेय भी धर्मत्व रही होंगी—सत्कामीन सामयिक प्रवाह से बहुत पीछे छूट चुकी थी। बर्म जिस धार्मिक धर्मि को सहज ही प्रदान करता है वह न पण्डितों को मिला रही थी धीर न मीमंसियों को। बार्मिक उदारता के धर्माव के कारण यदि एक के लिए कुचन ही सब कुछ थी तो दूसरे के लिए बेह-सुराज को छोड़कर घेप सब कुछ गहित था।

धर्मिगत लोभ आहु, टाना मन्त्र मन्त्र बग्गा ठाबीज इत्यादि पर पूरा विश्वास रखते थे। वत तीर्थ उपवास इत्यादि क द्वारा इन्हें परमोक्त-प्राप्ति की धारा बृह हो जाती थी। सम्य धीर भीरु तो जैसे हम लोक में मन्त्रागार से पार उठारते धीर सौमिक कर्तों से सर्वथा मुक्ति विनामे बामे टेकेवार ही थे। धीरों के तकियों पर स्त्री-मुस्य घपनी बनोकामनघों की निश्चित पूति की बृह धासा लेकर पट्टवत थे धीर लीयत ये बहों के भूतों द्वारा अष्ट होक ठने जाकर। प्रचार राम भक्ति का भी था धीर कृष्ण-भक्ति का भी किन्तु समुन्नत मस्तिष्क के धर्माव के कारण जनता भक्ति के मात्र बाह्य स्वरूप की ही देख-नुज-समझ सकती थी। भक्ति-भावना की उस वास्तविकता की समझना समाज के लिये कठिन था जिसके धापार पर मूर धीर तुमगी जैसे कवियों ने उमें ज्ञान से भी कहीं धर्मिक अँबा बर प्रदान किया था। राम-भक्ति की घपेसा बुध्य-भक्ति बुध-मनोवृत्ति के धर्मिक अनुकूल थी। उनमें जो मार्मं तथा सौकरंजनकारी ठरव था वह उस युग की धु वारिता के कहीं धर्मिक अनुकूल पड़ा। भक्ति का विभागपरक स्व-रूप उस युग में हमना रचिकर बना कि धामे बनकर राम-भक्ति में भी शृङ्गारिक भावनाओं का पुत्र बुध्तिगोचर हुआ। १ पीतिनुमीन मनोवृत्ति राधा-कृष्ण की इस शृङ्गारिक उपासना के बहामे बस्तुत घपनी विनामिता एवं इन्द्रियासक्ति की वृत्ति के लिए धर्मानुमोदित नैतिकता की घाह नै रही थी। मानव स्वभाव-

शुद्धारोम्मुस है विषय-आसना की धोर उसकी सहज बलि है। धर्म इस मनोवृत्ति को नियन्त्रित करना चाहता है, किन्तु जब धर्म की हो बुझाई देकर श्रृङ्गारिक मनोवृत्ति को वृष्ट करने की एक मोहक युक्ति हाथ लग जाय तब समाज—धीरे बहू भी अधिमित समाज—श्रृङ्गारिक उपासना का मोह संभरन नहीं कर सकता।

वैतन्य माख निम्बार्क इत्यादि सम्प्रदायों के अनुयायियों की भी यही दसा थी। वैतन्य सम्प्रदाय के कारण भक्ति-भावना में परकीया बाध समाहित हुआ किन्तु योग ही उसका धार्मिक स्वल्प विराहित हो गया एवं उसमें पाबिध धारकर्म ब्याप्त हो गया। कबिमम भी राजा-कृष्ण के नाम का बहाना लेकर कृष्ण-काम्य को कृष्ण-भक्ति तक ही सीमित न रख कर अतुल्यकर्म जब सिद्ध अष्टयाम एवं मायिका-भेद में उसका विस्तार करने लगे। अस्तम सम्प्रदाय के लोग पोसाई की (पुष्) को कृष्ण का स्वाभाविक मान कर पूजते थे। गोपी-भाव की उपासना को बस निमने के कारण स्त्रियों द्वारा इन पोसाईनों का पूजन घनाचार में सहायक हुआ। भक्तों के द्वारा प्रचुरता से बन-दान दिये जाने के कारण ये लोग सम्पत्तिपाती धीरे धीरे बित्तासी बनकर बनता को घूट ही नहीं रहे थे भष्ट भी कर रहे थे किन्तु अधिमित बनता की घास्वा फिर भी इनमें बनी हुई थी। मठ धीरे मन्दिर देव-शासियों के धुंभर्यों से मुचरित थे। अपने हृष्य की वितास-शियता को भयवान् के धिर घोष कर मच्छजन मुक्त काम होकर रख-मन्य थे। धर्म का यह धावार सर्वथा अस्वस्थ था।

कबीर, नामक बाबू इत्यादि निर्गुन जानामयी शाखा के अनुयायियों का दस पूर्व सगठित था। इस दम की घास्वा हिन्दुधर्मों के स्कूल ब्रह्मवाद धीरे मुसलमानों के एकेकरवार के समन्वय पर घाबृत थी। अकवारवाद का विरोध करते हुए ये लोग अधिभाष्य रूप से ईश्वर को एक मानते थे। ब्राह्मण अधिय, वैदय पूइ हिन्दू, मुसलमान धारि में भी ये भेद नहीं करते थे। धर्म के बाह्य बम्बर के ये विरोधी थे अतः मन्दिर, मस्जिद रोडा नमाज, बठ, उपवास तीबे इत्यादि में इनकी घास्वा न थी। संसार की ऐहिकता से तटस्थ रह कर ये लोग भारतमुक्ति एवं तत्त्व चिन्तन धार्मिक भक्ति धीरे त्याग को महत्त्व देते थे। यद्यपि इनमें भिन्न-भिन्न पन्थ थे किन्तु स्मृत सिद्धान्त धर्मों के एक थे।

मुसलमानों में भी इस प्रकार के पन्थ थे जिन्हें सिलसिला कहा जाता है। ये सिलसिल हिन्दुधर्मों के उपर्युक्त पन्थों के समान थे तथा इनकी बहुत सी बर्तों

पत्नों बीसी ही थीं। जदाहरणार्थ दोनों ईश्वर को एक मानते थे और गुरु ब्रह्मा और पर भी दोनों की समान ध्याना थी। दोनों को ईश्वर के प्रेम और संसार के ऐहिक सुखोत्पत्ती के त्याग की आकांक्षा थी। दोनों ही हिन्दू और मुसलमानों के पारस्परिक वैमनस्य को नष्ट कर देना चाहते थे। प्रस्तुत ऐतिहासिक इन्हीं विभिन्न परिस्थितियों के आलोक में उस युग की कला का अध्ययन अधिक फलप्रसूत हो सकता है।

कला प्रवृत्ति

इस नामाकरणात्मक अवस्था का जो प्रतिबिम्ब भावुक मानव पर पड़ता है उसे वह अपनी कल्पना और हृदय-रस से सम्पृक्त कर घनेक रूपों में अभिव्यक्त करता रहता है। कभी निच नीचकर कभी कुछ बुनगुना कर, कभी मूर्ति गढ़कर तो कभी कविता रचकर वह अपनी ऐसी ही प्रभुमूर्तियों का स्वस्वीकरण करता है तथा मानसिक वृत्ति प्रदान करने वाली ऐसी अभिव्यक्ति भी ही संज्ञा कला है। पर मुग-बिभ-वृत्तियों का बहुरा प्रभाव इन कलात्मक अभिव्यक्तियों पर पड़ता है। साहित्य और संगीत दोनों ही प्रमुख लक्षित कलाएँ हैं। तथा ऐतिहासिक काव्य एवं संगीत का पारस्परिक सम्बन्ध तो प्रस्तुत प्रबन्ध का प्रतिपाद ही है, यह साहित्य एवं संगीत सम्बन्धी उत्कामीन बिभ-वृत्ति के समुचित अभिव्यक्त के लिए प्रसंगबध्दात् ऐतिहासिक सभी लक्षित कलाओं की उत्कामीन ध्याना का अनुदीनन यहाँ उचित प्रतीत होता है।

वास्तु कला तथा मूर्ति कला

ऐतिहासिक के पूर्वार्ध में मुगल-शासनात्मक के ऐश्वर्य के चरमोत्कर्ष के साथ लक्षित कलाएँ भी अपने उत्कर्ष के चिखर पर जा पहुँची थीं। कला की कमनीय कल्पना ताजमहल इस बात का साबित प्रमाण है कि शाहजहाँ के युग में वास्तु-कला कितनी समृद्ध हो चुकी थी। आगरे की मोती भवनिच तथा दिल्ली का मानसिकता उत्कामीन मुग-प्रवृत्ति के साकार प्रतीक हैं। कमनीयता मनोरमता और धार्मिकता इस युग के स्थापत्य की ऐसी विशेषताएँ हैं जो उत्कामीन संगीत साहित्य बिभकता इत्यादि सभी लक्षित कलाओं में परिलक्षित होती हैं। अक्षर-युगीन कलागत मनोवृत्ति में विशालता से समाहित जो परिभा वृत्तियत होनी है उसके रचान पर यहाँ शीर्ष के साथ कोमलता नृमत्ता और रमात्मकता का समायोग परिलक्षित होता है।

किन्तु घाहूजहाँ ने यहि ठाढ़महस जैसी कलाकृति का निर्माण किया था तो अनेक पुठगाली मन्दिरोँ को बिम्बन्त नै कर दिया था । उसकी मूर्त्तु के पश्चात् श्रीरंगजेव की धार्मिक प्रसहिष्णुता ठी घौर भी नृपस रूप में प्रकट हुई । न जाने कितने मन्दिरोँ को छोड़-छोड़ कर उसने मस्जिदें बड़ी कीं । श्रीरंगजेव को ललित कलाधी के प्रति कोई प्राकर्षण न था । मानो उखे कला मात्र से द्वेष घौर लालित्य मात्र से शिङ्ग को । लंगीत को उसने बफनाया मूर्त्तियाँ बघने छोड़ीं, शिखकाठी को उसने मिटाया परिनामत उसकी बर्बरता काल-भान पर कर्मक-कसुप बन कर स्वायी हो गयी । श्रीरंगजेव के निधन के पश्चात् ठी मुगल-साम्राज्य का मध्य प्रासाद मरजय कर बैठने ही मन गया था । उसके उत्तराधिकारियों के पास इतना धन था ही नहीं कि वे स्वायत्त में कोई इशि सेवे । मनोमूर्त्ति मिदान्त स्पूल-मृङ्गारिक हो जाने के कारण जो कुछ धन था भी उसे वे वैयक्तिक सख-सुखोपभोग में व्यय करके स्पूल मीतिक सुखों का अधिक से अधिक उपभोग कर बालना चाहते थे । इसीलिए उनके द्वारा कोई उस्तेखनीय इमारत न बनी । घाहू धालम द्वितीय ने मुजराय में जो इमारतें बनवायी लन पर बँत-बालु-कला की पूरि काप है । मकमरु के गलाओं की इमारतों में भी कोई उस्तेखनीय बात नहीं है । अधिक से अधिक घासफजड़ीला के बड़े इमारतबाड़े का नाम लिया था सकता है जो भयनी विद्यालय के कारण प्रसिद्ध है । किन्तु इसमें भी पूर्ववर्ती मुगल-इमारतों की मकम ही अधिक दिखायी देठी है ।

मूर्त्ति एवं वास्तु-कला के इस ह्रास-काल में गराठों, शिखों घौर राखपूठों के द्वारा स्वायत्त को बोड़ा-बहुत सम्बल धनधन मिला । मराठों के मन्दिर

१ श्रीरंगजेव की बनवायी हुई इमारतों में अधिकोन्नत मस्जिदें तो मन्दिरोँ को छोड़कर बनी हैं । उनमें एक प्रकार की बर्बरता कलाई, तथा उजाड़पन था निर्वाहित होता है घाहूजहाँ के समय के मुम्बर स्वायत्त को उसने देता रूप दिया है, मराठी उसकी बाल शिखवा ली हो । उसकी इमारतों में कापी के रया लन पर बनी बहु मस्जिद है, जो किन्तु-माधव के मन्दिर को लीड़कर बनायी गई थी । यह धव भी कली "माधवराय का घौरहरा" के पुराने नाम से पुकारी जाती है । बकिल में उखने भयनी बेयन का मकमरा बनवाने में लाल की मकम की, पर जतमें कज भी सकलता नहीं मिली ।"

डा० इयान मुम्बर बल इत हिन्दी भाषा घौर लालित्य,

निर्माण में चाहे पुरानी सेसी का अनुकरण मात्र हो किन्तु उनके बनवाये हुए पाटों में बिधासता घीर मापीपन क जो बिरोपताएँ उपमस्य हैं वे उनही उस महत्वाकांक्षा का प्रतिनिधित्व करती हैं जिसने उन्हें अपनी स्वतन्त्र सत्ता प्रतिपादित करने की प्रेरणा प्रदान की थी। बनारस के सिन्धिया घीर मौसला घाट इस कथन के ठोस प्रमाण हैं। राजपूताने में भाम्बेर स्थित राजमहल तथा बीम में मूरजमल के भवनों में अलंकृत-सौम्य-शैलिक का निरूपण हुआ किन्तु सामूहिक रूप से बिचार करने पर इस काल में न तो स्वतन्त्र प्रतिभा का परिचय मिला है घीर न अनुभूतिमूलक वह मनोरम भावाभिव्यक्ति जिसकी निरलंकृत घोभा पर कुठि से मौक-मिचौसी खेसता हुआ धन अुपचाप मुक्त हो पाया करता है।

अपने धार्मिक बिचारों के कारण मुसलमानों के लिए मूर्ति-पूजा कुछ है पत. मुगत-शासन-काल में लक्षण-कला की बितनी उपेक्षा हुई उतनी सम्भवतः घीर किसी कला की नहीं किन्तु हिन्दुओं में मूर्ति-पूजा का प्रचार बराबर बना रहा। मन्दिर-निर्माण के साथ उनके लिए मूर्ति-निर्माण आवश्यक था। मन्दिर बनता ही किसी न किसी मूर्ति की स्थापना के लिए है फलतः तदाव कला की मुगत-शासकों द्वारा तो सम्भाव्य न मिला किन्तु हिन्दुओं के स्वा पत्य के साथ मूर्तिपूजा बनी धबस्य रही।

राजनीतिक सामाजिक धार्मिक अथवा अन्य किसी परिस्थिति के फलस्वरूप जब दो जातियों का पारस्परिक सम्पर्क स्थापित होता है तब दोनों ही पर एक दूसरे का सांस्कृतिक प्रभाव पड़ना अवरज्यवाची है। मुसलमान चाहे अरब घीर अरब से आय हों किन्तु जब वे वहाँ आकर बस गये घीर स्थापत्य के लिए उन्हें जातीयता की आवश्यकता हुई तब अनेक कारीगर अरब घीर अरब से नहीं आये थे। भारत के कारीगरों से ही उन्हें बहुत कुछ काम लेना पड़ा। फलतः उनकी वास्तु-कला में भी भारतीय संस्कृति की छाप—चाहे वह धार्मिक रूप में ही क्यों न हो—अवश्य पड़ी। इसीलिए राजमहल जैसी कला-कृति की सम्भवा ऐनी दिगायी देती है मानो किसी ने एक मनोरम मूर्ति ही नई ही हो। फिर भी मूर्तिपूजा इस काल में प्रायः विरमृत ही रही। मैसाल के हिन्दू राजाओं-द्वारा मूर्ति-कला की बौद्धावहृष्ट आशय मिला तथा गुजरात घीर उड़ीसा में भी इस कला का निर्बाह होता रहा तथापि बौद्धिकता का अभाव इस कला में भी बुरी तरह गटकता है। दीर्घमन भाव-शैलिक न होने के कारण इस काल की मूर्तिपूजा में निप्राण परम्परा-धामन के परिचित घीर कुछ नहीं है।

चित्रकला

भारत में मुगलों के शासन के साथ भारतीय एवं फारसी चित्रकला का पारस्परिक आदान प्रदान हुआ। आरम्भ में निश्चय ही फारसी शैली का प्रा-
धान्य रहा किन्तु बर्होवीर के युग तक घातें-न-घाते वह प्रभाव प्रायः तिरोहित
सा हो गया। फारसी चित्रकला इस काम में आकर भारतीय चित्रकला में
उर्बका बुसमित पयी फलतः उसमें ऐसी स्वाभाविकता व्याप्त हो गयी जिस
से बर्होवीर का युग मुगल-शैली की चित्रकला का स्वर्ण युग बन गया किन्तु
बर्होवीर के साथ ही इस चित्रकला की आरम्भ भी मर पयी।

शाहजहाँ की चित्रकला से जतना प्रेम न वा जिहता वास्तु-कला से
कमतः शाहजहाँ के काम में चित्रकला में वह हार्दिकता न दिखायी दी जो
बर्होवीर-युगीन चित्रकला का प्रायः थी। बेस-बूटे फूस-पत्ते नरकायी और
काठीभरी प्रभ भी थी पर कमी भी प्राणवत्ता की, जो सभी सजित कलाओं
की सामिक विशेषता है। यह इस बात का उत्तम प्रमाण है कि रीतिपुपीन के
प्रवृत्तियाँ जो इस काल में सभी सजित कलाओं के ह्रास का कारण बनी—
चित्रकला पर भी अपनी कासी छाया डाल रही थीं। शाहजहाँ के दरबारी
शिष्टाचार एवं राजसी मर्यादों के कारण चित्रकार दरबार के आन्तरिक
जीवन में उस प्रकार भाग न ले सके जिस प्रकार वायक एवं कवियण सैते के
फलतः चित्रकारों की कला राजसी बरव को संस्कृत करने में ही घमिक व्यय
हुई।

शाहजहाँ के परचात् औरंगजेब का यह युग प्रायः जिसमें सभी कलाओं की
छोका हो गयी। जिस औरंगजेब ने संगीत को ब्रष्ट करवा दिया वा उसी ने
दस्ताए हुए कफर के मकदरे से चित्रकारों को भी मिटा दिया। उसके दर-
बार में चित्रकला की यदि गुंजायश भी तो मात्र शरीह की। उसने अपने चित्र
बनवाये थे—पर दाबद इसलिये कि वह अपने आधामी बंधुओं के लिए एक
बादवार छोड़ना चाहता था। अपने इन कुटुम्बियों के भी वह बारम्बार
चित्र बनवाता था, जिन्हें उसने नजरबन्द कर रखा था, जिससे वह यह देख सके
कि पुन-पुन कर मरने वाले ये कुटुम्बी प्रभ मीत के फितने विष्ट पतूष चुके हैं।

दिल्ली राज-कोष में बनायाज और औरंगजेब की भीषण परसिद्धता के
कारण प्रायः कलाकारों के समान चित्रकार भी रईसों घमियों और नवाबों के
दरबारों में निहार गए। यह युग ही दिल्ली-दरबार से कलाकारों के विकेन्त्री

करण का वा फलतः युगल-चित्रकला की हिस्सी कलम लक्षणक इक्षम इत्यादि नामों से स्वामीय विशेषताओं से युक्त विभिन्न शैलियों का प्रादुर्भाव हुआ किन्तु मीमिक्षता किसी में नहीं। इन दरबारों के उन्मुक्त विभासपूर्ण वातावरण के रंगों में जो शृङ्गारिक चित्र रने उनमें अन्त-पुर की रंगीनी चिरक उठी थी।

रीतिकामीन चित्रकला का एक रूप वह भी था जो मुसलमान प्रधिपतियों के संरक्षण से दूर रहकर जनता की चित्त-श्रुति से निकट सम्बन्ध स्थापित करता हुआ लोकप्रिय बन गया था। यह वा राजपूत-शैली का वह रूप जो दरबार की संकुचित सीमा में घाबड़ न रह कर लोक-जीवन से जीवन पाकर हरा मरा हो रहा था। राजपूत शैली (राजस्थानी) में राम रावियों के अनेक भावपूर्ण चित्र बने जो इस शैली में अंकन का मुख्य विषय बन गये थे। इस के प्रतिरिक्त बाह्य मासे नायिका-भेद तथा कुम्भ-श्रीला भी इस शैली के विषय थे।

अरब और जहांपीर के शासन-काल में बुन्देलों का अन्मुख्य धारण हो गया था अन्तः प्राये बसकर उनकी चित्रकला में भी जीवन और उस्तास का उत्कर्ष हुआ। बुन्देलमण्डी शैली में केराब की अनेक कविताओं का आधार लेकर मुन्दर चित्र बने। इसके प्रतिरिक्त नायिका भेद और राग-रावियों के चित्र भी इस युग के चित्रकारों के प्रिय विषय थे ही। देश बिहारी और मठिचम की भावपूर्ण रचनाओं को लेकर बतिया दरबार में भी इसी शैली के चित्र बनाये गये किन्तु इन स्थानों के दूर पड़ जाने के कारण इन शैलियों का हिन्दी-बोध की धम्य लभित कलाओं से उल्लेखनीय सम्पर्क स्थापित न हो सका।

काव्य और संगीत कला

काव्य ललित कलाओं की अति रीतिकान में काव्य और संगीत में भी मीमिक्षता का ह्दाम दिगायी देता है। इन दोनों कलाओं पर प्रस्तुत प्रबन्ध में अन्वय विस्तार में विचार किया गया है अन्तः प्रसंग के अन्वय से वही कतिपय तथ्यों का संक्षिप्त मात्र ही अन्वय होगा।

रीतिकामीन काव्य के मुख्य विषय नायिका भेद पदश्रुति-वर्णन लल-सिल-वर्णन इत्यादि थे। अन्तःकार-भोह और पाण्डित्य प्रदर्शन की प्रश्रुति के कारण मूर और तुमसी की अन्तः-वंगा अन्तः शृङ्गारिता और विभास की चारा बन कर उभड़ रही थी। इन युग के आचार्य कवियों में भी मीमिक्षता का अन्वय था। ठीक वही बात उत्तरीय संगीत में भी दृष्टिगोचर होगी है। मीमिक्षता

से रहित उस युग का संगीत भी स्वामी हरिदास रामसेन इत्यादि की मन्गीर भुवने-रीती को छोड़कर क्याल-मायकी में परिवर्तित हो गया था। इन काल में हुयरी-रीती की शृङ्गारिकता संगीत को रीतियुगीन कलाओं से घोर भी निकट पहुँचा देती है।

निष्काय

प्रस्तुत विवेचन के आधार पर निष्कयस्वरूप को बाँटें उपसङ्ग होती है वे निम्नलिखित हैं

१ रीतिकाल में सभी ललित कलाओं का ह्रास हुआ। ग्रीरमत्रेय का घासकाल इस सम्बन्ध में विशेषतः द्रष्टव्य है।

२ सभी ललित कलाओं में प्राग्भूता घोर जीवन की उष्णता का प्रभाव रहा और इस कमी को पूर्ति के लिए प्रतिघाय घनकरण की प्रकृति काम उठी।

३ तत्कालीन युग की शृङ्गारिक मनोवृत्ति काव्य के समान ही वास्तु-कला चित्रकला और संगीत में भी परिमलित होती है। कवि, मायक प्रियी चित्रकार सभी अपने-अपने प्राग्भूताओं की बिभासी मनोवृत्ति के अनुकूल अपनी अपनी कला का प्रयोग कर रहे थे। फलतः उस युग की वैयक्तिकताहीन कला सर्जना में मात्र शृङ्गारिक उत्तेजना रह गयी थी।

४ इस काल की सभी ललित कलाओं में मौलिकता का प्रभाव बृष्टि मोचर होता है। कवियग यदि प्राचार्यत्व की बुन में संस्कृत के विद्यार्थी के रूप में कवियों के मलमलनों का प्रभावानुकरण कर रहे थे तो समीप में भी भरत के 'नाट्य शास्त्र' और प्राच्यवेद के 'संगीत रत्नाकर' में प्रतिपादित सिद्धान्तों की अपूर्व अनुकृति भर रह गयी थी। संगीतज्ञों की यह मनोवृत्ति उस युग के रीति बद्ध कवियों के समानान्तर है। रीतिमुक्त कविता के समानान्तर यह संयोज है जो प्रगतम्य जैसे कवियों के रस सिक्त पदों में बृष्टिमोचर होता है। दरबारी मर्यादा की कठोरता में धारण चित्रकला भी मौलिकताबिहीन हो गयी थी किन्तु जो चित्रकला इस बंधन से मुक्त थी वह जन-जीवन से सम्पर्क स्थापित कर फल-फूल रही थी।

५ गारी शृङ्गार की घाघात् मृति है, यतः इस युग की ललित कलाएँ भी जैसे गारीमय हो उठी थीं। तत्कालीन स्पृष्ट शृङ्गारिक मनोवृत्ति का यह पहलू प्रभाव है। काव्य में स्त्रियों के रस-शर्यय की घोषा को लेकर मल-शिक्ष की भी भरकर चर्चा हुई। नायिका-शेख में गारी की उस मनोवृत्ति की भी

अभिभ्यक्ति हुई जो सहज वैचरिक होते हुए भी सज्जा के अवनुष्ठान में छिपी रहती है और संस्कारगत कुष्ठार्थों के कारण अभिभ्यक्त नहीं हो पाती। संगीत में गीत ऐसे वे जिनके ध्वज मार्गों किसी स्त्री के मुख से ही निकल रहे हों। संगीत की ससक्त धीमी के स्वान पर टप्पा और ठुमरी धीमी सीतियाँ प्रचलित हो गयी थीं जिनकी स्त्रीमता स्वतः सापेक्ष है। चित्रकला में नारी की रसीली धाँसों और धंगों का उभार आ गया था तथा वास्तु-कला में नारी को पौराई संवसरमर में आभाषित थी। ताज मार्गों काहजहाँ की प्रेयसी के सौन्दर्य का मूर्त रूप है, उसकी प्रियतमा के मूल्यान आमुपसों की अनुकृति ही ताज की मक्काही की बापिकियों में अमक बड़ी है।

परिच्छेद-५

रीतिकालीन संगीत

रीतिकालीन संगीत

(ऐतिहासिक धारण)

परिच्छेद-५

(क)

हिन्दी-साहित्य का रीतिकाल बसुन्त कला-युग का घत इस काल में संगीत के किम्वदन्तक रूप में कलात्मक सूक्ष्मताओं का सन्निवेश तो हुआ परन्तु उसके शुष्क सांस्कृतिक विवेचन में लोगों की उतनी रुचि न हो सकी। यही कारण है कि इस युग में संगीत सम्बन्धी उत्कृष्ट ग्रन्थ प्रकाशित न भिषे जा सकी।

हिन्दी-साहित्य में रीतिकाल का प्रारम्भ साहजहाँ के शासनकाल से माना जाता है। बहादुर के समयग बार्डस वर्ष राज्य करने के पश्चात् १९२७ ई से १९२८ ई० तक साहजहाँ का राज्य-काल जाता है। साहजहाँ के बरबार के उम्मेदगीय नामक जगन्नाथ (कविराज) सामन्त (गुप्तसमुद्र) तथा बोरन खाँ से।

प्रहोबल

इस युग का महत्वपूर्ण ग्रन्थ 'संगीत पारिजात' है जिसे प्रहोबल ने लिखा था। इस ग्रन्थ का धारण जलकर १७२४ ई० में मासुदेब के पुत्र बीनानाथ द्वारा प्यरसी में प्रमुखाध भी हुआ।

भारतीय संगीत के ऐतिहासिक अध्ययन में 'संगीत पारिजात' प्रतीक उप योगी ग्रन्थ है। इसका कारण यह है कि सबसे पहले प्रहोबल ने ही तार की सन्धाई से बीनासद पर स्वरों का मान निर्धारित किया। उनकी इस प्रक्रिया का अनुसरण करके धाज भी बीनासद पर धुड़ एवं विद्वत स्वरों की स्थापना की जा सकती है तथा इस प्रकार हिन्दी के रीतिकालीन युग के स्वरों का नाशात्मक स्वरूप एवं उनकी सहायता से तत्कालीन रागों की नाशात्मक रूपरेखा को समझने में सहायता ली जा सकती है। अर्थात् प्रहोबल की इस प्रक्रिया को परवर्ती विद्वानों ने विधेय महत्व नहीं दिया एवं उसका अनुसरण भी प्राग्रह पूर्वक नहीं किया परन्तु धाज के युग में यह बात ऐतिहासिक दृष्टि से प्रहोबल की एक महत्वपूर्ण रीति बन गयी है। धारण जलकर बीनानाथ ने भी प्रहोबल

रीतिकालीन संगीत

(ऐतिहासिक माध्यम)

परिच्छेद-५

(क)

हिन्दी-साहित्य का रीतिकाल वस्तुतः कला-युग का अन्त इस काल में संवीर के विचारमण्डल रूप में कलात्मक मूल्याधारों का सम्मिश्रण तो हुआ परन्तु उसके मुख्य साम्प्रदायिक विवेचन में जीवों की उठनी क्षमता नहीं हो सकी। यही कारण है कि इस युग में संवीर सम्प्रदायी उत्कृष्ट शिल्प प्रसिद्ध न लिखे जा सके।

हिन्दी-साहित्य में रीतिकाल का आरम्भ साहूबहाई के सासनकाल से माना जाता है। साहूबहाई के समयम बाईस बरस राज्य करने के पश्चात् १६२७ ई० से १६३० ई० तक साहूबहाई का राज्य-काल माना है। साहूबहाई के दरबार के अस्मितामयीय भाषक बरनाम (कविराज) काव्यों (कुसुमसुन्दर) तथा शौर्य काव्य।

प्रहोबल

इस युग का महत्वपूर्ण ग्रन्थ 'संवीर पारिजात' है जिस प्रहोबल के लिखा था। इस ग्रन्थ का प्रायः जलकर १७२४ ई० में बाबुरेव के पुत्र बीजाबाय द्वारा अक्षरी में अनुवाद भी हुआ।

भारतीय संवीर के ऐतिहासिक अध्ययन में 'संवीर पारिजात' प्राचीन अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है। इसका कारण यह है कि सबसे पहले प्रहोबल ने ही तार की लम्बाई से बीजाबाय पर स्वयं का मान निर्धारित किया। उनकी इस प्रक्रिया का अनुसरण करके आज भी बीजाबाय पर युद्ध एवं विजय स्वयं की स्थापना की जा सकती है तथा इस प्रकार हिन्दी के रीतिकालीन युग के स्वयं का भाष्य एक स्वरूप एवं उनकी सहायता से तत्कालीन राज्यों की नाबायक कर्मों की समझने में सहायता भी जा सकती है। यद्यपि प्रहोबल की इस प्रक्रिया को परवर्ती विद्वानों ने विषय महत्व नहीं दिया एवं उनका अनुसरण भी प्रायः पूर्णक नहीं किया परन्तु आज के युग में यह बात ऐतिहासिक दृष्टि से प्रहोबल की एक महत्वपूर्ण बात बन गयी है। प्रायः जल कर बीजाबाय के भी प्रहोबल

का अनुसरण करते हुए श्रीनारायण पर कुछ और विकृत स्वरों का स्पष्टीकरण किया है, परन्तु ग्रहोबस का यह कहना कि "मैंने इस मार्ग का निर्बंध उन लोगों के लिए किया है जो स्वर-ज्ञान से विहीन हैं। स्वर-स्थापन का मूल कारण तो स्वर-संवाचित्त का ज्ञान ही है।" स्पष्टतः इयित करता है कि ग्रहोबस की दृष्टि में इस विधि का विशेष महत्त्व नहीं था। तबतुब जिसे स्वर-ज्ञान ही नहीं है उसका मना संगीत-रूपा से क्या सम्बन्ध हो सकता है? और जिसे स्वर-ज्ञान है उसके लिए पढ़-रचना-भाव या पढ़-रचना-भाव द्वारा स्वर-स्थापन कर लेना क्या बड़ी बात है। परन्तु ग्रहोबस और श्रीनारायण की स्वर-स्थापन प्रक्रिया उस मूल के स्वरों के स्पष्टीकरण में मात्र किन्तु महत्त्वपूर्ण सहायता प्रदान करती है, यह संगीतज्ञों से छिपा नहीं है।

ग्रहोबस के रागाभ्यास में अद्यपि उन्नीस स्वरों का उल्लेख है, किन्तु व्यवहार केवल बारह ही स्वरों का हुआ है। वर्तमान भारतीय संगीत में भी बारह ही स्वर प्रयुक्त होते हैं। ग्रहोबस ने अपने बारह स्वरों की सहायता से 'पारिजात' में एक सौ-बाईस रागों को स्पष्ट किया है। 'पारिजात' का कुछ ग्राम वाणिज्यालय पत्रिका का सत्रहविसंवत्त में प्रकाशित वर्तमान भारतीय संगीत-पत्रिका का काफी ठाठ है।

हिन्दुस्तानी संगीत पत्रिका का मूल आधारभूत ग्रन्थ ग्रहोबस का 'संगीत पारिजात' ही है। हिन्दुस्तानी संगीत पत्रिका के बारह स्वरों में से सा रे ग म प ध नि के (काफ़ी ठाठ के) सात स्वर ही हैं जो ग्रहोबस द्वारा व्यवहृत हैं। सेप रे ग म ध नि का आधार 'संगीत पारिजात' नहीं है। इन पाँच स्वरों को नादवाच्य मेजर स्केम के अनुकूल स्वीकार कर लिया गया है तथा कुछ बीबत की ग्राम्बोपन संख्या प्रति सैकड़ ४०१ मान ली गयी है। फिर भी यह ध्यान रखना चाहिए कि पाचक स्वरों की ग्राम्बोपन-संख्या का ध्यान रखकर उनका व्यवहार नहीं करते। राग मायन की प्रवृत्ति क्रिया में राग में प्रयुक्त होने

१ स्वरज्ञानविहीनोप्यो जागोर्ष्यं दधितो मया ।

स्वरसंवाचित्तज्ञानं स्वरस्थापनकारणम् ॥

ग्रहोबस पण्डित प्रणीत संगीत पारिजात

(स्वरज्ञान सहाय) इत्येक संख्या ३२९

(मैंने यह मार्ग उन लोगों के लिए स्वीकार किया है जिनका स्वर ज्ञान अल्प है। स्वर-स्थापना करने में स्वर-संवाचित्त-ज्ञान यह तत्त्व स्वीकार किया गया है।)

भासा प्रत्येक स्वर अपने प्रास-वास के स्वरों से प्रभावित होकर स्वयमेव ही अपने युक्तियुक्त स्वान और अपनी विशिष्ट प्रकृति को कुपम संगीतज्ञ के सम्मुख प्रकट कर देता है। यह कौन नहीं जानता कि भैरव पुरिया मारवा इत्यादि रागों में कोमल रूपम प्रयुक्त होता है, परन्तु सगीत के पारशी विद्वानों से इन रागों में कोमल रूपम की विशिष्ट सत्ता भी कभी छिपी नहीं रही।

‘संगीत पारिजात’ के लिखे जाने के प्रास-वास ही हृदयनाटयनदेव द्वारा ‘हृदय कौतुक’ एवं ‘हृदय प्रकाश’ नामक दो ग्रन्थ लिखे गये। हृदयनाटयनदेव ने भी ग्रहोबल के समान बीषा के तारों पर स्वर का स्पष्टीकरण किया है। परन्तु हृदयनाटयनदेव के प्रादुर्भाव काल का निश्चय न होने से यह कहना कठिन है कि हृदयनाटयन ने ग्रहोबल का अनुसरण किया भवना ग्रहोबल ने हृदयनाटयन का।

१ “Ahobala in his *Sangeet parijata* also describes the Swaras in terms of the lengths of the sounding string as we shall see hereafter. But do not know whether he got that idea from Hradaya's book. Some scholars on the contrary suspect that Hradaya took the idea from Ahobala. There is no reliable evidence on the point, but there are two facts which may lead some colour to the last mentioned suspicion. Hradaya in his *Koutuka* omits to fix the position of his *Shudha* and *Vikrit* Swaras in terms of the lengths of the strings. And secondly the *Sangeet Parijata* is a much more elaborate work than the *Hridaya Prakaash*. All will depend therefore upon the question whether or not the *Parijat* was written before the *Prakaasha*.”

— A comparative study of some of the leading music systems of the 15th, 16th, 17th & 18th centuries by Pandit V N Bhatkhande Page 24

(बैसा कि हमें प्रागे चलकर जान्युन होगा, ग्रहोबल ने अपने ‘संगीत पारिजात’ में तार की लम्बाई के रूप में भी स्वरों का वर्णन किया है। पर हमें बात नहीं कि ग्रहोबल ने यह रूपना हृदय की पुस्तक से ली है या नहीं। कुप विद्वानों का तो यह विचार है कि हृदय ने ही ग्रहोबल से यह रूपना ली है। इस विषय में कोई निश्चयपूर्ण प्रमाण उपलब्ध नहीं है पर दो बातें एसी हैं जिनसे उपर्युक्त लक्ष्य की कुछ पुष्टि होती है। हृदय ने अपने ‘कौतुक’ में तार की लम्बाई के रूप में कुछ और विहित स्वरों की स्थिति निश्चित नहीं

व्यंकटमसी

राष्ट्रशास्य विद्यालय व्यंकटमसी पण्डित ने १९९० ई० में कर्नाटकी संगीत पर 'अनुसंधानप्रकाशिका' नामक ग्रन्थ लिखा। इस ग्रन्थ में भी कुछ बाण्ड ही स्वरों का प्रयोग हुआ है। व्यंकटमसी पण्डित ने गणित द्वारा एक सप्तक में से ७२ ठाठों तथा एक ठाठ से ४८४ रागों का निर्मित हो सकता सिद्ध किया है। परन्तु व्यवहार पण्डितों ने ३९ ठाठों का ही किया। येच ठाठ रंजकत्व के प्रभाव में ग्रहण न हो सके। प्रायःकाल ठाठ-बद्धि ही अधिक प्रचलित होने के कारण व्यंकटमसी पण्डित का महत्व घोर भी बड़ बाठा है।

घोरंगजेब

१९३८ ई० में साहबजी की मृत्यु हुई घोर अपने भाइयों से कुछ काल तक कुछ करके घोरंगजेब दिल्ली का बाघबाहू बना। घोरंगजेब की बर्माबता घोर कट्टरता के कारण संगीत को बहुत ही बुरे दिन देखने पड़े। उसके बर-बार से संगीत का सर्वथा बहिष्कार हो गया, अतः मुगलकाल में संगीत का जो कुछ उत्कर्ष होता था वह साहबजी के युव तक ही होकर रह गया।

मुहम्मद साहब के भावेधानुसार घोरंगजेब के लिए संगीत इयाम था। संगीत के बलसे दुस्मिन् द्वारा बंद कर दिये जाते थे घोर बाघमन्त्र बना दिये जाते थे। एक बार मुझे की मयात्र करने मस्जिद जाते समय घोरंगजेब ने

की है घोर दूतरी बात यह है कि 'संगीत परिवर्तन' 'हृदय प्रकाश' से बहुत अधिक बिलसृत ग्रन्थ है। अतः सारी बातें इस प्रश्न पर निर्भर हैं कि 'पारि-जात' 'प्रकाश' से बहने लिखा गया था नहीं।)

(Anrangzeb did his best to suppress music and dancing altogether in accordance with the example of the Mohamedan Prophet who was born without an ear for music and therefore hastily ascribed the invention of harmony to the Devil. The musicians of India were certainly noted for a manner of life which ill accorded with Anrangzeb's strict ideas and their concerts were not celebrated for sobriety. The Emperor determined to destroy them and severe edict was issued. Ranks of the police dispersed their harmonious meetings and their instruments were burnt. One Friday as Anrangzeb was going to the mosque he saw an immense crowd of singers following a bier and rending the air with their cries and lamentations. They seemed to be burying some great

एक मीढ़ को बनाया से जाते हुए देखा । औरंगजेब को जब यह पता चला कि यह संगीत-कला का बनाया है तो उसने कहा कि इसे इतना महत्त्व बचन करना कि फिर इसकी धाराज कमी सुनायी न दे । औरंगजेब कट्टरता से इसका बर्ण को मानता था इसी कारण यह संगीत का विरोधी भी था किन्तु बाहे यह अपनी धार्मिक मनोवृत्ति के कारण संगीत का विरोध भले ही करता हो उसकी धार्मिक अभिरुचि सम्भवत इतनी दृढ़ता से संगीत के विरुद्ध न थी । प्रसिद्ध इतिहासकार बहुराज सरकार ने जैनाबादी के सौन्दर्य और संगीत से प्रभावित होकर औरंगजेब का उसके विवाह करने की निश्चयना का उल्लेख किया है वह उपर्युक्त कथन के प्रभावस्वरूप उपस्थित की जा सकती है । एक

Prince The Emperor sent to inquire the cause of the demonstration and was told it was the funeral of Music slain by his orders and wept by her children I approve their piety said Aurangzeb let her be buried deep and never be heard again. "

— Rulers of India Series. Aurangzeb by Stanley Lane Poole Page 101

(मुस्लिम पैगम्बर मुहम्मद साहब की मिसाल पर चलते हुए औरंगजेब ने वाद्यन और नृत्य को कुचलने का भरसक प्रयत्न किया । मुहम्मद साहब संघीत पताब नहीं करते थे इसीलिए उन्होंने जैनाबादी में संगीत को खैतान से दूबा डूबा दिया । भारत के पापक निश्चय ही ऐसी जीवन-यत्ति के लिए प्रसिद्ध थे जो औरंगजेब के कट्टर विचारों से भेज नहीं जाती थी अतः संयम और सावधानी से काम लेते हुए पापक संगीत समाप्त नहीं करते थे । सम्राट् ने उन्हें नष्ट करने का दृढ़ संकल्प कर रखा था और उसने कठोर धारणा जारी किया था । पुलिस द्वारा मार कर संगीत समाप्त हो कर देती थी और वाद्य-यंत्र जला देती थी । एकबार बुम्मे की नमाज के लिए मस्जिद जाते हुए औरंगजेब ने धोकपुर संघीतज्ञों की एक भारी भीड़ को एक जमाते के साथ जाते देखा । नामुम होता था कि भीड़ किसी धाहुबाजे को बखलने का रही है । अर्हण्ड ने इस प्रदर्शन का कारण जानने के लिए अपने आसनी भेजे और वाद में उसे पता चला कि यह संगीत का बनाया है जिसे धाही धारणातुलार कल कर दिया गया है और जिसके बच्चे रो रहे हैं । औरंगजेब ने कहा "मैं उनकी बर्णनिष्ठा की सराहना करता हूँ । इस जमाते को इतना महत्त्व बखलाया जाए कि फिर उसकी धाराज कानों तक न पहुँच सके ।)

बार को श्रीरंगरेव बीजाबादी के हाथ से सदाब पीने को भी तैयार हो गया था ।
 अतः स्पष्ट है कि चाहे चाणिक कट्टरता के कारण उसे संगीत को इराम

“ Besides the above four there was another woman whose supple grace, musical skill, and mastery of blandishment, made her the heroine of the only romance in the puritan Emperor's life. Hirabai surnamed Zolnabadi was a young slave-girl in the keeping of Mirkhalil who had married a sister of Aurangzeb's mother. During his viceroyalty of the Deccan, the prince paid a visit to his aunt at Burhanpur. There while strolling in the park of Zambad on the other side of Tapti, he beheld Hirabai unveiled among his aunt's train ——— Hirabai was standing under a tree holding a branch with her right hand and singing in low tone. Immediately after seeing her the prince helplessly sat down there and then stretched himself at full length on the ground in a swoon. ——— one day she offered him a cup of wine and pressed him to drink it. All his entreaties and excuses were disregarded and the helpless lover was about to take the forbidden drink when the sly enchantress snatched away the cup from his lips.”

— History of Aurangzeb by J N Sicker Page 65 68
 Vol I Edition 1912

(इन चारों के अतिरिक्त एक और भी सलता थी जो अपनी कमनीयता, संगीत-यदुता मृदुताक्षिता एवं व्यवहार इयालता से पर्यवेष्टि लज्जा के जीवन की एकमात्र प्रलय-मोला की नायिका बन बैठी थी । यह युवती एक रात-कन्या थी जिसका नाम हीराबाई उर्फ बीजाबादी था । यह मीरजमीन के संरक्षण में पल रही थी । मीरजमीन श्रीरंगरेव के मौला थे । वह शाहजादा श्रीरंगरेव बख्तन (बलिल) के बामतराय थे तो एक बार वे अपनी मौली से मिलने बुरहानपुर गये । वहाँ एक दिन तापती नदी के दूसरी धीर बीजाबाद के उद्यान में टहलते हुए उनकी दृष्टि हीराबाई पर पड़ी । उस समय हीराबाई श्रीरंगरेव की मौली की अनुचारिकाओं के साथ थी । हीराबाई एक बूझ के नीचे खड़ी थी । वह चाहे हाथ से डाल बट्टे धीमी आवाज में गा रही थी । उसे देखते ही शाहजादा असहाय अवस्था में वहाँ बैठ गये और फिर सेट गये यहाँ तक कि मूर्च्छित भी हो गये । एक दिन हीराबाई ने उन्हें घराब-भरा प्याला दिया और पीने के लिए बाध्य किया । शाहजादे की सारी मिश्रत धारण और बहाने बेचार गये बेचारे प्रेमी की निबिड वैप गमे से नीचे उतारने ही को वे कि बपुर जानुपरनी ने होठों से प्याला दीन लिया ।)

बहना पड़ता ही, परन्तु उसका हृदय भी संगीत के प्रति घातुष्ट हुए बिना नहीं रह सका था। संगीत के जिस जगजे की बहुत गहरा दफनाने का घोरपजेब ने धारेश दिया था वह जगजा बस्तुत घोरपजेब की संगीत-बिरोधी नीति का एक मूक प्रतिबाह मात्र वा घोर घोरपजेब सभाद् घोरपजेब घपनी घाटा के इस मूक बिरोध को भी नहीं सह सका था। इसीलिए उसने संगीत को गहरा दफना देने की घाटा बी बी परन्तु दफनाने जाने पर भी संगीत फिर उठ जड़ा हुआ। बस्तुत संगीत भागव-हृदय को इतने निकट से स्पर्श करता है कि अनुप्य स्वभावत संगीत का बिरोधी कभी हो ही नहीं सकता।

भावभट्ट

घोरपजेब के युग में एक ही संगीत-शास्त्री का नाम उल्लेखनीय है घोर वह है भावभट्ट। भावभट्ट बीकानेर के राजा कर्णसिंह के पुत्र घनूपसिंह के दरबार में थे। इनकी सिधी प्रसिद्ध पुस्तकें घनूप संगीत विभाष, 'घनूप रत्नाकर' और 'घनूपकुण्ड' हैं। घाचामें भावभट्ट ने 'ए शार्ट हिस्टोरीकल सर्वे ऑफ़ बी म्यूजिक ऑफ़ धर इण्डिया' के पृष्ठ-१० पर भावभट्ट के पिता जनार्दन भट्ट को घाहजहाँ के दरबार का मायक माना है, किन्तु इस सम्भव में उनकी मायता अनुमान पर ही भाव्य है। उनकी बाराणा है कि सम्भवत-जनार्दन (कविदास) और जनार्दन भट्ट एक ही व्यक्तिके दो नाम हैं। वह सर्वथा सम्भव है कि घाहजहाँ की मृत्यु के परचात् घोरपजेब के दरबार में संगीत का बहिष्कार हो जाने के कारण दिस्ती-दरबार छोड़ कर जनार्दन भट्ट या उनके पुत्र भावभट्ट ने बीकानेर के दरबार में धाधव श्राप्त किया हो। दिस्ती दरबार में संगीत का बिकेन्त्रीकरण हो जाने के कारण उक्त युग के संगीतज्ञ राजाओं और नवाबों के दरबारों में बिचर भये थे।

भावभट्ट को अनुप्य बच्यती संगीत राम की उपाधि प्राप्त हुई थी। परन्तु उनकी पुस्तकों को देखकर एक बार यह सोचना पड़ता है कि भावभट्ट इस पदवी को बाराय करने की कहीं तक योग्यता रखते थे। सम्भवत भावभट्ट को को गौरव मिला था वह उन्हें अपने कियामक संगीत के कारण ही प्राप्त हुआ होगा। 'घनूप-विभाष' के स्वराध्याय की अधिकांश सामग्री घाहजंदेश के 'संगीत रत्नाकर' का अनुकरण मात्र है। मीनिकता के घनाय में उनकी पुस्तकों को उनके द्वारा सम्पादित रचनाएँ कहना अधिक मुक्तिमुक्त होगा।

'घनूप संगीत विभाष' के राजाध्याय में रीतिकालीन कवित्त-संबंध

पद्यों को प्रपलाते हुए भावमग्न ने कहीं-कहीं रागों का धरैयों द्वारा भी वर्णन किया है । १

मुहम्मद शाह रगीसे

धीरंगनेव की धात्रा से महारई में रक्षणाया गया संगीत मुहम्मदशाह के युग में पुनः प्रमदाई लेकर उठ खड़ा हुआ । किन्तु घटाख्दी घटाखी में यद्यपि संगीत की पुनर्जाइति के चिह्न दृष्टियोग्य होते हैं परन्तु उनमें वह सम्भीरता न पा सकी जो इस युग के पूर्ववर्ती संगीत की धात्रा-सिखा थी । प्रुपय के स्वान को अनाम पायकी ने ग्रहण कर लिया था । स्वयं मुहम्मदशाह ने अनेक जयान्तों की रचना की । २ इनके बनाये हुए खयाल पाय भी संगीतज्ञ पाते

- १ "जो दरबारि तो कुछ कहावे मसार मिलामके नायकि जानो ।
 बावैतरि बघातिरि के जिले मेधमिले लें घडाना जानो ।
 होत सहाणो मिले कश्कस्त के पूरिया जेततिरीसुराणो ।
 रंयल घटक लौहि कहावत भाव कहे जठनेहन जानो ॥
 मुद्रिकनारो हुतेनिघोकाकीमिलेबिच पैदकसालत हैवु ।
 लोरदि धीर खंवाकतिलो मिले हारसमेवयोमानत हैवु ।
 कर्नाटपीर जो कर्नाट देव हैवो पुनिमैद बखानत हैवु ।
 कुरसना प्रह्वंस्तभो ग्यासवि मेल मिलायबिजानत हैवु ।

अनुप संगीत विभात' से धात्राय भारतखण्डे द्वारा
 ए कमपटैरिख हटडो धौक लय धौक बी म्यूबिक
 तिसटम्स धौक बी डिचडीम्ब तिसलटीम्ब,
 तीबनटीम्ब एण्ड एड्टीम्ब लेंबुरोड' के पृष्ठ-७१
 पर उद्धृत

- २ उदाहरणार्थ — मंमदता रंभीला ऐ बलमा तुम किन मीजा
 जारो बरदिया मेक ना मुहावे ।
 जर्नह धुमंड धन धावे मीनव भर लपावे
 तरसावे तरा रंभीले को मुकवाई
 धमक बीब डरावे ॥

है। इन खबालों में प्रायः "मम्मद सा पिया सदा रंगीले यह पंक्ति कहीं-न कहीं बुझी हुई दिखायी देती है। मुहम्मदशाह का दरबार इन दिनों सवारंग और अदरंग के खबालों से सुसजित था। सवारंग और अदरंग के खयास भी वर्तमान संगीतियों द्वारा नई धार में गाये जाते हैं। इसी युग में शोरीमिया ने टप्पा-दीप्ती प्रचलित की।

भारत में मुसलमानी राज्य ग्वाल्हरी सत्ताधी से आरम्भ होता है। इसमें मुहम्मदशाह के परचाह् एगें-सनी संघर्षों का शासन आरम्भ होने लगता है, यह ग्वाल्हरी सत्ताधी से लेकर अभीसर्गी सत्ताधी के पूर्वार्ध तक के संगीत की ऐतिहासिक दृष्टि से मुसलमानी शासन-काल का संगीत कहा जा सकता है। हिन्दुकाल के संगीत में ग्वाल्हरी सत्ताधी से मुसलमानी संगीत का मिश्रण होने लगा था। इस मिश्रण के कारण रीतिकाल में धाठे-माठे मूल भारतीय संगीत में तात्त्विक परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगे हैं। जिस प्रकार रीतिकालीन हिन्दी-साहित्य अपने पूर्ववर्ती साहित्य से सर्वथा भिन्न है उसी प्रकार इस युग का संगीत भी अपने पूर्ववर्ती संगीत से सर्वथा पृथक् दृष्टिगोचर होता है। रीतिकाल में झुपड़ के स्वाम पर खयास और टप्पागायकी का प्रचलन एवं इन दोनों से झुपड़-गायन-दीप्ती का अन्तर इस पार्षक्य की सर्वथा स्पष्ट कर देता है। जिस प्रकार इस काल के हिन्दी-साहित्य में अविद्यय शृङ्गारिकता प्रसङ्गों का मोह तथा हृदयपल के स्वाम पर कलापन का प्राधान्य हो गया था, उसी प्रकार इस युग का संगीत भी अपने सहज-बम्बोर, बीर-अद्यान्त रूप को छोड़कर अलंकार और शृङ्गारपरक हो गया था। प्रस्तुत प्रबन्ध में भारतीय संगीत की झुपड़ खयास टप्पा टुमरी इत्यादि शैलियों का विवेचन करते समय इस लक्ष्य को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

बोल रे पर्ययरा दान धन करले ।

ऊन ऊन कर कर भाई कररिबा

बरतन लापी लवा रंगीले

मंमदसा हाबिनी की कीय खंड

मौरा जियरा करले ॥

प्राचार्य भाटखण्डे द्वारा हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति
जनिक पुस्तक मालिका भाग-४, पृष्ठ-३७१, २६०
लखनऊ सन् १९३२

श्रीनिवास

पठारहवीं शताब्दी का महत्वपूर्ण ग्रन्थ श्रीनिवास कृत 'राम उत्सव विनोद' है। लेखक ने इस पुस्तक में अपने निवासस्थान कन्न-परिचय प्रथम प्रथम काम के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा है। प्रथम अन्त-आदन के आधार पर यद्यपि इस पुस्तक का रचना-काल निर्धारित नहीं किया जा सकता किन्तु श्रीनिवास ने 'संकीर्ण पारिजात' से बहुत कुछ सामग्री लेकर 'राम उत्सव विनोद' की रचना की है, इसलिए श्रीनिवास का समय महाद्वार के पश्चात् ही माना जा सकता है।

'राम उत्सव विनोद' के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उस काल में संकीर्ण बारह स्वर्गों पर प्रामुख्य था। श्रीनिवास यद्यपि बार्हस्पत्यियों का विरोध नहीं करता परन्तु बहु बारह स्वर्गों के द्वारा रात-स्पष्टीकरण करके शेष दस भूतियों को घनकृत रूप में पपास्त्राग स्वयम्भुव लग जाने की घोषणा करता है। १

प्रताप सिंह वैद्य

प्रताप सिंह वैद्य ने अजमेर पर सन् १७७६ में सन् १७७४ तक राज्य किया। अपने दरबार के संगीत-संगीतियों को प्रेरणा प्रदान करके प्रताप सिंह वैद्य ने 'संगीत-सार' नामक ग्रन्थ का सम्पादन करवाया था। मौलिकता के प्रभाव में इस कार्य के संपादन के अग्र-अग्रह 'संगीत रत्नाकर', 'संगीत रत्न' 'संगीत पारि-

१. 'भूतयो ह्यवस्यन्त स्वस्वगतयोरिदं ।

संकीर्णपरिता' सर्वादिभरत्वात्तत्परिदम् ॥

त भूतिरवस्यत्तत्प्राप्तप्राप्त मेतत्तत् ॥

भूतोद्ग्राह्युजो रापान् कल्पयन्तु मन्त्रिणः ॥

आचार्य भातारण्ये कृत 'हिन्दुस्थानी संगीत-सङ्घति

संस्करण सन् १९३९

(एकर रचना के अन्त में भूतियों बारह ही हैं। अगर बताया हुई बारह भूतियों के अतिरिक्त सब भूतियों एकर रचना में बृहत् हैं। भूति स्थित स्वर्गों में उत्पन्न प्रकृत, उनसे प्राप्त भोग से पैदा होने वाले रापों की कल्पना विद्वानों की नहीं करनी चाहिए।)

बात 'अपमाता अनुप बिमास इत्यादि' ग्रन्थों में उद्धरण उपस्थित किन्ने हैं, परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि इन ग्रन्थों के तत्त्वा को वे मोप मनीर्माति हृदयवश नहीं कर सके थे। इस ग्रन्थ में जो रामसङ्गण दिये हुए हैं वे प्रवरप उपादेय हैं, क्योंकि इनके आधार पर उम युग में व्यवहृत होने वाले रागों की क्लरेका के अध्ययन में सहायता प्राप्त होती है।

उत्तीतवीं सताब्दी के इस ग्रन्थ में एक बात धीर महत्वपूर्ण है धीर यह कि इसका मूळ टाठ बिलासम प्रनीत होता है।

मुहम्मद रखा

सन् १८१३ ई० में पटना के रहिस मुहम्मद रखा ने 'अपमाते आसफ़ी' नामक ग्रन्थ की रचना की। उन्नीसवीं सताब्दी में यह रचना अपनी बिशिष्ट स्थान रखती है। मुहम्मद रखा ने अत्यन्त हनुमान मत कल्मीनाथ मत तथा सोमेस्वरमत की आसोचना की है तथा इन मतों को अपने युग के सर्वथा प्रीत कूल घोषित किया है। 'अपमाते आसफ़ी' की बिदेयता यह है कि उसमें पूर्ण वर्ती संवीत एवं तत्कामीन प्रचलित मनीत में परस्पर बलात् सम्बन्ध स्थापित करने का कोई प्रयास नहीं किया गया है। मुहम्मद रखा ने अपने पूर्ववर्ती संवीत के उन्नी सिद्धान्तों को अपनी रचना में स्थान दिया है जो उन बिनों भी किमात्मक संवीत में प्रयुक्त हो रहे थे। जो सिद्धान्त पुराने पड़ चुके थे तथा जिनका मूल्य केवल ग्रन्थों तक ही सीमित रह गया था उनका सर्वथा परिव्याय करके अपने युग के प्रचलित संवीत के आधार पर उसने अपने ग्रन्थ में माम्यताई स्थापित कीं अत एक धीर तो 'अपमाते आसफ़ी' में मौलिकता बढ़ गयी है। दूसरी धीर वर्तमान संवीत का मुहम्मद रखा के युग के संवीत से तीका सम्पर्क भी स्थापित हो गया है।

मुहम्मद रखा ने सिधमत हनुमान मत आदि का बिरोध उनकी तत्कामीन सम्पावहारिक राग-रागिनी-यद्धति के कारण ही किया था। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि मुहम्मद रखा को राग रागिनी-यद्धति बाह्य नहीं थी। 'अपमाते आसफ़ी' में उनका ब्यक्तिगत कृष्टिकोप राग रागिनी-यद्धति पर ही माबुत है। भारतीय संवीत की परिवर्तनशीलता के कारण प्राचीन राग परिनिर्णों में उक्त समय तक पर्वन्त अन्तर था क्या था अत प्राचीन परम्परा के राग-रागिनीयों की एकजातीयता बहुत कुछ लुप्त हो गयी थी। मुहम्मद रखा ने मीरब भात कौंस हिन्दोल भी, वेप धीर ग, वे छ राग माने हैं। 'अपमाते आसफ़ी' के

इस वर्गीकरण में राम रगिनिर्भों में जो एकजातीयता है उसे मात्र भी एक सीमा तक ग्रहण किया जा सकता है। उदाहरणार्थ 'नगमाते भासप्री' के मूठ राग की छायागत हमीर, कल्याण केशर, बिहामड़ा और यमन से छ रगनिर्भों हैं। मात्रकत्व की छायागत, हमीर, केशर, यमन इत्यादि कल्याण ठाठ के राम माने जाते हैं, परंतु 'नगमाते भासप्री' की बिचारबाध से मात्र की सांख्यिक बिचार बाध का बहुत कुछ तारतम्य स्थापित हो जाता है।

'नगमाते भासप्री' की एक महत्वपूर्ण बात यह भी है कि पुराने ग्रन्थों में से सर्वप्रथम इसी में 'बिलबाम' को स्पष्ट रूप से सुद्ध ठाठ माना गया है। वही बिलबाम ठाठ मात्र के संगीत की धारा घिसा है।

कृष्णानन्द व्यास

सन् १८४९ ई० में हीरकानन्द के पुत्र कृष्णानन्द व्यास ने 'संगीत राग-कल्याणम्' नामक एक विस्तृत ग्रन्थ का सम्पादन किया। यह ग्रन्थ भारतीय संगीत का विद्यालय कोष कहा जा सकता है। यह चार खण्डों में प्रकाशित हुआ था। कृष्णानन्द व्यास का सुद्ध ठाठ भी बिलबाम ही प्रतीत होता है।

व्यास ने 'संगीत रत्नाकर', 'संगीत दर्पण' और 'राग माला' के स्वराभ्यासों एवं रादाभ्यासों को धारा धारा है। इसके बाद तत्कालीन उपसम्बन्ध सभी भ्रुण, लयान इत्यादि को बिना स्वरलिपि बिदे संवृद्धीत कर लिया है। यह संग्रह भीतों की दृष्टि से प्रपायेय है किन्तु स्वरलिपि के प्रभाव में क्रियात्मक संगीत की दृष्टि से इन भीतों की तत्कालीन बन्धित (मेयता) पर प्रकाश नहीं पड़ता। इसमें कोई संदेह नहीं कि 'कल्याणम्' में संवृद्धीत बहुत से अध्यास और ग्राह मात्र भी क्रियात्मक संगीत में प्रचलित हैं, तथापि यह निवचयानक रूप में नहीं कहा जा सकता कि उनकी बन्धित वैसी मात्र है वैसी ही कृष्णानन्द के युग में भी थी।

बाजिरामजी दाह

सिन्धुवासी बिलबाम और रगिणता का उत्कृष्ट रूप ससनऊ के नवाबों में स्पष्ट दृष्टिपोषर हुआ। बाजिरामजी दाह ससनऊ के धन्तिम नवाब थे। दुमरी-नावन के प्रचार का येय इन्हीं को प्राप्त है। धनकरण और रसीलेपन की जो प्रवृत्ति इस पीढ़ी में बिद्यमान है वह संगीत-रसा की रीतिकालीन महत्व पूर्ण बिधेयता है।

ध्वनरेजी शासमकास

प्रस्तुत प्रबन्ध का रीतिकामेन से ही विरोधरूप से सम्बन्ध होने के कारण भारतीय संगीत के ऐतिहासिक विकास का यहाँ इतना ही विवेचन पर्याप्त है किन्तु ऐतिहासिक पूर्णता की दृष्टि से पर्यन्त खलेप में वर्तमान प्रचलित संगीत पर भी विचार किया जा सकता है ।

ध्वनरेजी में भारतीय संगीत को धर्म-सन्म समझ और भारतीयों में पात्रकाल्य संगीत को निरान्त अममी प्रत संगीत को को प्रथम देवी राजाओं और मुख्यतःमान बावसाहों से प्राप्त हुआ यह ध्वनरेजी के युग में न मिल सका ।

अन्वीसर्षी घटासुी के उत्तरार्ध में संगीत की रक्षा शोचनीय थी । धीरे धीरे बाना बबाना मीरासिर्षी का काम सम्भ्र जाने गया परन्तु कसिपब संगीत-स्येपिर्षी के प्रयत्न से पुन इसे प्रतिष्ठा प्राप्त हुई । सर एच० एम० गैयोर ने 'यूनिवर्सल हिस्ट्री ऑफ़ म्यूजिक नामक पुस्तक लिखी जिसमें शय-नागिनी पद्धति को स्वीकार किया गया । धी कल्पयन बतर्षी कृत 'गीत सूत्रसार' भी अस्तेखनीम प्रत्य है । धीसर्षी घटासुी के पूषार्ध में धाचार्य भातसुषी और धमर पासक पण्डित विष्णु दिगम्बर के प्रबन्धों से संगीत की पर्याप्त उन्नति हुई । धाचार्य भातसुषी की पुस्तकें वर्तमान संगीत के अध्ययन में विरोधरूप से सहायक हैं ।

इस वर्गीकरण में राग रागिनियों में जो एकजातीयता है उसे मात्र भी एक सीमा तक ग्रहण किया जा सकता है। उदाहरणार्थ 'नगमाते घासखी' के गट राग की छायागत हमीर, कल्याण केराट, बिहापड़ा और यमन ये छ रागिनियाँ हैं। मात्रकत्व भी छायागत हमीर, केराट, यमन इत्यादि कल्याण ठाठ के राग माने जाते हैं, परंतु 'नगमाते घासखी' की बिचारबारा से मात्र की सांकेतिक बिचार पाठ का बहुत कुछ तारतम्य स्थापित हो जाता है।

'नगमाते घासखी' की एक महत्वपूर्ण बात यह भी है कि पुराने ग्रन्थों में से सर्वप्रथम इसी में 'बिलावल' को स्पष्ट रूप से झुड़ ठाठ माना गया है। यही बिलावल ठाठ मात्र के संगीत की आधार बिम्बा है।

कृष्णानन्द व्यास

सन् १८४९ ई में हीरकानन्द के पुत्र कृष्णानन्द व्यास ने 'संगीत राग-कल्पद्रुम' नामक एक बिलुप्त ग्रन्थ का सम्पादन किया। यह ग्रन्थ भारतीय संगीत का विद्यालय कोष कहा जा सकता है। यह बार खण्डों में प्रकाशित हुआ था। कृष्णानन्द व्यास का झुड़ ठाठ भी बिभाजन ही प्रतीत होता है।

व्यास ने 'संगीत रत्नाकर' 'संगीत दर्पण' और 'राग माला' के स्वररूप्यों एवं रागाभ्यासों को आधार माना है। इसके बाद तत्कालीन उपमन्त्र सभी ध्रुवर तबाल इत्यादि को बिना स्वरमिति बिन्दे संगृहीत कर लिया है। यह संग्रह शीतों की दृष्टि से उपादेय है किन्तु स्वरमिति के अभाव में क्रियारमक संगीत की दृष्टि से इन शीतों की तत्कालीन बन्धित (वेद्यता) पर प्रकाश नहीं पड़ता। इसमें कोई सन्देह नहीं कि 'कल्पद्रुम' में संगृहीत बहुत से खयाल और ध्रुवर मात्र भी क्रियारमक संगीत में प्रचलित हैं तथापि वह निश्चयारमक रूप में नहीं कहा जा सकता कि उनकी बन्धित वेत्ती मात्र है वही ही कृष्णानन्द के युग में भी थी।

बाजिबघली शाह

ऐतिहासिक बिभासिना और रमिकता का उल्लेख रूप तत्काल के तबालों में स्पष्ट दृष्टिबोधर हुआ। बाजिबघली शाह तत्काल के अन्तिम तबाल थे। तुमरी-गायन के अन्तर्गत वे अल्प दृष्टि की प्राण्ड हैं। अन्तर्गत और ऐतिहासिक की जो प्रवृत्ति इन शीतों में बिद्यमान है वह संगीत-कला की ऐतिहासिक महत्वपूर्ण बिधेयता है।

प्रतिष्ठान कलाकार स्यास-नायक ही है। जहाँ तक राम रामिनी का प्रश्न है जयाल धीर ध्रुव में कोई अंतर नहीं है परन्तु स्यास की प्रकृति ध्रुव की टीसी की अपेक्षा जयाल है। जयालों में ठानों लटकों मुरदियों एवं ग्रन्थ प्राप्त कारिक प्रयोगों का प्राधिक्य होता है। रीतिकाल में यही गायन-टीसी प्रमुख बन गयी थी।

जयाल के गीत अतिकोमल शृङ्गारिक होते हैं। राम शब्दावली ऐसी होती है जिसमें किसी स्त्री की ओर से शृङ्गार के लघोम अथवा विप्लव पर की अभिप्रेक्षा होती है। रीतिकाल में जिस प्रकार कविता शृङ्गार रसात्मक एवं अलंकार प्रधान हो गयी थी ठीक उसी प्रकार उस युग का संगीत भी निरालम्ब शृङ्गारिक एवं अलंकार प्रधान बन गया था। रीतिकाल में कवि धीर गायक दोनों की बराबरी थी। जिस कारणों से उस युग के कवि को अपने प्राथम्य दाताओं की प्रशंसा के लिए शृङ्गारिक धीर अलंकारपूर्ण कविताएँ रचनी पड़ीं जहाँ कारणों से शास्त्रीय संगीतज्ञ की शृङ्गारपरक धीर अलंकार-सम्पन्न टीसी को अग्रगण्य पड़ा। मुघल मुसलमानी धीर संगीत उस युग के अरबों के विनाश के प्रमुख अकारण थे। उनकी शृङ्गारिक अभिव्यक्ति की दृष्टि में हमारी धीर जयाल-टीसी सख्य थी परन्तु संगीत की धारणा का यन्त्रीय स्वरूप ध्रुव-टीसी में ही सुरभित था अतः रीतिकामीन संगीतज्ञ ध्रुव की बरिमा भूत य सके। जयाल की अपेक्षा कम ही लड़ी किन्तु ध्रुव का प्रचार उस युग में भी था अत्यन्त। ध्रुव भी यद्यपि जय-रथ के परिवर्तन से ध्रुव-टीसी बहुत कुछ मुक्त ही हो गयी है परन्तु फिर भी जयाल-नायक ध्रुव के महत्त्व की मुक्तकण्ठ से स्वीकार करना है।

हिन्दी-साहित्य में जिस प्रकार लड़ीबोली का भूतपाठ अवीरलुसरो के युग में हो हो गया था धीर के ही इसके प्रथम आचार्य थे उसी प्रकार जयाल गायत्री के प्रथम गुरु होने का बीरव भी उन्हीं की प्राप्त है। धारो बलकर जीत पुर के मुन्नाम हुसैन यकी ने इस टीसी का परिष्कार किया। कामाक्षर में अंजम सेन मानवा के प्रतिपति बाजबहादुर, मूरख बाँ, मुसाम रगुल मुहम्मद धाह सयारंग अदरंग इत्यादि के द्वारा इस टीसी का परिष्कार, उन्नयन एवं प्रचार हुआ। जयाल के दो प्रकार हैं (१) बड़ा जयाल तथा (२) छोटा जयाल। छोटे जयालों की प्रकृति अपेक्षाकृत जयल होती है।

रीतिकालीन सगीत की प्रमुख शैलियों का शास्त्रीय अध्ययन

(स)

रीतिकाल में कल्पना का महत्व धारणिक बढ़ गया था। उम युग के कवियों के वाच्य-विश्रास में कारीगरी है और है एक-एक शब्द की भवराती जो अपने अन्तर्बन्धकार से पाठकों को आह्लाहित कर देती है।

अपमूर्त मनोवृत्ति को ध्यान में रखते हुए परिष्कृत नवीन पर विचार किया जाय तो यह भी अप्रकृत-कला-परिभा को छोड़ता हुआ कल्पना की उद्गम और अमूर्त अर्थजनन में उसी प्रकार परिवर्तित हुआ दृष्टिगोचर होता है जैसे मूर और तुलसी की कला बिहारी और हेम की कला में विवर्तित कियायी गयी है। अप्रकृत नामकी के ज्ञान के समानांतर लक्ष्मण गायत्री का अमूर्तपान और प्रचार होता था रहा था। अमान्त वस्तुतः फारसी भाषा का अर्थ है जिसका शाब्दिक अर्थ विचार, ध्यान या कल्पना है। अमान्त की इस गायत्री में तानों का विद्येय महत्व है परन्तु अप्रकृत में तान सर्वथा निषिद्ध है। परिणामतः अम की सुदृढता का निर्वाह बीता अप्रकृत में होता है बीता अमान्त में नहीं। तानों के अभाव से ही अमान्त गायत्री में कतिपय गतों के स्वरूप का परिवर्तन भी हुआ। उदाहरणार्थ अमान्तरी पहले कोमल रिपम से गयी जाती थी किन्तु अमान्त-गायत्री में अमान्त-रीती की इस अमान्तरी का निर्वाह करते हुए तानों में कोमल रिपम अमान्त कठिन प्रतीत हुआ अमान्त अमान्त-गायत्री में अमान्त तान जाती के कारण गुड रिपम को अमान्त अमान्त किया और अमान्तरी का रिपम के जाने लगे। १ भारतीय नवीन-रीतियों में अप्रकृत के अमान्त अमान्त का ही महत्व माना जाता है अमान्त अमान्त यहाँ इसी रीति पर विचार करना नवीन होगा।

अमान्त

अमान्त, अमूर्त अमान्त अमान्त-रीती में अमान्त हो जाते हैं। अमान्त के अमान्त नवीन में अमान्त अमान्त अमान्त रीती है। अमान्त अमान्त के २०

१ कोमल रिपम की अमान्तरी अमान्त एक अमान्त अमान्त अमान्त है।

प्रतिष्ठान-रूपाकार अयाम-भायक ही हैं। जहाँ तक राग-रागिनी का प्रश्न है अयाम और ध्रुपद में कोई अन्तर नहीं है परन्तु अयाम की प्रकृति ध्रुपद की शैली की अपेक्षा अल्प है। अयामों में तानों, छटकों मुरकियों एवं अन्य भासकारिक प्रयोगों का आधिक्य होता है। रीतिकाल में यही अयाम-शैली प्रमुख बन गयी थी।

अयाम के बीच अभिकांक्षित शृङ्गारिक होते हैं। प्रायः शब्दावली ऐसी होती है जिसमें किसी स्त्री की ओर से शृङ्गार के संयोग अथवा वियोग पक्ष की घनिष्ठ स्थिति होती है। रीतिकाल में जिस प्रकार कविता शृङ्गार रसात्मक एवं अलंकार प्रधान हो गयी थी ठीक उसी प्रकार उस युग का संगीत भी निताम्ब शृङ्गारिक एवं अलंकार प्रधान बन गया था। रीतिकाल में कवि और गायक दोनों की श्या समान थी। बिन कारणों से उस युग के कवि को अपने आश्रय वातावरणों की प्रसन्नता के लिए शृङ्गारिक और अलंकारपूर्ण कविताएँ रचनी पड़ीं जन्हीं कारणों से तत्कालीन संगीतज्ञ को शृङ्गारपरक और कलात्मक-सम्पन्न शैली को अपनाना पड़ा। सुरा सुन्दरी और सपीत उस युग के नरेशों के विभास के प्रमुख उपकरण थे। उनकी शृङ्गारिक अभिव्यक्ति की तुल्य में दुमरी और अयाम-शैलियाँ सक्षम थीं परन्तु संगीत की आत्मा का गम्भीर स्वरूप ध्रुपद-शैली में ही सुरभित था अतः रीतिकामीन संगीतज्ञ ध्रुपद की परिभा मूल न सके। अयाम की अपेक्षा कम ही सही किन्तु ध्रुपद का प्रचार उस युग में भी था अल्पम्। मात्र भी अल्प अल्प-रश्मि के परिवर्तन से ध्रुपद-शैली बहुत कुछ सुप्त सी हो जाती है परन्तु फिर भी अयाम-भायक ध्रुपद के महत्त्व को मुक्तकण्ठ से स्वीकार करते हैं।

हिन्दी-साहित्य में जिस प्रकार लड़ीबोसी का सूत्रपात अमीरकुसरो के युग में ही हो गया था और वे ही इसके प्रथम आचार्य थे उसी प्रकार अयाम भायकी के प्रथम बुद्ध होने का शौरभ भी उन्हीं को प्राप्त है। भावे अमरक जैन पुर के मुल्तान हुसैन खर्क ने इस शैली का परिष्कार किया। कालान्तर में अंजस सेन मासवा के अभिपति बाबबहाबुद, मूरख खीं युसाम रसूम मुहम्मद शाह उदारख अदार्ग इस्मायि के द्वारा इस शैली का परिष्कार, उन्नयन एवं प्रचार हुआ। अयाम के दो प्रकार हैं (१) बड़ा अयाम तथा (२) छोटा अयाम। छोटे अयामों की प्रकृति अपेक्षाकृत अल्प होती है।

चतुरंग

चतुरंग की स्मृत स्परेखा छोटे ख्याल के अनुसार होती है। रीतिकामीन चमत्कार-प्रदर्शन की दृष्टि इस शैली में भी स्पष्ट दिखायी देती है। इस प्रकार के गीतों में चार धंग होते हैं, इसीलिए इसे चतुरंग कहा जाता है। ख्याल तराना सरगम और त्रिबट (मूबंध के कोस) इन चारों की सहायता से इसकी रचना होने से चतुरंग का वैशिष्ट्य तो बढ़ जाता है किन्तु इसका हृदय-गत कुछ निराल रह जाता है।

तराना

ख्याल-नायक तराना जाने में भी प्रवीण होते हैं। इस शैली के गीतों की संवीतात्मक स्परेखा ख्यालों के समान ही होती है। जो तरान बड़े ख्याल की शैली पर रचे जाते हैं उन्हें 'ख्याल-नामा तराना' कहते हैं। अधिकतर नायक जो तराने गाते हैं उनका रूप बिन्दास छोटे ख्याल के अनुकूल होता है। लय का चमत्कार एवं द्रुत तालों का प्रयोग इस शैली की मार्मिक विशेषता है। तराने में शब्द-बोझना नहीं होती। ना ता रे, बानी ठोम चौहानी इत्यादि शब्दहीन शब्दों से ही इसका निर्माण होता है, फलतः इस शैली में चमत्कार प्रदर्शन का ही बाहुल्य रहता है।

टप्पा

रीतिकामीन प्रचलित शैलियों में टप्पा-शैली विशेषतः उल्लेखनीय है। मुरद और ख्याल-शैलियों से टप्पा-शैली अधिक हलकी है, फलतः इसकी तुलना में लयाल-शैली नहीं अधिक गम्भीर प्रतीत होती है। टप्पे के सम्बन्ध में यह भी उल्लेखनीय है कि टप्पे प्रत्येक राग में नहीं गाये जाते। प्रायः बापटी और भी गमाज बरबा बौजू जैसे रागों में ही टप्पे गाये जाते हैं। टप्पे की प्रकृति शून्य एवं गति चरम होती है। यद्यपि टप्पे में गीत-रचना करते समय इन बातों का ध्यान रचना प्रावर्तक हो जाता है। जिन रागों में टप्पे गाये जाते हैं उनका विस्तार भी अनेकानेक संवित्त होता है। यह तत्त्व भी इन बात का एक प्रमाण है कि रीतिज्ञान में भारतीय संवीत गम्भीर रागों गम्भीर तालों लड़े स्वरों के निर्बाह, स्वरस्वैयं तथा धक्ति एवं कीर भावों की छोड़ता हुआ कल्पना प्रमाण स्वर-संशोधन कष्ट-स्वर की शृङ्गारपरक कोमलता बरत कर शृङ्गार रसात्मक

मध्यम तथा प्रसिद्ध विष्णु-विधान में परिवर्तित हो गया था। उसका बहु-ध्वनि धीर-गम्भीर विराट्-स्वरूप बलत बुना था जो सुपद धरता उसका भी किमिक संगीत का सहज गुण था।

सम्भवतः टप्पा पहले पंजाब में छँट हूंकने नामे गाया करते थे।^१ उस समय यह सर्वथा अपरिष्कृत रूप में था। मुहम्मदशाह रंगीले के युग में घोरी द्वारा उसका परिष्कार हुआ। छोटी-छोटी मनोरम ठानों से इसकी स्फुरेखा को प्रसिद्ध करने घोरी ने इसे अतीव रोचक बना दिया। एक धीर प्रसंकरण की यह प्रकृति तथा दूसरी धीर टप्पे के भीतों में 'हीररांभ' के प्रेमोद्धारों की धार्मिकता टप्पे की गायकी धीर नायकी को सर्वतोभावेन रीतिकालीन वातावरण के अनुकूल बना देती है। राधा-रूप के बहाने से शृङ्गार धीर प्रसंकरण की ऐसी ही मनोकृति लोकासीन काव्य रचना में भी स्पष्टतः परिलक्षित होती है।

कहा जाता है कि घोरी मिर्जा ने टप्पे का आविष्कार किया था किन्तु राजा नुरेख्त मोहमद टैगोर ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'यूनिवर्सल हिस्ट्री ऑफ़ म्यूजिक' में घोरी को मुहम्मदशाह रंगीले के युग की एक गायिका माना है तथा उसके पति मुहम्मदशाह को टप्पे के भीतों का रचयिता कहा है जो टप्पे के भीतों में अपनी पत्नी घोरी के नाम को संयुक्त कर देता था २ अथ मुहम्मदशाह को ही टप्पे का आविष्कार मानना समीचीन है। प्रायः टप्पे के भीतों की भाषा पंजाबी मिश्रित हिन्दी होती है।

ठुमरी

धरम के मजाब बजियामी शाह के युग में संगीत की एक अतिधम्य अपन स्वरूप एवं शृङ्गारिक शैली का प्रचलन हुआ जो अतीव लोकप्रिय होते हुए भी प्राचीन संगीत के धार्मिक के परिवर्तित रूप की एक ऐतिहासिक कड़ी है।^३

१ इन्द्रध्वज-हिन्दुत्वानी संगीत पद्धति का हिन्दी अनुवाद

(भातखण्डे संगीत शास्त्र) प्रथम भाग, पृष्ठ-२६, प्रथम संस्करण

२ इन्द्रध्वज-हिन्दुत्वानी संगीत पद्धति का हिन्दी अनुवाद

(भातखण्डे संगीत-शास्त्र) प्रथम भाग पृष्ठ-६१, प्रथम संस्करण

३ 'धरम के मजाब बजियामी शाह ने ठुमरी नामक पान-शैली की परिपाटी बनाई। यह संगीतप्रणाली का अत्यन्त रोचक धीर शृङ्गारिक रूप है। इस समय धरम के समय के सुपद की गम्भीर परिपाटी मुहम्मदशाह द्वारा अनुमोदित जमान की अपन होकर, पण्डों के समय में आविष्कृत टप्पे की रक्त समय धीर लोकतन्त्र तथा बजियामी शाह के समय की रंगीली रंगीली

दुमरी की प्रतिष्ठित गृहकारिकता और एवं स्वरबैचिष्य के कारण यह वैसी बेस्वार्थों द्वारा विशेष कृत से घृहीत हुई। बहुत कुछ इसी कारण से उच्च श्रेष्ठ के अवाल या म्रुपव-गायक दुमरी प्राप्त नहीं पाते। तथापि यह एक अनुभूत सत्य है कि म्रुपव और अवाल की अपेक्षा दुमरी कहीं अधिक मधुर है। इष्ट-स्वर का माधुर्य बर्षीनापन और सूक्ष्मता निकटवर्ती विभिन्न रागों के मासिक स्वरों का कौशलपुन समन्वय आसाप के छोटे-छोटे टुकड़ों और हलकी तथा छोटी धारों या सुरकिबो से समंकरण कल्पना की मासिक एवं अंधी उद्गार पद्य एवं स्वर-संयोग से उत्पन्न भावुकता तथा उच्चरी सर्वथा स्वेन प्रकृति से दुमरी में जन-रंजन की प्रथम क्षमता समाहित कर ली किन्तु इसमें भी सन्देह नहीं कि इस धीमी द्वारा पूर्ववर्ती संगीत की गम्भीरता और स्निग्धता का उसी अनुपात से ह्रास भी हुआ। प्राचीन भारतीय संगीत के प्रतिनिधित्व का दावा दुमरी नहीं कर सकती। उसकी तुलना में तो दुमरी एर सुनहला स्वप्न एक भिन्नविध अक्षर और एर ऐसी मनोरम आन्ति है जो अपनी मिठास तथा अपने अलंकृत मीम्वर्य से एक तृपा तो उत्पन्न करती है किन्तु प्यास नहीं बुभाती।

दुमरी की उत्पत्ति का रहस्य अभी तक अज्ञात सा ही है। बौं तो वाजि-धनी शास्त्र तथा धनप के नबाबों के दरबार से सभी ने दुमरी का सम्बन्ध जोड़ा है परन्तु उक्त समय दुमरी का दरबार में प्रवेश इस तथ्य का आम्बस्मयान प्रमाण है कि दुमरी का यह स्वरुप सर्वथा प्रीड़ था। इसे दुमरी का प्रारम्भिक एवं पारिपूरित रूप सरमना ने स्वीकार नहीं किया जा सकता। सम्भवतः दुमरी जनता में पहले से ही प्रचलित थी किन्तु जब इसे राज-दरबार में बाने जाने का पौरव प्राप्त हुआ तब समाज में भी इसकी प्रतिष्ठा बड़ी तथा राज-दरबार के बुजुग वायकों के हाथों में पड़ने में यह धीमी मंज-नंबर कर और भी सुन्दर बन लगी। अनुमानत धनप प्राप्त के मीक बीतों में से ही किनी बुन ने विकसित होने-वाले दुमरी का रूप आरम्भ कर लिया होना और बुजुग वायकों के हाथों में पड़ने में इसमें पारशीय रागों की भमक का पबी शीगी। इस प्रकार

दुमरी अपने-अपने आध्ययताओं की मनोबुद्धि की ही परिचायक नहीं लोक की प्रीड़ रसि में जित कम से बतन हुआ, उतका इतिहास भी है।”

डा. दयानुम्बर दास द्वारा 'दुमरी भाषा और साहित्य,'
१९८-२६१, प्रथम संस्करण

एक धीरे तो हममें लोक गीतों जैसा उद्दाम आनन्द या मिठा धीरे ठुमरी धीरे कुसुम मायकों के द्वारा कलात्मक वैविध्य एवं चमत्कार व्याप्त हो गया। फलतः एक ऐसी अभिनव शैली की सृष्टि हुई जो ध्रुपद के पीछे धीरे गम्भीरता को बहुत पीछे छोड़ गयी तथा स्याल-मायकों की उचित लान-क्रिया न भी मुक्त होकर वाचस्प सौम्य सुकुमारता स्वर-माधुर्य साथ इत्यादि की विभाषनाया के कारण अपना सर्वथा स्वतन्त्र रूप भी घोषित करने में समर्थ हुई। इसके पीछों में उन्मुक्त शृङ्गार के वर्णन हुए गम्भीर सुन्दर और बमदार कण्ठ-स्वर के स्थान पर मिठान कोमलता और धार्द्रता से युक्त धानोष्णार एवं स्वरोष्णार को महत्व प्राप्त हुआ। साथ ही ठुमरी-गायक या गायिकाओं के मुक्त पर धनम् की उच्च रसिकता भी लक्ष्य उठी।

ठुमरी के साथ सबसे की जो संगत की जाती है वह उसकी कोमलता एवं सुकुमारता को उनी प्रकार स्पष्ट कर देती है जिस प्रकार ध्रुपद गाते समय मेघ-ध्वनि के समान गम्भीर बोधयुक्त मूर्धन्य-बादन ध्रुपद की परपना एवं गम्भीरता को स्पष्ट कर देता है। ठुमरी के साथ सबसे की संगत में सय-बोट के कामों या बड़ी-बड़ी परतों की धाब-दकता नहीं होती। यहाँ तो विभिन्न सगियों धीरे छोटे-छोटे मुन्कों के द्वारा ही सबसे की मयत उपयोगी सिद्ध होती है। ठुमरी में प्रयुक्त होने वाली तालों की प्रकृति भी गम्भीर न होकर चपल होती है। बीपचम्पी घडा त्रिताम बापरा कहरवा जैसी चमती हुई तालों एवं चपल प्रकृति के समाज पीछे काशी धानो तिसंग छिन्नीटी देण भैरवी जैसे रागों में ही प्रायः ठुमरी गायी जाती है।

गजल और त्रिवट

रीतिकामीन प्रमुख धैत-धैतियों में ही हैं। इनके धैतिक त्रिवट गजल इत्यादि कतिपय धम्य धैतियों भी उक्त युग में प्रचलित थीं। इनमें भी चमत्कार और स्पष्ट शृङ्गारिकता का ही आधान है। त्रिवट में मूर्धन्य इत्यादि के बोधों को रागबध करके चमत्कार का उद्रेक किया जाता है और गजल तो सर्वथा शृङ्गारपरक है ही। सबसे में शृङ्गारिक धम्य-योगता का प्राधान्य होने के कारण संगीत की स्वरात्मक धम्यध्वनि धमेसाहृत सीध हो जाती है।

ठुमरी की प्रतिष्ठित गृहकारिकता शीघ्र एवं स्वरसौखिन्य के कारण यह सीमा बेशर्माओं द्वारा विधेय कृत से गृहीत हुई। बहुत कुछ इसी कारण से उष्ण कोटि के मयास या श्रुपव-नायक ठुमरी प्रायः नहीं गाते। तथापि यह एक अनुभूत शरय है कि श्रुपव धीर ब्रह्मास की अपेक्षा ठुमरी कहीं अधिक मधुर है। कण्ठ-स्वर का माधुर्य दर्शनापन धीर सूक्ष्मता त्रिकटवर्ती विभिन्न रगों के मासिक स्वर्तों का कौशलपूर्वक सम्बन्ध धामाय के छोटे-छोटे टुकड़ों धीर इसकी तथा छोटी तानों या मुरकिबों से धर्मकरण कल्पना की मासिक एवं ठेपी उद्गम धर्म एवं स्वर-संयोग से उद्भूत भावुकता तथा उसकी सर्वथा स्नेय प्रकृति में ठुमरी में जन-रंजन की बल्य क्षमता समाहित कर दी किन्तु इसमें भी शक्य नहीं कि इस शैली द्वारा पूर्ववर्ती संघीत की गम्भीरता धीर स्निग्धता का जमी अनुपात से ह्रास भी हुआ। प्राचीन भारतीय संघीत के प्रतिनिधित्व का दावा ठुमरी नहीं कर सकती। उसकी तुलना में तो ठुमरी एर सुनहला स्वल्प एक श्लिष्टमिन्न असाक धीर एक ऐसी मनोरम आन्ति है जो अपनी मिठास तथा अपने धर्मकृत शीघ्र से एक तृपा तो उत्पन्न करती है किन्तु प्यास नहीं बुझाती।

ठुमरी की उत्पत्ति का रहस्य अभी तक अज्ञात सा ही है। यों तो वाचिक धमी धाड़ तथा प्रबध के मन्त्रों के दरबार से सभी ने ठुमरी का सम्बन्ध जोड़ा है परन्तु उम ममम ठुमरी का दरबार म प्रवेश इस तथ्य का वाच्यस्वभाव प्रमाण है कि ठुमरी का वह स्वरूप सर्वथा प्रीङ्ग था। इसे ठुमरी का प्रारम्भिक एवं धर्मरिष्णु रूप शरमता से स्वीकार नहीं किया जा सकता। सम्भवतः ठुमरी जनता में बहस से ही प्रथमित की किन्तु जब इसे राज-दरबार में माये जाने का धीरव प्राप्त हुआ तब मन्त्राज में भी इसकी प्रगिष्ठा बड़ी तथा राज-दरबार क कुशल गायकों के हाथों में पढ़ने म यह शैली मंत्र-मंत्र कर धीर भी सुन्दर बन गयी। अनुमानन अथव प्राप्त के लोफ गीतों में से ही किमी बुन ने विक्रमिन्ति होने-ही। ठुमरी का रूप धारण कर लिया होया धीर कुशल गायकों के हाथों में पढ़ने में शगमें शास्त्रीय रागों की अन्तक सा गयी हीयी। इस प्रकार

ठुमरी अपने-आपने धामयवाताओं की अनोवृति की ही परिचायक नहीं लोक की प्रीङ्ग रवि में जिस कथ में बतन हुआ, उतका इतिहास भी है।”

एक धीरे तो हममें लोक गीतों जैसा उदात्त भावेन या मिमा धीरे बुरी धीरे कुसल मायकों के द्वारा कलात्मक वैचित्र्य एवं चमत्कार व्याप्त हो गया फलतः एक ऐसी घनिष्ठ शैली की सृष्टि हुई जो द्रुपद के पौड्य धीरे गम्भीरता को बहुत पीछे छोड़ यद्यपि तथा जयल-गायकों की अटिस ताक-किया से भी मुक्त होकर वाचस्पत्य सौन्दर्य सुकुमारता स्वर-माधुर्य लोच इत्यादि की विशेषताओं के कारण अपना सर्वथा स्वतन्त्र रूप भी घोषित करने में समर्थ हुई। इसके गीतों में उमुक्त शृङ्गार के वर्धन हुए गम्भीर बुलन्द धीरे बमबार कण्ठ-स्वर के स्थान पर मिठास कोमलता धीरे धार्मिता से मुक्त सम्बोधन एव स्वरबोधन को महत्व प्राप्त हुआ साथ ही ठुमरी-गायक या गायिकाओं के मुख पर अलम् की उद्य रचिकता भी क्षिप्त रही।

ठुमरी के साथ तबले की जो संयुक्त की जाती है वह उसकी कोमलता एवं सुकुमारता को उसी प्रकार स्पष्ट कर देती है जिस प्रकार द्रुपद गाते समय मेघ-ध्वनि के समान गम्भीर बोधमुक्त मूर्धन-बाधन ध्रुपद की पर्यता एवं गम्भीरता को स्पष्ट कर देता है। ठुमरी के साथ तबले की संगत में सय-बाँट के कामों या बड़ी-बड़ी परलों की आवश्यकता नहीं होती। यहाँ तो विभिन्न लयियों धीरे छाने-छाने मुकड़ों के द्वारा ही तबले की संयुक्त उपयोगी सिद्ध होती है। ठुमरी में प्रयुक्त होने वाली ठासों की प्रकृति भी गम्भीर न होकर चपल होती है। शीघ्रचाली घड़ा मिठास बादरा कहरबा जैसी बसती हुई ठासों एवं चंचल प्रकृति के समाज पीसू, काफ़ी धानी तिसंग मिंभोटी देव भैरवी जैसे रागों में ही प्रायः ठुमरी गायी जाती है।

गजल और त्रिवट

रीतिकालीन प्रमुख पीठ-स्थितियों में ही हैं। इनके घटितरिक्त त्रिवट गजल इत्यादि कविप्रिय ग्रन्थ स्थितियाँ भी उस युग में प्रचलित थीं। इनमें भी चमत्कार धीरे स्थूल शृङ्गारिका का ही आवागम्य है। त्रिवट में मूर्धन इत्यादि के बोझों को रामबद्ध करके चमत्कार का उल्लेख किया जाता है धीरे गजल तो सर्वथा शृङ्गारपरक है ही। गजल में शृङ्गारिक अन्व-बोधना का आभाव होने के कारण संकीर्ण की स्वरात्मक घनिष्ठता प्रवेष्टाहृत क्षीय हो जाती है।

अभंग, भजन हत्यादि

रीतिकाल में भजन-कीर्तन-रीती भी प्रचलित थी किन्तु इसका महत्त्व नैसा ही है वैसे इस युग की निर्बुद्ध भजना समुप भक्ति पाठ का है। जिस प्रकार बीरकाव्यबारा भजना भक्ति-बारा इस युग की मुख्य काव्याभिव्यक्ति से प्रलय है उसी प्रकार इस युग में भजन-रीती भी तत्कालीन सामान्य सभी तारमक प्रकृति से पृथक् थी। जयदेव के 'गीत गोविन्द' से जनी घाठी हुई पर म्यरा विद्यापति और मूर पर भयना प्रभाव डालती हुई भजन-कीर्तन की रूप रेखा में परिवर्तित हो जनी थी। वैतम्ब सम्प्रदाय के कारण कुम्भावन में उन दिनों भजन-कीर्तन का बोसबाला था। महाराष्ट्र तुकाराम के भर्मनों से मुखरित था। बंगमाष्टमी रामनवमी जैसे अवसरों पर मूर तुमसी और मीरा के पर माये जाते थे किन्तु निम्बार्क वैतम्ब राजावस्समीय हत्यादि सम्प्रदायों में राया की महत्ता स्थापित हो जाने के कारण भर्म के शृङ्गारपरक रूप का प्रभाव इन रीतियों पर भी पड़ा। फलत मूर तुमसी के युग में प्रचलित ससकन पर रीती अब भक्ति में सहज आ जाने वाली शृङ्गारिकता को लेकर भजन-कीर्तन का स्वरूप धपना चुकी थी। शैक्षिक परामत्र से युक्त एवं नैतिक बल से लीन तत्कालीन हिन्दू-जनता अब इसी माध्यम से अपनी पात्मिकता को अभिव्यक्त करके निराप मन को बहुमान का प्रयत्न कर रही थी।

इस धम्मयन के निष्कर्ष स्वरूप यह कहा जा सकता है कि

१ रीतिकालीन संगीत झुपर-रीती के आमाप-वधान बम्भीर स्वरूप को छोड़ता हुआ लानों के जमलहत चातुर्य से सम्पन्न लयास तराना टणा जतुरंग हत्यादि रीतियों को धपाने लया था।

२ रीतिकालीन शृङ्गारिकता के अनुकूल दुमरी रीती भी इस युग में पर्याप्त विकसित हुई।

३ उपर्युक्त बातों बाते धनायाम ही धम्मता का ध्यान इस लप्य की धोर आकृष्ट कर देती है कि जिस प्रकार रीतिकालीन कविता में शृङ्गार प्रियता और जमलकार-वदरपंद की अभिव्यक्ति जापकक हो चुकी थी उठी प्रचार उस युग क संगीत में भी यही मनोवृत्ति धियमाय थी।

४ लयास दुमरी टणा हत्यादि रीतियों का विषय प्रचार मुमसमानी सामन-नाम में ही हुआ अत सामान्यतः यही धमध्य जाता है कि ये रीतियों प्रदानतः मुनसमानों की ही देन है।

१. रीतिकाम में भक्तिकामीन काव्य की पद-शैली भी प्रचलित थी जिसे संगीत में भजन-शैली के नाम से अभिहित किया जाता है। राधा बल्लभिय निम्बार्क इत्यादि सम्प्रदाय के कवियों द्वारा इस युग में माधुर्य-भावना की प्राप्ति लेकर ऐसे पद लिखे जा रहे थे जो रीतिकामीन शृङ्गारिक मनोवृत्ति के अनुकूल थे और जनता भजन के रूप में इन पदों को अपनाकर धर्म-स्थापन और मनोरंजन एक साथ ही कर सठी थी।

परिच्छेद ६

रीतिकालीन काव्य और सांगीतिक प्रवृत्तियों

तथा

उनका पारस्परिक सम्बन्ध

रीतिकालीन काव्य और सांगीतिक प्रवृत्तियों

तथा

उनका पारम्परिक सम्बन्ध

परिच्छेद-६

ऐतिहासिक दृष्टि से विजयी संवत् १७०० से १९०० तक का समय हिन्दी साहित्य में रीतिकाल के नाम से अभिहित है। इस युग के कवियों में प्राचा-यत्न की स्पष्टता और शृङ्गारिकता का मोड़ व्यापक रूप से विद्यमान था। कवियों के इस विशिष्ट दृष्टिकोण ने कविता-कामिनी के बाह्य सौन्दर्य तथा उसके परीर के प्रसंकरण को इतना अधिक महत्त्व दिया कि बहु धीर्य का प्रतिश्रम कर जाने के कारण किसी सीमा तक भार रूप ही रहा। रीतिकाल की इन प्रवृत्तियों को देखकर कतिपय आलोचकों ने इस युग को शृङ्गार कामः प्रवृत्ति प्रसंकार-कालः जैसे नामों से स्मरण करना अधिक समीचीन समझा है किन्तु अधिकतर विद्वान् इसे रीतिकाल के नाम से सम्बोधित करना ही अधिक संगत मानते हैं। १३

१. रीतिकाल कहने से इनकी रचनाओं के विभाजन का कोई मार्ग नहीं मिलता। पर शृङ्गार काल कहने से स्पष्ट विभाय दिखायी पड़ते हैं, यतः इसे वर्तमान-प्रतापी के विचार से रीतिकाल न कहकर वर्ण्य के विचार से शृङ्गार काल कहना अधिक सुविधानिक प्रतीत होता है।

४० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा 'बाह्यम विनयं
पृष्ठ-२४३, तृतीय संस्करण

२. इच्छा—विषयानु विनोद'

पृष्ठ १४३, प्रथम संस्करण

३. 'अतो चलकर यह प्रथा इतनी प्रचलित हुई कि बिना रीतिप्रत्य लिखे कवि-कर्म पुरा नहीं समझा जाने लगा। हिन्दी-साहित्य के इस काल को हम इसीलिए रीतिकाल कहते हैं।'

डा० स्वामिनन्दर दास द्वारा 'हिन्दी भाषा और साहित्य'

प्रथम संस्करण, पृष्ठ-३२४

रीति

संस्कृत 'रीति' शब्द सम्प्रदाय विधेय से सम्बद्ध है। शासन ने इस शब्द का प्रयोग करते हुए विधिष्ठ पर रचना को रीति कहा था।^१ किन्तु हिन्दी-रीतिकाल में रीति-सम्प्रदाय का अनुसरण कभी नहीं हुआ। सम्भवतः रीतिकाल का कवि यह जानता था कि उसका युग कभी रीतिकाल के नाम से पुकारा जायगा। रीतिकालीन कवियों का ध्यान प्रीति विवेचन और शब्द-मञ्जरी से लटका रहकर काव्य-रूपा की परिपुष्टि और रचना सम्बन्धी नियमों की स्थापना में अधिक व्यस्त था। अतः हिन्दी में रीति शब्द जिस व्यापक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है उसे हिन्दी का अर्थ मान लेना उचित नहीं है।^२ क्योंकि हिन्दी में इस शब्द ने अपने साम्प्रदायिक अर्थ का परिष्कार करके सामान्य अर्थ ग्रहण कर लिया है। आचार्यत्व के ब्यामोह में पड़े हुए इस काल के कवि की अन्तःप्रवृत्ति बहिष्कार करने या तिलने की रीति के विषय में क्रियाशील दृष्टि रखती है। यही रीतिकालीन कवियों का रीति-निरूपण है और यही है उनका आचार्यत्व।

सीन प्रकार के कवि

काव्य रचना का मार्ग प्रशस्त करने के उद्देश्य को लेकर इन युग में जो कवि हुए उन्हें सहज ही तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। एक घोर तो विन्यासविद् है व मुरति मिथ भीषति बाध प्रतापघाहि कुसपति मिथ जैसे कवि व जिन्हें सहायकार या आचार्य कवि कहा जा सकता है, दूसरी घोर विहायी प्रीतिम मैत्राय समिधि पत्रनेन सीनरूपामपिरे इत्यादि के जिन्होंने रीति गुण शीघ्र काव्य-अक्षय काव्य-प्रयोजन अर्थकार, मादिका-श्रेष्ठ शब्द शक्ति इत्यादि के निरूपण से दूर रहकर कविताएँ लिखीं किन्तु जिनकी रचनाएँ निरन्तर ही रीतिबद्ध ही हैं। रीति-परम्परा में अतिसूक्ष्म पाठक के लिए तो इनकी रचनाओं का पूर्वतः समास्वादन भी सम्भव नहीं है। पनामन्ड ठाकुर, बोधा व्यास इत्यादि कवि रीतिबद्ध काव्यशास्त्र के अन्तर्गत आते हैं। इनकी रचनाओं में काव्य रीति का निरूपण तो है ही नहीं साथ ही वे किसी परम्परागत

१ 'विधिष्ठ पर-रचना रीति' 'काव्यालंकार सूत्र' १।२।३।

२ इष्टम्य—'रीति काव्य की अन्विति'

काव्य सिद्धान्तों के पक्ष में भी नहीं पड़े। ये प्रयोग-तत्त्व कवि अपने हृदय की निरपेक्ष अभिव्यक्ति में तत्पर थे।

प्राचार्य कवि (रीति-सिद्ध)

रीति-निरूपण करने वाले प्राचार्य कवियों के द्रव्य प्रधानता तीन विभिन्न रीतियों में है। १. प्रथम श्रेणी के द्रव्यों में सम्पूर्ण काव्यायों का विवेचन किया गया है जैसे चिन्तामणि कृत कवि-कुल-निरूपण और 'काव्य-विवेक' के कृत 'काव्य-प्रायण' कुमार मणि शूद्र का 'शक्ति-रसम-प्रथाप-साहि' का काव्य-विवेक' इत्यादि। इन द्रव्यों में सम्पूर्ण कृत 'काव्य-प्रकाश' की निरूपण-शीली का अनुसरण हुआ है। इस में सर्वत्र नहीं कि इस रंग के कवियों ने काव्य-शास्त्र का पम्पनीर अभ्ययन किया या किन्तु एक-ठा उस युग में पद्य का सम्पूर्ण विकास न हो सकने के कारण इन्हें विषय के पदा विधि निरूपण और सूक्ष्म विवेचन की मुविधा उपलब्ध न हो सकी इनके प श्लोक-प्रायण-कृता से अधिक संस्कृत के प्रायण में था पद्य के पक्ष में हिन्दी में संस्कृत-भाष्य-शास्त्र की संक्षिप्त करनेका ठो था पद्यी किन्तु पूर्ववर्ती हिन्दी-साहित्य के अनुशीलन के आधार पर हिन्दी के काव्य-शास्त्र का स्वतन्त्र आधार बना न हो सका। सत्य के आधार पर ही सत्य का विवेचन होता है किन्तु रीतिकाम का कवि संस्कृत से सत्यों को लेकर हिन्दी में उनका लिए सत्य निर्माण में सतप्त हो उठा और यही वह भूल की जिसने सत्य काव्य और सत्यपद्यों के सामन्त-व्यय का विपाड़ दिया।

प्राचार्य की प्रायण से निकले हुए इनके श्रेणी के द्रव्य के हैं जिनका प्रतिपाद रस-विवेचन है किन्तु रस के नाम पर इनमें कर्षा प्रायः शूङ्गार रस की ही हुई है। शूङ्गार के अतिरिक्त द्रव्य रसों का विवेचन अनुपात में कम है। प्रायः या तो गतानुपलब्धता के आधार से इन द्रव्यों में इतर रसों का वर्णन हो गया

१ इन्द्रव्य (क) पण्डित चिरकनाथ प्रसाद मिश्र कृत 'काव्य-विवेक'
(साहित्य का इतिहास शूङ्गार काल)

(ख) डा० हुमायूँ प्रसाद त्रिवेदी कृत 'हिन्दी साहित्य' रीति-
काव्य (संस्कृत के अन्तर्गत-शास्त्र का प्रकाश)

है या फिर नव रसों की बात मान उठाकर और किसी प्रकार ओड़ोड़ लगाकर धर्म्य रसों को गूँजार में धस्तर्भूत कर दिया गया है।^१

गूँजार रस के विवेचन में इन भाषायों ने मुख्यतः धानुबत की 'रस तरणिणी' को धपना आधार बनाया। कुछ व्यापक दृष्टि से विचार करने वाले हिन्दी-भाषायों ने 'काम्य प्रकाश' 'साहित्य-दर्पण' 'रस नयावर' और 'नाट्य-शास्त्र' का भी सहारा लिया। मुरति मिथ चिन्तामणि दर भीपति प्रताप साहि इत्यादि ऐसे ही भाषायें हैं। केचकरास की 'रसिकप्रिया' चौपकृत 'मुवा-निधि' कुमपति रचित 'रस रस्य' सुखदेव मिथ प्रणीत 'रसार्थ' इत्यादि का प्रतिपाद्य रस-विवेचन ही है। इन पुस्तकों में रसों के स्वायी भाव सामम्बन विभाव उहीपन विभाव, लंकारी भाव इत्यादि के लक्षण और उदाहरण उपस्थित किये गए हैं।

इसी वर्ष के धस्तर्भूत उन पुस्तकों को भी रखा जा सकता है जिनका विषय नायिकाभेद रहा है। नायिकाभेद वस्तुतः गूँजार रस के सामम्बनों का सूत्रम और उरत विवेचन है, धत गूँजार रस पर मिलने वाले हिन्दी-भाषायों का मन नायिका भेद में पर्यन्त रमा। चिन्तामणि कृत 'गूँजार-मंजरी' देव लिखित 'मुख लानर तरण एवं 'जाति-विमाल' भिन्तारीबास कृत 'गूँजार-विषय' धारि धर्मों का प्रतिपाद्य नायिका भेद ही है। हिन्दी-भाषायों से पूर्व भारत के 'नाट्यशास्त्र' के बाईसवें धर्म्याय में तथा धरमदृ के 'गूँजार तिसक में नायिका-भेद की वर्णों हो चुकी थी। कुप परिस्थितियों के कारण हिन्दी के रीतिकाल में यह विषय पुनः विधेय रूप से लौकप्रिय हो गया। इस युग में राजदरबारों का विमालधूर्म रंजीन वातावरण हृदय को छड़का देने वाली सूक्तियों के ही उपकुल रह गया था धत रीतिकालीन नायिका-भेद का आधार काम्य-शास्त्र उतना नहीं है जितना काम-शास्त्र। वस्तुनः इमी दरबारी वातावरण ने उस युग में गूँजारिकता की एक प्रभावधूर्म साहित्यिक प्रकृति बना दिया था। राजदरबारों में कवि विमान का जो बीभव देनता था उमी के उत्तेजक विध भी जनारने समता था। कवि की वक्ष्यता के रंग से रंग कर ये चित्र और

१ 'अव हू रस की भाव, अनु तिनके विध विधाट,

कवनों केचकरास हृदि, नाइक है गूँजार।

'केचकरास वक्ष्यता' (लम्पारक विरचनाय प्रताय विध)

(रसिक प्रिया) १ १६

भी बढ़कीसे हो जाते थे । बाह ! बाह ! भी ऐसी ही कविता पर मिसली की प्रथम सांस्कृतिक कवियों में शृङ्गारिक कविता के निर्माण में स्वर्ण उत्पन्न हो गयी थी । यही कारण है कि इस युग में प्रायः सभी कवियों का मन शृङ्गारिक रचनाओं में ही प्रतिक्रमा तथा भागे चलकर यह युग ही शृङ्गारिककाम के नाम से प्रसिद्ध हुआ । इस काम के साधारणकवियों ने भी शृङ्गार रस को प्रधानता प्रदान कर अन्य रसों का बसता बर्जन करके ही संतोष कर लिया ।

तीसरी श्रेणी में वे ग्रन्थ आते हैं जिनमें मात्र प्रसंकारों के सदन एवं उदाहरण मिले गये । करनेसे रचित कर्णभरण एवं 'भृति भूषण' अथवा 'सिंह' इत्यादि 'मापामुपण' अतिशय का 'भक्ति ललाट' जैसे ग्रन्थ इसी वर्ग में आते हैं । इन प्रसंकार ग्रन्थों में प्रसिद्धतम जयदेव के 'चन्द्रालोक' और प्रणय दीक्षित के 'कुवलयानन्द' का साधारण ग्रहण किया गया है परन्तु उदाहरण प्रायः स्वतन्त्र हैं । इस श्रेणी के ग्रन्थों में सबसे महत्त्वपूर्ण रचना अथवा 'सिंह' इत्यादि 'मापामुपण' है । इसी रचना के अनुसरण पर भागे चलकर सुरति मिश्र भूपति सम्भुताम मिश्र बैरीसास पद्माकर इत्यादि ने क्रमशः 'प्रसंकार माला' 'कंठाभूषण' 'प्रसंकार दीपक' 'मापामुपण' पद्माभरण इत्यादि ग्रन्थों की रचना की ।

रीतिकामीन साधारणों ने जो प्रसंकार-ग्रन्थ लिखे उनमें शब्दासंकारों की उपेक्षा और प्रसंकारों की महत्ता स्पष्ट परिलक्षित होती है । इसका मूल कारण 'चन्द्रालोक' का अनुसरण है । जयदेव के 'चन्द्रालोक' में शब्दासंकारों की महत्ता नहीं मिसली है, अतः रीतिपुत्री कवियों के प्रसंकारों में भी अपने आप शब्दासंकारों की उपेक्षा हो गयी किन्तु यह स्थापना उनकी वास्तविक रसि का प्रतिनिधित्व नहीं करती । वस्तुतः रीतिपुत्री कवि शब्दों की कारीबरी में समकाल रस के और निश्चय ही उन्हें शब्द शीका प्रतीक प्रिय थी ।

शाब्दासंकार का प्रभाव

हिन्दी में रीति-ग्रन्थों का प्रथम करने वाले जो साधारण-कवि हुए उनमें शाब्दासंकार की वास्तविक प्रतिमा का प्रभाव था । शाब्दासंकार के लिए जिस सूक्ष्म महत्ता और सांगोतिक व्याख्या की आवश्यकता है उसका हिन्दी साधारणों के रीति ग्रन्थों में प्रकाश ही है । हिन्दी के काव्य-शास्त्री वस्तुतः शाब्दासंकार नहीं कवि थे । रीति-ग्रन्थों का प्रथम तो उन्होंने अपने युग के कवि-पद्य-पालन के हेतु ही किया था । उस काल में बही उच्च कोटि का विद्वान् कवि समकाल पाठा था जो कड़कती हुई कविदार्पण रचने के अतिरिक्त शास्त्रीय प्रयोगों का भी

प्रथम करता था। अतः आचार्यत्व की स्पृहा ने अनेक कवियों की रीति-बन्धों के निर्माण की श्रमा की। परन्तु सबसे अग्र में आचार्य बहूताने वाले चिन्ता-मणि वैद्य सुरति निम्न शीपति दास प्रताप साहि रचित योचिन्त जैसे छ-छात कवियों को छोड़कर रीतिकाल के पूरे ही सौ वर्षों की अवधि में और कोई अधिकारी आचार्य-कवि नहीं हुआ। इन कवियों ने रस नाम ध्वनि प्रसंकार, युग बोध रीति विषय इत्यादि काव्य के सभी आन्वयक अंगों का अपेक्षाकृत गम्भीरतापूर्वक निरूपण किया है।

इस युग के काव्य-शास्त्रियों की विवेचना चाहे संस्कृत काव्य-शास्त्रों पर आधारित हो किन्तु उनके उदाहरण प्रायः स्वरचित ही हैं। संस्कृत-साहित्य के उत्तर काल के कवियों ने भी मत्तमो के स्वरचित उदाहरण देने आरम्भ कर दिये थे किन्तु साध ही वे काव्य कविता की रचनाया की भी निर्धारित लक्षणों के उदाहरण स्वरूप निस्संकोच प्रहण कर सके थे। ऐसा करने से उनका ध्यान लक्ष्यों की ओर बना रहता था अतः उनकी विवेचना-शक्ति कुण्ठित न हुई। किन्तु स्वरचित उदाहरण मात्र उपस्थित करने के कारण हिन्दी-कवियों की विवेचन-क्षमता विकसित न हो सकी। दूसरों की कृतिषो के युग-बोध-विवेचन में लक्ष्यों की सूक्ष्म विवेचनाओं पर ध्यान केंद्रित रहता है, किन्तु अपनी रचना में मत्तम की ओर अपना ध्यान नहीं रहता अतः लक्षण की ओर। इसके प्रति रचित कवि अपनी कवि के अनुकूल विषय पर तो मुग्ध रचना कर लेता है किन्तु जो विषय कवि के प्रतिबन्ध होते हैं उनको अज्ञेय कर बैठता है अतः रीतिशास्त्रीय कविता ने उन विषयों के लक्षणों की भी अज्ञेयता की जो उनकी कवि के अनुकूल नहीं थे। अतः तो यह है कि रीतिशास्त्रीय कवियों में विचार रूप से सिद्धान्त-निर्माण का पूरा आशय था ही नहीं। वे कवित्व-शक्ति से तो सम्पन्न थे परन्तु आचार्यत्व के गौरवपूर्वक पद के अधिकारी नहीं। इसी कारण उनके द्वारा रस और ध्वनि-शक्ति के उदाहरण प्रचुर रूप में निर्मित हुए, परन्तु काव्यांगों का सैद्धांतिक विवेचन सम्पन्न रूप से न हुआ सका। अतः उदाहरणों की सर्वथा ही तो य कवि अपने पूर्ववर्ती उन सरहृदय कवियों को भी बहुत पीछे छोड़ दिये अतः शास्त्रीय अंगों का आधार लेकर वे काव्यांगों के निरूपण में असमर्थ हुए थे। ११

१. इन रीति-बन्धों के अन्तर्गत आहुत सहस्रों और निरुक्त कवि थे। उनका उदाहरण कविता करना था न कि काव्यांगों का शास्त्रीय पद्धति पर निरूपण

मीसिकता का अभाव

ऐतिहासिक में संस्कृत-काव्य-शास्त्र के ग्रन्थ अपनी बुलबुलता और सूक्ष्म ब्रह्म पोड के कारण सामान्यतः दुर्बोध हा यम य । इपर कवि-कर्म करने वालों के लिए काव्य-शास्त्र का बोझ बहुत ज्ञान अनिर्धार्य वा अत इन प्राचार्यों न अपने पूर्ववर्ती संस्कृत के काव्य शास्त्रियों की साम्यताओं के आधार पर अपने ग्रन्थों की रचना तो की परन्तु मीसिकता के अभाव में ये लोग कोई नूतन उद्भावना न कर सके । नूतनता का तो प्रश्न ही क्या है यदि ये लोग मूल ग्रन्थों के सूक्ष्म विवेचन का सम्यक्काम्येन अध्ययन करके उनका बोधगम्य सुपर अनुवाद ही प्रस्तुत कर सकते तब भी बड़ी बात होती । किन्तु इन युग की मनोवृत्ति समिकता का भावर करती थी काव्यशास्त्रोप सूक्ष्मातिनूदन में ही उपमर्शों के विवेचन और विरूपण का नहीं । यह भी एक कारण है जिससे काव्य-ममत्र होने हुए भी इस युग के विद्वान् यन्मीर पर्यालोचन की ओर उन्मुख न हा सके । यद्यपि इन लोगों ने परिचर्तन परितोषन और मनीन उद्भावनाओं के लिए काफी हाथ पैर मारे हैं परन्तु इस ओर तीव्र धमिरचि न होने से उन्होंने संस्कृत-काव्य शास्त्र का यथाचित यन्मीर अध्ययन नहीं किया अत उनके ग्रन्थ भी निर्भ्रान्त न रहे । उनका उद्देश्य शास्त्र-बर्षा का ही नहीं वे तो इसी बहाने अपनी कला का प्रदर्शन मात्र कर रहे थे । हिन्दी के इन प्राचार्यों की तपाकषित मनीन उद्भावनाएँ मा तो संस्कृत की अनेसाहस कम प्रसिद्ध पुस्तकों से घृहीत होने के कारण मनीन ही प्रतीत होती हैं मा वे प्रायः आमक हैं । देव का 'अम संचारी मनीन उद्भावना नहीं उसका आधार मानुसत की रम तरगिनी' है । ११ अत

करना । अत उनके द्वारा बड़ा भारी कार्य यह हुआ कि रसों (बिरीयत गुञ्जार रस) और अतंकारों के बहुत ही सरस और हृदयप्राही उदाहरण प्रत्यक्ष प्रचुर परिमाण में प्रस्तुत हुए । ऐसे सरस और मनोहर उदाहरण अस्तित्व के लारे सलसु-ग्रन्थों से चुनकर इकट्ठे करें तो भी उनकी इतनी अधिक संख्या न होगी ।

प्राचार्य रामचन्द्र धुरत इत 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास'
पृष्ठ-२१६ संस्करण सं० १९९९

१ इच्छय-

- (क) प्राचार्य रामचन्द्र धुरत इत 'हिन्दी साहित्य का इतिहास'
पृष्ठ २१६ संस्करण मधु १९९९
- (ख) पं० विरवनाथ प्रताप विषय इत 'आद्यमय-विमर्श'
पृष्ठ २३३-२३४ तुतीक संस्करण

को सरलतापूर्वक व्यवहृत्वा क प्रत्यर्गत सिखा जा सकता है । वेग में अपनी विस्तार में ही बहि से प्रेरित होकर 'भाव-विभास में मृङ्गार के लौकिक पलीकिक प्रभृति भेद और शक्ति के प्रम भक्ति, गुड शक्ति और गुड प्रेम इत्यादि के जो बर्ण उपस्थित किये हैं वे भी पूर्ववर्ती ग्रन्थों पर प्रापृत हैं । यही नहीं रीतिकामीन कवियों का भाव-विशेषन भी सतोपश्रव नहीं है । दास द्वारा बर्णित इन कवीन द्वारा 'साहित्य बर्णन' में विनाये गये नायिकाओं के १८ स्वभावज प्रसकारों से चुन लिये गये हैं तथा विद्यामणि केयव देव कृत नायिकाभेद विस्तार और विरूपय भी पूर्ववर्ती संस्कृत ग्रन्थों पर प्रापृत हैं ।

मृङ्गार एक और नायिका-भेद क अतिरिक्त इस युग के कवियों का दुसरा प्रिय बर्ण-विषय प्रसकार है । किन्तु प्रसकार जैसे गम्भीर विषय के लिए जिस विशेषचारमक साधिक विवेचन की आवश्यकता होती है उस घोर इनका ध्यान ही न था । यही भी वे संस्कृत के प्राचार्यों के श्रेणी बने रहे । १. प्राथम्य है कि जिस विषय पर उनका स्वयं पूर्ण प्रसकार नहीं था उसी पर वे बचकुक लेखनी बना रहे थे । अग्रमनु विद्यान का प्राण वस्तुतः ध्यजना में ही निहित है किन्तु अनेक रीतिकामीन कवियों के उदाहरणों में प्रसकारों के तात्पर्य की उपायत प्राण-प्रतिष्ठ न हो सकी । केयव जैसे कवि भी इस भूल से नहीं बच सके । उन्होंने प्रसकारों क जो दो भेद सामान्य और विशेष किये हैं २ वे जाहे हिन्दी

१ विद्या बरिचन के संस्कृत का कुला लजाना हिन्दी बालों के हाव लप गया । फिर वे परिचय कयी करते ? पर संस्कृत के प्रभाव से उनकी स्वतन्त्र उच्चारणा साधि कठिना हो गयी । यही प्रवृत्ता रीति ग्रन्थों के प्रलयन में हुई । संस्कृत के प्राचार्यों की रत प्रसकार साधि विषयों की कुतर्क हिन्दी बालों के सामने थीं । बहुत से कवियों ने तो उन्ही कुतर्कों के अनुसार उपायुवार भावानुवार अनुदादाभात प्राप्तु किये और कुछ ने उती हाथि पर स्वयं कुछ रचनाएं कीं ।

४० इच्छाकर सुगत कृत 'प्रायुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास'
पृष्ठ-२०-२१ द्वितीय संस्करण

२ 'कविन कहे कवितान के, प्रसकार ई बच ।

एक बहे साधारणों, एक बिधिष्ट सरप ॥ २

'विद्या प्रकाश'-नायिका प्रभाव' पृष्ठ-६० (कविप्रिया की बीर-
सामा मचवान बीन)

ऐतिहासिक काव्य और सांगीतिक प्रकृतियाँ तथा उनका पारस्परिक सम्बन्ध १११

पाठकों को नवीन प्रतीत हों, परन्तु ही वे वस्तुतः संस्कृत के पूर्व जनि काव्य की विचार-वाच पर प्राभूत । संस्कृत के इस काल के कवियों ने काव्य को सुधा-मिश्र करने वाले समस्त धर्मों को धर्मकार के धर्मर्यत स्वीकार कर लिया था ।^१ केचन कृत सामान्य धर्मकारों का वर्णन जैन प्राचार्य भगवत्सिंह कृत 'काव्य-धर्ममता-वृत्त' तथा केचन मिश्र क 'धर्मकार दोसर' का अनुवाद है । 'कविप्रिया' के नवें प्रभाव से पन्द्रहवें प्रभाव तक की सामग्री का धर्मिकान्त या तो हटोइकृत 'काव्यार्थ' से या फिर ब्युक्त कृत 'धर्मकार सूत्र' से पृहीत है ।^२

रीतिबद्ध कवि

रीतिबद्ध कवियों को प्राचार्य कवियों की तरह काव्यों के निरूपण की प्राकाशा न थी किन्तु इनकी दृष्टि से काव्यों में प्रोक्त कभी नहीं हुए । वस्तुतः इस धर्म के कवि ऐतिहासिक सक्षयकारों से उत्पन्न मिश्र नहीं हैं । यदि इनमें कोई धर्म या तो केवल यह कि सक्षयकार स्पष्टतः पहले सक्षयों का उल्लेख करके उनके उदाहरण स्वरूप कविता लिखत थे परन्तु ये कवि सक्षयों के पक्ष में न पड़कर सममानुसार अपनी रचि और मनोभूति के अनुकूल कविता लिख सकते थे । उस युग में निमित्त सक्षय-ग्रन्थों के प्रचार के कारण जैन रचि सक्षयों की ओर प्राकृष्ट हो गयी थी अतः सक्षय-ग्रन्थ न लिखने पर भी ये कवि इस बात का ध्यान रखते थे कि उनकी रचनाएँ उस धर्मकार, नायिका भव इत्यादि की शास्त्रीय परिपाटी के अनुकूल रहें । रीति-परम्परा के अनुकूल न

१ काव्य प्राहमलंकारसु सौम्यमलंकार ।

स दोष गुणालंकारहानावाताभ्याम् ॥

प्राचार्य भगवत्सिंह कृत 'काव्यार्थ' धर्मकार सूत्र

१ १ १ - १

२ १ १ - २

३ १ १ ३

२ श्री हटोइ की ब्युक्त प्रादि धर्मकार-संग्रहाय के उन प्राचार्यों के मतानुयायी थे जो धर्मकारों की ही काव्य की धर्मता स्वीकार करते थे । देशबलात् की रचनाओं पर इस संग्रहाय की पट्टी प्रायः बंध नहीं है ।

डा० इमानुज्वर दास कृत 'हिन्दी भाषा और साहित्य' पृष्ठ-४३१ प्रथम संस्करण

होने पर उनकी रचना का समुचित आदर होने में सन्देह ही सकता था । अतः इस वर्ग के कवियों का ध्यान सभ्यों से हट नहीं सका । बिहारी प्रीतम मैवाड़ रसनिधि आदि प्रसिद्ध कवि इसी वर्ग के अन्तर्गत आते हैं ।

रीतिमुक्त कवि

रीतिकाल के जिन कवियों ने रीति-अर्थों की रचना न करके अल्प प्रकार की रचनाएँ की हैं उन्हें आलोचकों ने रीतिमुक्त कवियों का स्वच्छन्द काव्यधारा के कवि माना है ।^२ आचार्य शुक्ल ने इस वर्ग में उन कवियों को रखा है जिन्होंने लयन अल्प न मिश्रकर गूढ़कार रस की फूलकर कविताएँ, नीति या भक्ति-ज्ञान-सम्बन्धी पद्य या फिर प्रथम काव्य लिखे ।

रीतिमुक्त कवियों की विशेषताएँ इस काल के अल्प कवियों से सर्वथा पृथक् हैं । यानाम्ब द्विजदेव बोपा घासम-सेठ और ठाकुर जैसे प्रेम के स्वच्छन्द नायकों न कियों की अन्तर्दृष्टियों तथा प्रेम की विभिन्न अन्तर्दृष्टियों का जैसा हृदयहायी और अनुभूतिपायित वर्णन मिलता है वैसे इन कुछ न अल्प कवियों में वर्णन है । इनकी कविताओं में काव्यधारा के नियमों का अंगन नहीं हृदय का अंगन है । जीवन की वास्तविक अनुभूतियों के अभाव में कवित्व मीरस हो जाता है किन्तु प्रेम के इन स्वच्छन्द नायकों में कल्पना की ऊँची-नी-ऊँची उड़ान विद्यमान होने पर भी यह भावभूमि कहीं भी अशुभ न हुई अतः तिरोहित हो जाने पर कविता अहृदय-हृदय-रंजन में अक्षम हो जाती है । इनकी रचनाओं

१ 'अब कवि के लिए यह आवश्यक सा हो गया था कि वह जो कुछ भी लिखे उसे रीति परम्परा में ढाल कर लिखे । उसे रस अलंकार नायिकादेव प्यनि आदि के वर्णन के सहारे ही और किसी वस्तु का वर्णन करना होता था । तब तक कवि नहीं बनता जाता था जो कि लक्षण अर्थों का निर्माण करे । राज दरबारों में भी उदाहरणों पर विचार होते थे । किसी भी रसो के वर्णन में यह कौन नायिका है ? यह ब्रह्म अग्निधायक या अतः कवि लोग इसी के सहारे चलते थे ।

डा० मनोरथ विघ्न दत्त 'हिन्दी काव्य धारा का इतिहास'
पृष्ठ-११२ प्रथम संस्करण

२ अक्षय-५० विरचनाय प्रसाद विघ्न दत्त 'यन आनन्द अग्निधायनी'
पृष्ठ-१६ संस्करण सं० २००६

रीतिकालीन काव्य और सांकेतिक प्रवृत्तियाँ तथा उनका पारस्परिक सम्बन्ध २०१

में सन्धे प्रेम की क्युक का जो गहराई विद्यमान है वह किसी बँधी-बँधायी प्रेम पत्रि में कभी नहीं मिल सकती। यद्यपि इन प्रेम-विभोर गायकों की रचनाओं में भी उक्ति-वैचित्र्य का एकाग्र प्रभाव नहीं है किन्तु उनमें भावप्रबलता इतनी अधिक है कि वह वैचित्र्य ऊपर से सादा हुआ प्रतीत नहीं होता।

शृङ्गारिक प्रवृत्ति

भाषानन्द के प्रतिरिक्त रीतिकालीन साहित्य की एक अन्य प्रमुख प्रवृत्ति शृङ्गारिकता है। उस युग के साहित्य में जिस जीवन की व्याख्या की है वह जन-साधारण का जीवन नहीं धर्म-उमराव राजा-रईस और सामन्तों का विधान-बैभव से मनुष्य रंगीन जीवन है। यद्यपि इस शृङ्गारि ता में काव्य भाव का ही प्रधानता मिलती है परन्तु प्रायः नायक की ओर से एकनिष्ठता का प्रभाव होने के कारण प्रेम की उग्रता का स्थाय पर वासना की मत्तता ही अधिक बृष्टिगत होती है। रति को उद्योत करने वाले विभावा के ऐम सत्राव चित्र जो सहज ही मन को धारण के माध ङ्गमोर से रीतिकालीन कविता में मरे पड़े हैं। रति भाव की वृद्धि में प्रहृष्टि का साहचर्य भी महायक होता है इसीलिए प्रहृष्टि-विषय एवं पटभानुजनन को भी उन्होंने धरनी कविता का विषय बना लिया। नायक और नायिका के सयोग शृङ्गार एवं विप्रलम्भ-नायिका-भग्न मख दिव्य-वर्जन वृत्तियों की कल्पना और पूषणय मान प्रवास इत्यादि के निरूपण में वे ठरकालीन कवियों की शृङ्गारिक प्रवृत्ति विस्पष्ट है।

विभिन्न काव्य रूप

यदि काव्य-रूपों की दृष्टि से विचार किया जाय तो सामान्यतः रीतिकालीन कवी कवियों का व्याप्त मुख्यतः काव्य की ओर अधिक विद्यमान है। यद्यपि इस युग में कथात्मक प्रबन्ध प्रपञ्च वर्णनात्मक प्रबन्धों का भी एकाग्र प्रभाव नहीं है, किन्तु युग-मनोवृत्ति प्रबन्ध-काव्यों के प्रमुखत्व में होने के कारण मुख्यतः काव्य प्रचार रहा वैसा इतर काव्य-रूपों का न हो सका। य मुख्यतः रचनाएँ कवि-संबंधा मीमा में भी हुई और परम्परागत पर-रंगी में भी।

विभिन्न भाव धाराएँ

भाव की दृष्टि से रीतिकालीन रचनाओं में निम्नांकित पाँच भाव-धाराएँ परिलक्षित होती हैं

- १- तत्वज्ञान सम्बन्धी काव्य
- २- नक्ति सम्बन्धी काव्य
- ३- नीति सम्बन्धी काव्य
- ४- धीर काव्य
- ५- प्रेम काव्य

मुद्ररेख मिश्र का 'धम्मपम प्रकाश' नामकीरास का 'बैराग्य सार' सबल सिंह कृत 'धम्मपम रामायण' महाराज निरवभाषसिंह कृत 'ध्यानपत्र' धीर परमतत्व रेख कृत 'तत्व दर्शन पचीसी' ब्रह्मदर्शन पचीसी तथा 'धामयदर्शन पचीसी' महाराज बसवन्तसिंह कृत 'अपरोक्ष सिद्धान्त 'अनुभव प्रकाश' 'धान्य विनास' सिद्धान्त बोध 'सिद्धान्त सार' इत्यादि रचनाएँ तत्वज्ञान सम्बन्धी ही हैं। इन कृतियों में रचयिताओं का मूल उद्देश्य तत्वज्ञान की खोज है, काव्य रचना नहीं। फलतः इन्हें पढ़ने पर बोधवृत्ति तो स्पष्ट होती है किन्तु रस-स्वंगना के समार में हृद्य प्रयुक्त ही रह जाता है। अलंकारों का प्रयोग इन रचनाओं में भी विवेका विन्तु उनका उपयोग प्रायः तत्व के स्पष्टीकरण में ही हुआ है।

इस युग के नक्ति-काव्य की परम्परा हिन्दी-साहित्य के अतिवृत्त से जोड़ी जा सकती है किन्तु भाषों की अविश्वस्य प्राम-पूर्ववर्ती भाषा कवियों की पुनरावृत्ति मात्र है। रसाईता तो इन रचनाओं में भी है, परन्तु मौलिक प्रतिभा का समार होने से अतिवृत्त विहीन-विहीन ही अक्षर प्रतीत होती है। ये रचनाएँ प्रायः कृष्ण-भक्ति पर आधारित हैं धीर इनमें शृङ्गार का पुट भी निश्चय ही है। सोमनाथ कृत 'कृष्ण गीतावली' रसिक भोविन्द कृत 'सुगम रस मातृपी' तथा 'रामायण सूचनिका' मण्डन कृत 'जानकी पू का विवाह' सुब भोविन्दसिंह कृत 'अष्टौ अक्षर' ज्ञान की 'समुद्रा सहरी' तथा 'भक्त मात' ब्रह्मन्द के गेय पर तथा अन्य रचनाएँ, भक्तपर नामकीरास की सबहू से अधिक छाटी-ओटी पुस्तकें चाचा हित बुद्धावन दाम के गेय पर कृष्णरास की 'मातृपुत्र' सहरी तथा मारनेन्दु जी के विना विरिचर दास की अनेक रचनाएँ इस युग के संगीतपरक नक्ति-काव्य के उदाहरण स्वरूप उपरिष्ठ की जा सकती हैं।

गीतरास की नीति काव्य भारत का सम्बन्ध नरहति रहीम इत्यादि पूर्ववर्ती कवियों से स्थापित होता है। बुन्द की 'कृष्ण सतसई' तथा बैराग्य गतक बुन्द भोविन्दसिंह कृत 'सुनीति प्रकाश' तथा विरिचर, बाबू बीमदयान विरिचर की कृष्ण रचनाएँ इसी श्रेणी में आती हैं। इन वर्ग के कवियों में अन्तर्गत अयोधिन कृष्ण इत्यादि के प्रयोग से जो आन्वीरग्य प्रदान सुनिवृत्त

रीतिकामीन काव्य और सांनोतिक प्रवृत्तियों तथा उनका पारस्परिक सम्बन्ध २०१

मिथीं वे प्रतीक लोकप्रिय हुईं। बीगदयाम निरि जैसे कवियों की वे उक्तियों तो पर्याप्त सरस भी हैं जो जीवमानुवृत्ति से सिद्ध हैं।

इस युग में जो बीर काव्य लिखा गया वह वस्तुतः युग प्रवृत्ति के प्रतिकूल था। अनेक कवियों को बाध्य होकर अपने आभयदाताओं का बसोबर्धन करना पड़ा था किन्तु ऐसी झूठी प्रवृत्तियाँ निरर्थक ही सिद्ध हुईं। हाँ बीर रस को लेकर लोकनामकों का जो धीरवर्धन हुआ अथवा जो पौराणिक काव्य लिखा गया वह पर्याप्त सफल रहा। इस युग में बीर रसात्मक प्रबन्ध काव्य भी लिखे गये और स्पष्ट रचनाएँ भी। भूपल का काव्य तो इस युग का बीर काव्य है ही इसके अतिरिक्त सबभद्र सिंह चौहान कृत 'महाभारत कुलपति मिथ का 'शोकपत्र' तथा संघाम सार भास कवि का 'सप्तसास बोधपत्र का 'हमीर रासों' चन्द्र सेखर बाजपेयी कृत 'हमीर कठ, पद्माकर कृत 'हिम्मत बहादुर बिठ्वाकनी इत्यादि का भी विस्मृत नहीं किया जा सकता।

इस युग के स्वच्छन्द प्रेम काव्य के रचयिताओं में अनुभूति की रमणीयता की भाविक धमिष्णवृत्ति मिलती है। मात्र रमणीय उपकरणों के द्वारा अपनी उक्तियों में रसोत्प्रेक करने का प्रयास इन कवियों ने नहीं किया। इनकी सरस उक्तियों में जिस चुनरी हुई अक्षरों का दर्शन होते हैं उतका आचार हृदय की टीस है। भावों की यहुराई के कारण ही इनकी भाषा स्वयमेव आभासुवृत्तिनी होकर सूक्ष्म भावनाओं की धमिष्णवृत्ति में सफल हो सकी है अतः इनकी रचनाओं में संगीत-युग का भी समास्वाग समावेश ही कहा है। धालम चनामन्द बोधा ठाकुर द्विवेद इत्यादि कवि इसी वर्ग में आयेगे। अथपि शृङ्गारिकता रीतिकाम की एक मुख्य प्रवृत्ति है किन्तु इन प्रेमोग्मल कवियों का शृङ्गार वह शृङ्गार नहीं है जो काव्य में मात्र भाषी विलास बनकर रीतिकामीन अनेक कवियों की रचनाओं में मुखर हुआ। यह उन लोगों का शृङ्गार है जिन्होंने अपने हृदय की धीरों से प्रेम की पीर को रखा था। इसी कारण इन कवियों की रचनाओं में हृदय की निरक्षरता विद्यमान है कृत्रिम विरह की हाय हाय नहीं।

रीतिकामीन काव्य की मुख्य भाव-वाराएँ तथा ऊपर कही हुईं मुख्य प्रवृत्तियों के आचार पर ही रीतिकामीन काव्य और संगीत के पारस्परिक सम्बन्ध का सुस्पष्टान करना समीचीन है। यहाँ इतना कह देना अवश्यत न होना कि उपर्युक्त भाव-वाराओं में से कोई भी भाव वारा ऐसी नहीं है जो संगीत में वृद्धित न हो सके। जहाँ तक रीतिकामीन शृङ्गारिक प्रवृत्ति का सम्बन्ध

है उसका प्राबल्य संगीत में भी वृत्तियोपर होता है। यदि विषय विधान की वृत्ति से विचार किया जाय तो कविता का चाहे जो रूप हो उसमें किसी-न किसी ढंग में कलापरक—विशेषतः संगीत कला की—विशेषताओं का समावेश हो ही जाता है। सम्भवतः यह कवि की रसित के बाहर की बात है कि वह अपनी काव्य-ब्रह्मा को इतर कलाओं की विशेषताओं से सर्वथा असम्बन्धित रख सके। वस्तुतः अभिव्यक्ति की जो परम्परा साक्षात् इतर कलाओं के तुलना की मुखधारिणी है वही काव्य का भी निर्माण करती है। यही कारण है कि पारश्चात्य काव्य शास्त्रियों ने कला के व्यापक अर्थ में काव्य को भी समेट लिया है। १ इतर भारतीय काव्य-शास्त्रियों ने कला शब्द को संकीर्ण अर्थ में ग्रहण

१ (क) Poetry and picture are arts of a like nature and both are busy about imitation. It was excellently said of Plutarch—poetry was speaking picture and picture a mute poetry
 Loeb—critical by saintsbury page 114
 Edition—1931

(काव्य कला और चित्रकला एक ही प्रकार की कलाएँ हैं और दोनों ही का आधार अनुकरण है। प्लुटार्क की यह उक्ति सुन्दर है—कविता बोलती तस्वीर है और तस्वीर मौन कविता।)

(ख) "It might be argued that there is no need to insist on the necessity for Art as an element of poetry. If all the other elements are there we might say Art is there also. The text may be this: is the total effect pleasurable whether the theme in itself be beautiful or grotesque joyful or sad? It is the special function of Art to see that pleasure will result."

The study of Poetry—by A. R. Entwistle B. A.

Page 12 Edition November 1933

(यह इतनी ही बातें हैं कि इस बात पर जोर देने की आवश्यकता नहीं है कि कला कविता का आवश्यक तत्व हो। यदि अन्य सभी तरह मौजूद हों तो हम यह सरते हैं कि कला भी वहीं है। कसौटी यह हो सकती है कि क्या सम्पूर्ण प्रभाव मान्य-राज्य है क्या विषय को स्वतः सुन्दर धरना अनुभूत प्राप्ति बलक धरना विनाशक्य होना चाहिये? कला का यह विशेष अर्थ है कि उससे मान्य की उत्पत्ति हो।)

(ग) "(Poetry is) the art of producing pleasure by the just expression of imaginative thought and feeling in metrical Language."

An Introduction to the study of Literature

by Courtney Page 24

(शास्त्रिक विचारों के अन्तर्गत काव्य और संगीत की भाषा से अन्तर्गत की वृत्ति करने की कला की कविता कहते हैं।)

ऐतिहासिक काव्य और सांख्यिक प्रवृत्तियों तथा उनका पारस्परिक सम्बन्ध २०५

करते हुए काव्य को विभिन्न कलाओं से पृथक् माना है।^१ इसका प्रधान कारण यही है कि काव्यतर कलाओं में समिन्धुत्व का बाह्य कौशल ही अधिक परिसरित होता है, किन्तु काव्य का आधार उसका अन्तर्गतत्व है। अन्तर्गतत्व की समिन्धुत्व एक सीमा तक ही सहज स्वाभाविक है शब्दों में नहीं। इस सीमा के प्रागे बढ़ते ही समिन्धुत्वना-कौशल की भी अपेक्षा होने लगती है।

कलाकार का व्यक्तिगत अस्तित्व विभिन्न रूपों में विभक्त रहता है। उसका एक रूप तो यह है जो कला निरोध है। पाने इस रूप में कलाकार सामान्य मानव से भिन्न नहीं है। वह प्रप। पर-सुदृश्यी के भ्रमों का सुलभ्यता है और रोटी-दान का अनुचित प्रबन्ध करता है। उसका दूसरा व्यक्तिगत बहो विद्यार्थी होता है जहाँ वह जीवनानुभूति के मामिक क्षणों में तल्लीन होकर कला-सर्जना में लतार होता है। इस मनोवस्था में कवि की-कलाकार की-अनुभूतिमयी प्रतिभा अपने अल्पना-अपत् में अतीत के भावों का साक्षात्कार करके मानो उनका पुनः मानसिक प्रत्यक्षीकरण करने लगती है। कवि की यह भावना ही उसकी कृति का उत्स है। कलाकार का तीसरा रूप यह है जब वह स्वयं ही प्रथम आलोचक बनकर अपनी अर्थाभिन्न कृति को परखने लगता है। यहाँ उसका कलात्मक अस्तित्व प्रबलतर हो उठता है। फलतः वह अपनी कलात्मकता के समीक्षा से कृति में काम्ति और मसुमता की अक्षि भर स्थापना करता है। यहाँ कविता में संगीत के शब्द भी उभरने लगते हैं।

इन तीनों रूपों में से सम्प्रति प्रथम व्यक्तिगत छोड़ा जा सकता है। कला सर्जना में उपयोगी कलाकार का दूसरा व्यक्तिगत अपनी अल्पता के बस से मानसिक पुनरावर्तन २ द्वारा जीवनानुभूति को साकार नहीं करता प्रत्युत अपनी अर्थाभिन्न को प्रथमीय अपाकार भी प्रथम करता है। एकान्त कला की दृष्टि से यह प्रारम्भिक रूप भले ही नुटिपूर्ण लक्ष्य बनाने में कलात्मकता होती अन्ततः ही अर्थाभिन्न के साथ ही कला का मोड़ा बहूत रूप पाने लगता है। कलाकार अपनी कला के अल्प-विधान को ध्यान में रखकर इन नुटियों का माचन करके कृति को मुक्त और आदर्श रूप प्रथम करता है। यों तो अनुभूति सर्व नुनम है किन्तु अन्त-साधारण की अनुभूति निरन्तर ही मूक होती है। इसके विप

^१ भामह ने 'काव्यालंकार' में काव्य के अर्थ विनाही हुए कला-अपान-काव्य को एक स्वतंत्र अर्थ माना है।

(दृष्टव्य—भामह इन 'काव्यालंकार' प्रथम परिच्छेद वृत्त-१५ १५)

रीत कवि को अनुभूति कलात्मक रूप ग्रहण करके सुघर है। उन्हीं ही घोर उगे बेन-मुनकर जन-साधारण भी यह समझे सकते हैं कि उनकी अपनी अनुभूति का वास्तविक स्वरूप क्या घोर कथा है।

कवि जब अपनी कृति की मूर्ति के परवान् प्रयास उगम कलात्मक निवार करने लगता है तब अनुभूति के प्राण की अभिव्यक्ति के सुन्दर शरीर से सम्बन्ध रूप से स्थापन हो जाता है। इन सब प्राग्भिक साधारणताओं की पूर्ति के परवान् ही कवि की कविता प्रयास के सम्मुख घानी है घोर तब वा सादर्य पठित होकर देखता है कि कवि न अपना एक शब्द भी बिना गाये-समक प्रयुक्त नहीं किया है। कवि का नवीतारमक उन्म-नचलन उनका प्रासंगिक विधान प्रथम वाद-विन्यास-कीमत निरचन ही नाकिन्नानुभूति की सुन्दरतम रूप प्रदान करने से सहायक होता है। यही कारण है कि न तो साम साम्यक सौन्दर्य की महत्ता स्थापित करके बाह्य सौन्दर्य की गणनाय "वेग की जा लकड़ी है घोर न अभिव्यक्ति कमलकार की ही सब कुछ मानकर प्रदर्शन की प्रकृतिना हो सकती है।"

कविता काय कलाओं में बहुत अधिक अनुभूति है। १० सवम अधिक प्रभाव

१ 'कवि को अनुभूति को उसके परिणाम में हम अभिव्यक्ति देखते हैं घोर अभिव्यक्ति के प्रस्तारणकों सम्बन्ध की जोड़ने से लिए हम चाहें तो कला का नाम से भरते हैं घोर कला के प्रति अधिक परापात्पूर्ण विचार करने पर यह कोई कह सकता है कि प्रकृति परीक्षण रीति घोर कलात्मक इत्यादि में कला की सत्ता मान लेनी चाहिए; किन्तु सैरा मत है कि यह सब समय-समय की मायता घोर वास्तव्य हैं किन पर प्रतिभा का कभी अधिक भूराय हुआ होया। इसी अभिव्यक्ति के बाह्य रूप की कला के नाम से वाच्य से पराङ्क रचने की साहित्य में प्रयास ही कम पड़ी है।"

श्री अर्पाकर प्रसार हता काव्य घोर कला तथा
काव्य विन्यय पृष्ठ ४४ अनुभूति संस्करण

२ All literature but especially poetry may be regarded as the result of a vibrant art. It is in no sense a mere whose effects happen to be limited to tones and melody a music which rests itself to the sounds that happen to be incarnate in the words of some particular language."

Dr. Lewis Loomis—(Wisdom the Man Page of Third
Edition)

(कला सत्ता साहित्य विन्यय काव्य की संस्करण कला कला का नाम है। यह एक प्रकार का संनोत है जिसका प्रभाव स्वर एवं स्वर में भीवित

तो इस पर संगीत का ही है। अतः कविता को कला के व्यापक क्षेत्र से बहिष्कृत करके उस पर विचार करना समझ नहीं है। शब्दों के निबिड-जाम से उदस्य रहकर यदि विचार किया जाय तो इसमें भी सन्देह नहीं कि काव्यशास्त्रों में काव्य के कलात्मक अंश की कल्पना नहीं मगर्भना ही हुई है। यह बात ब्रह्मचारी है कि कही कलात्मक अंश को मीन स्वान दिया गया तो कही प्रमूय। प्रश्न तो केवल इतना ही है कि कवि में कला की कुशलता होती है या नहीं? और यदि इस प्रश्न का उत्तर 'हाँ' है तो अनुसन्धित्यु को काव्य के सिद्ध विधान में अपने ईप्सित विषय के लक्ष्य अवश्य समाहित मिलेंगे? और निश्चय ही इस वैशिष्ट्य की दृष्टि से भी काव्य का स्वतन्त्र अध्ययन किया जा सकता है। २ रीतिकाल के बरबारी प्रभाव और बातावरण में बिना कविता का निर्माण हुआ उगम निरूपता कमलकार, उन्म-दौष्टक धार्मिकारिक सुग्मा पत्र-नीम्यय रसानुरूप वम रोजना उन्मि-वैश्व्य प्रमृति की सिद्ध बातुरी को यदि छोड़ दिया जाय तो फिर यह ही क्या बायगा! निश्चय ही ये कवि पहल कलाकार हैं बाव में कुछ और। ३ यह भी एक निर्भीत तथ्य है कि अपनी कला अर्चना में ये बिल्कुल बजोड़ हैं। कविता का मुख्य चिन्तन-भिन्न अवसरों पर—मिन्न-भिन्न कामों में—बदलता

होता है एसा संगीत को उन रवरो में अपने को विपन्नित कर देता है जिनकी किसी विशेष भाषा के शब्दों द्वारा अवतारणा होती है।)

१ "कला की सामग्री से साहित्य का और साहित्य के आधार से कला की सामग्री का अध्ययन ही कला और साहित्य दोनों के लिए परस्पररोपयोगी हो सकता है।"

डा० बामुदेवप्ररण अग्रवाल कृत 'कला और साङ्गति' पृष्ठ २०३ २ ४

२ "कला की धार्मिक से साहित्य और साहित्य की धार्मिक से कला को देखना हमारे वर्तमान साङ्गतिक युग की एक बड़ी आवश्यकता है।"

वही पृष्ठ २०६

३ "व्याप्त और वास्तविक कि कवि ये जो पहाड़ों को तोड़कर चिन्तनों के लिए रास्ते बनाते थे बाएँ भी हर्व और भाव कलाकार हैं जो छोटे-छोटे पत्थरों को धिक्कर उन्हें चिन्ता करते हैं। कवि तब उत्पन्न होते हैं जब समाज के पाँव बँध जाते हैं।"

'अधस्तिका' वर्ष २ अंक-१ पृष्ठ-२४४

श्री दिनकर का लेख 'रीतिकाल का नया मूल्यांकन'

रहता है। अतः कविता कभी अपने निर्माणकाल की परिस्थितियों के लिए पड़ी जाती है। तो कभी छन्द-सपथन के कौशल के लिए। कभी इन उद्यमों में युग का इतिहास लोभते हैं तो कभी शब्द-सौष्ठव वर्ण-योजना या भाषा का साहित्य देखते हैं। वह भी एक युग का जिसने ऐतिहासिक कविता का आधार किया था। इसी कारण उस युग के कवि ने बेसी रचनाएँ लिखी थीं और आज भी अनेक कविता प्रसिद्धों के लिए उन्हीं मूल्यां के कारण ऐतिहासिक कविता समीक्ष्य है। मृत गयी। अपनी-अपनी रचना ही तो है। किसी को ऐतिहासिक कविता में कड़वाविला अमरकारप्रियता स्पृश ऐन्द्रिक शृङ्गारिकता अथवा अस्मीकता के धार्मिक और कुछ विषयों ही नहीं देता तो कोई उस युग की कविता में रीति-धीन ईर्ष्या प्रेम उमर सामसा इत्यादि के एक-दो-एक तुम्हारे विषय देखकर मुग्ध हो उठता है। वस्तु तो एक ही है किन्तु

“आनन्द सीति मनीसि है आनन्द सबी मनीसि ।

मुम्बन आनन्द मात्र है, शीतम आनन्द प्रीति ॥”

उस युग के कवि के लिए वस्तुतः मार्ग ही देवता हो गए रह गये थे। या तो वह अपने प्राणमयाताओं की प्रशंसा कर सकता था या फिर अमरकार-प्रशंसा और अमा-सौष्ठव से अपनी रचना की आकर्षक और मर्मस्पर्शी बनाकर समा में प्रारंभ प्राप्त कर सकता था। कुछ काव्य-रचना की प्रेरणा का प्रतिफलन दूसरे मार्ग में ही अधिक सम्भाव्य था अतः उस युग के कवि ने समय के साथ इसी को अपनाया। १

१ “उन्हीं (ऐतिहासिक कवियों को) कड़वाविला अथवा अमरकार-प्रियता पद्धति पर लिखना उनको अतिशय राज-प्रशंसा की स्थिति से मुक्ति पाने के कारण और कुछ काव्य रचने की प्रेरणा का प्रतिफल था। यदि ऐसा न करते तो या तो वे आरत-काव्य की ही कविता लिखते या फिर अमरकार के पुत्र होते। इन दोनों से ही अनेक लोगों ने अचना काहा उन्होंने रीति-पद्धति पर रचना करने की बात सोची। अमरकार-प्रशंसा भी उस युग का मुख्य था। उस तद्क-अद्क, अमर-सरीस के युग में अनेक काव्य का अधिकांश ही अधिक प्रचलित था अमरकार-प्रशंसा सम्भाव्य था।”

‘आलोचना’ वर्ष १ अंक-३, पृष्ठ-३७ ३८ पर ‘ऐतिहासिक काव्य एक दृष्टिकोण’ अध्याय डा० अमरेश विषय का लेख ।

अन्य प्रिय-विषय

अमरकार प्रदर्शन की समितरिषि के साथ गृहकारिक मनोवृत्ति का समावेश हो जाने के कारण ऐतिहासिक कवियों की मनोवृत्ति नक्षत्रिषि और पट्टातु वर्धन में भी कूब रही । सौन्दर्य श्रष्टा कवि की प्रवृत्ति में सर्वाधिक सहामक कैनेत्रिय ही है और सौन्दर्यानुवृत्ति के द्वारा मानव की स्थापना ही कला का प्राप है, यत कवि का—कसाकार का—ध्यान सबसे पहले धामन्य के प्रमुख परत (स्त्री) पर ही केन्द्रित होता है । नारी एक साथ ही पौर्षों ज्ञानन्द्रिया को प्रभा विष करके मानव का उद्रेक करती है । इसीलिए नारी कला की सबसे बड़ी प्ररमा है । ऐतिहासिक कवियों में बड़ी रसिकता से नारी के अर प्रत्यर्षों के नाकम्य घोभा और कामि के धारयंक और कभी-कभी फड़का देने वाले शब्द-विन उतारे हैं । ऐतिहासिक कवियों का नक्ष-सिख-वर्धन परम्परामत षीली पर धावुत है । आतिगत कवि स्वभाव यिला संस्कृति श्रमृति के परिणाम स्वरूप संस्कृत काल में ही नारी की धारयें सौन्दर्य-धावृत्ति निरिष्ट हा चुकी थी, यत यतानुपातिकता से नक्ष-सिख में उपमान भी बहुत कुछ सङ्गित हा

- १ (क) "श्रष्टायेषु किमुसर्गं मुसदुर्गा प्रेमप्रसर्गं मुलं ।
 प्रातयेष्वपि किं तदास्पपवनं श्राव्येषु किं तद्वचः ॥
 किं स्वाक्ष्येषु तदोष्मस्तबरसः स्युर्म्येषु किं तत्तनु-
 र्ययं किं नक्षयौवनं मुहुर्यं सर्वत्र तद्विभ्रमः ।"
 मर्तृहरि इत 'गृहकार पतक', प्लोक ७
 वृष्ट ७७ द्वितीय संस्करण
- (ख) "प्रीता हूँ, हाँ में पीता हूँ
 यह स्पर्श रूप रत यत्र भरा
 मनु महर्षी के उकाराने से
 ध्वनि में है क्या मुँजार भरा ।
 श्री जयशंकर प्रसाद इत 'कामात्मनी'
- (ग) "श्राव्य स्पर्श, रत रूप बच की
 पारब्रह्मिणी मुषङ्ग पुतलियाँ
 चारों और नृत्य करती क्यों,
 कल्पवती रंगीन तिलनियाँ ।
 श्री जयशंकर 'प्रसाद' इत 'कामात्मनी',
 वृष्ट २७० द्वितीय संस्करण

यवे। यही कारण है कि प्रायः हिन्दी के सभी रीतिवासीय कवियों के गद्य-निबन्धनों में विमलमल साम्य दिखायी देता है।

पद्य-निबन्धन भी इसी प्रकार परम्परागत है। रीतिकाल के कवियों ने प्रायः गृहकारणों के प्रहीण विभाव की दृष्टि से पद्य-निबन्धन किया है। वस्तुतः सृष्टि में जो कुछ समुच्चल और दर्शनीय है उसका गृहकारण से परिच्छिन्न सम्बन्ध है। यद्यपि इन गृहकारिक कवियों ने रसात्मक दृष्टि से इस बात की ध्यान की कि यमोरम प्रकृति के सौन्दर्यपूर्ण वातावरण में स्त्री-पुरुषों के प्राकृतिक सौन्दर्य के उद्गीर्ण होने पर किस प्रतिफल रूपमा की संवेना होती है। उनके पद्य-निबन्धन में चाहे घाममन की दृष्टि से कुछ प्रकृति-विभव का ध्यान ही नहीं हो किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि गृहकारण के जनय पद्यों में मानव-रूप पर प्रकृति के पद्य-वासीय प्रभाव की उन्मोहि पहचाना जा और उसकी कथात्मक परिष्कारना भी की। यद्यपि तत्कालीन परिष्कार कर्मकार प्रियता ने उनके निबन्धनों को परिष्कृत भी कर दिया है किन्तु वहाँ ऐसा नहीं है वहाँ उन के चित्र प्रकृत ही मुद्रा बन गई है।^१

रीतिकाल के कतिपय कवियों ने संयोग गृहकारण-निबन्धन की सुविधा के लिए घण्ट्यामों की भी रचना की। शैवक कवियों ने घण्ट्यामों में राधा और कृष्ण की घाटों प्रहरो की ललित सौम्यामों का निबन्धन किया था। उन्हीं का अनुकरण करते हुए रीतियुगीन कवियों ने दण्डी के चौबीस घण्टों के विविध विभाष-पूर्ण कार्यक्रमों के आदर्शक और उत्तमक निबन्धन की ही घण्ट्याम की रचना का निबन्धन-विषय मान लिया। शैव कवि ने घण्ट्याम की भी रचना की है उसका सम्बन्ध गृहकारण से चाहे बिलना अधिक ही यथा मक्ति, यद्यपि नैतिकता से सेवमान भी नहीं है। रीतिकालीन कुत्तर कवियों में श्री महाशय विश्वनाथ सिंह ने 'घण्ट्याम आह्लास' और सुमान कवि ने 'घण्ट्याम' की रचना की। तथापि घण्ट्याम रचना का विशेष प्रकार नहीं हुआ। इस प्रकार की रचनाएँ

१ "परिच्छिन्नलोके मुचि मेध्या बर्धनीय वा तच्छब्दवारेत्सुनीयते।"

श्री भरतमुनि प्रणीत 'नाट्यशास्त्रम्, पद्याप्ययः
पृष्ठ-७३ (विद्या विनायक प्रेस, बनारस)

२ बिहारी का यह श्लोक प्रकृत्य है :

'रमित नृप - बंधावली, अरित दान यदुनीव ।
संद-संद घावत अस्वी कंधर कुंड-सनीव ॥

तत्कालीन धनी-वर्ग की नितास्त सङ्कमण्यता और पोर बिसासी जीवन को स्पष्ट इंगित करती हैं। मरु कवियों ने (जैसे बाबा हित बुन्दारन राउ) घट्टपाम सम्बन्धी ओ पर सिधे से उनमें किसी-न-किसी रूप में उनकी प्रकृति की बिध मान की किन्तु शृङ्गारिक कवियों के ती राधा-कृष्ण ही लीकिक स्त्री-पुरुषों के रूप में परिचित हो गये थे पण उनके सम्बन्ध में प्रकृति का प्रस्न ही कहाँ उठ जाता है ?

रीतिकालीन सांघीतिक प्रवृत्तियाँ

रीतिकालीन काव्यगत प्रवृत्तियों के समानांतर ही कम युग की सांघीतिक प्रवृत्तियाँ भी थीं। इस काल में की संघीत सम्बन्धी लालन-लम्ब सिधे गये उनके सेवक की संस्कृत प्रथों क बँधे ही जगजीवी से जैसे इस युग के कवि प्रसन्न उनमें की लीकिकता का प्रभाव ही जाना स्वाभाविक था। रीतिकालीन कवि यदि काव्य के समत्कार-प्रदर्शन में रत थे ती इस काल के संघीत में की टप्पा तराना बिबल अनुरण जैसी धीमियों का प्रचार हो गया था बिनाम समत्कार प्रदर्शन की ही सुबिधा धधिक की। शृङ्गार का ती संघीत से मुक्त-मुक्त का सम्बन्ध है अतः रीतिकालीन संघीतजनों में किन प्रासिधितकार्यों की रचना की उनमें की लक्ष्यिब निष्पन्न नायिका-वेद धधवा पट्टण्डु इत्यादि की रचना जान बूमकर समया धनवाने ही हो गयी।

समान कावकी का इस युग में धधिक प्रचार हो गया था। इस कावकी में छोटी-छोटी मुरकियों धधवा ठानों के बिभिन्न प्रकारों के समानेध सं सांघीतिक धर्मकारों की धधिरुधि में बुद्धि और समत्कार-प्रदर्शन में धधिक सुबिधा हुई, फणठ भूपर की धधेधा लमाल-नायकी लमरुधि के धधिक धनुष्म सिद्ध हुई। यधधि इस युग में बने हुए धधधों के बीन तत्कालीन युद्ध साङ्घितिक धधधमापा के धधधरुध न ध धधधि इनमें धधधेध स्वधों पर लङ्घीधीनी पंजाबी धधधी राजस्वाधी इत्यादि नायधधों के धधधों के साध धधधमापा के धधध धधधध मापा में इधधधेधर होठे हैं। यहाँ यह धधध रधधना बाङ्घिध कि इन संघीतजनों बाउ ओ कधिठारु धिधी गमी के संघीधीधधीधी धधधधधधधध हैं, रीधधधिद्ध कधियों की धिधी ही कधिठारु नहीं अतः इनमें बाहु तत्कालीन कधियों जैसा रीधधधधधधध धधधधधधध न ही किन्तु इन धधधधधधधधों में कम युग की काव्यधध धधधधधधध धधधधधधध धधधध धधधधी धेठी हैं।

रीतिकामीय काव्य और सांगीतिक

प्रवृत्तियों का तुलनात्मक अध्ययन

रीतिकामीय साहित्यिक मनोवृत्तियों की तुलनात्मक सांघोषिक मनोवृत्तियों से तुलना करने पर दोनों में अद्भुत साम्य परिलक्षित होता है। जहाँ तक प्राचार्यत्व का प्रश्न है, हम युग में अनेक संगीतज्ञ हुए जिन्होंने संगीत के शास्त्रीय पक्ष को लेकर मार्गो-दोषी संगीत-अथवा स्वर, श्रुति मेल राम प्रभृति की सांगीत्याग व्याख्या की है तथापि रीतिकाल में लिखे संगीत सम्बन्धी ग्रन्थों की संख्या उस युग में प्रकीर्ण काव्य-ग्रन्थों की संख्या से अत्यन्त कम है। इस कमी का मूल कारण संगीत और काव्य की अलग-अलग उपयोगिता है। संगीत अपनी मूल प्रवृत्ति से किन्तारमक ही अधिक है। उसे लेकर शास्त्रीय वर्ण करने वालों की संख्या प्रायः क्या सबैव ही कम रही है। संगीत की अर्थों छिड़ने पर शेष संगीतज्ञ के दृष्ट से निःशुभ अन्तर्जात्मिक स्वर-विन्यास के माधुर्य का ही ध्यान रीतिवादी आहुते हैं। शास्त्रीय अज्ञान का नहीं। रीतिकामीय चम्पायित गायक का सम्मान भी उसकी कला-जातुरी और दृष्ट-माधुर्य पर ही अत्यन्त अत्यन्त था। दरबारों में संगीत या ही मनोरञ्जन का साधन। अतिक्रम राधा महागजाधारी की न तो संगीत-शास्त्र-अर्थों में रचि की और न उन्हें उठाना अर्थकाय। उन्हें तो बस संगीत के कलात्मक और उद्दीपक रूप की चाह थी और उठ चुक का संगीतज्ञ उनकी इसी कामकाजी परिदृष्टि में लय था।

आध्यात्मिक

निरञ्जर ही रीतिकामीय परिस्थितियाँ उस युग के कवि और संगीतज्ञ दोनों ही को समान रूप से परिदृष्टिष्ठ किये हुए थीं। प्रस्तुत प्रबन्ध के पाँचवें परिच्छेद में रीतिकामीय संगीत के सम्बन्ध में जो कुछ कहा गया है उससे उपर्युक्त रीतिकामीय काव्य प्रवृत्तियों की तुलना करने पर यह सुस्पष्ट हो जाता है कि हम युग के प्राचार्य कवि यदि संस्कृत ग्रन्थों के अर्थों के तो प्राचार्य संगीतज्ञों पर भी अपने विषय से अत्यन्त संस्कृत ग्रन्थों का अत्यन्त विद्यमान था। भरत के नाट्यशास्त्र में संगीत की जो अर्थों हो चुकी थी अथवा आर्जुनदेव ने संगीत के शास्त्रीय पक्ष का लेकर जो कुछ लिखा था उसकी परिधीमाधों का

ऐतिहासिक काव्य और सामीतिक प्रकृतियाँ तथा उनका पारस्परिक सम्बन्ध २११

पवित्रमन्त्र करके मौखिक उपस्थापना साम्य ही किसी संगीतज्ञ ने की। ग्रहोक्त में बीणावण्ड पर स्वरों का जो स्पष्टीकरण किया है वह धार ऐतिहासिक दृष्टि से मने ही महत्वपूर्ण हो परन्तु ग्रहोक्त ने अपनी दृष्टि से उक्त युग की एक सामान्य और प्रचलित बात ही बतायी थी। सम्यक् उक्तने यह सोचा भी न था कि इस सामान्य उल्लेख का कभी ऐतिहासिक महत्व भी होगा। बस्तुतः अन्तः साम्य की दृष्टि से उपलब्ध सभी प्राचीन तथ्य अपन युग के प्रायः ऐसे ही सामान्य उल्लेख हैं जिनके सञ्चकों ने उन्हें निकले समय स्वयं में ही उनके विशेष महत्वपूर्ण होने की परिकल्पना नहीं की थी। ग्रहोक्त न यद्यपि गभीर स्वरनामों का उल्लेख किया है, किन्तु उल्लिखित अनेक विद्वत् स्वरों के नाम पुरान ही स्वरों के नये नाम मात्र हैं। ग्रहोक्त न 'पारिजात' के रागाध्याय में इस तथ्य को स्वतः स्वीकार भी किया है। १

ग्रहोक्त पर लोचन की 'राग तरंगिणी का भी प्रभाव प्रतीत होता है। प्राये चलकर भावमदृ ने बीणा-वण्ड पर स्वर-स्थापन के हेतु ग्रहोक्त के मार्ग का ही अनुसरण किया। उनके 'यनुष विभाष' पर शाङ्गदेव का प्रभाव तो है ही तथा ही उन्होंने 'मगीत पारिजात' 'मगीत र्वण' 'राग मञ्जरी' 'राग-तत्त्व विबोध' 'हृदय प्रकाश' इत्यादि ग्रन्थों से भी अनेक स्वरों पर उद्धरण उपस्थित किये हैं।

भाग्य-निवासी पण्डित गोमनाथ ने सन् १६१० ई० में 'राग विबोध' की रचना की थी। यह पुस्तक यद्यपि शास्त्रिणात्म्य संगीत-पद्धति से सम्बन्धित है, तथापि इसके अध्ययन से यहाँ बिस्वास होता है कि गोमनाथ ने या तो उत्तर भारतीय समीत-पद्धति का भी अध्ययन किया या या उत्तर भारत के समीतियों से उनका सम्बन्ध रहा होगा क्योंकि 'राग विबोध' के अनेक उल्लेख उत्तर भार

१. "रिच पूर्वं तथा तीव्र तीव्रतरं च गस्वरम् ।
 तीव्रतरं तथा र्वं च र्वं च तीव्रस्वरं तथा ॥
 र्वं च तीव्रतरं र्वं च पूर्वात्यं तीव्रतीव्रतम् ।
 तीव्रतरं निवारं च तीव्रतरं च निस्वरम् ॥
 इत्येतावन् ब्रह्म त्यक्त्वा रागलससु भोदितम् ।
 द्वारामिबिचापध्वी शृङ्गेरि सत्यनि स्वरैः ॥
 एतं कृत्वा प्रसिद्धा ये त एवात्र प्रकीर्तितः ॥"

'संगीत पारिजात' (रागाध्याय) श्लोक-संख्या ४६४-४६७

तीय संगीत-व्यवृत्ति से अतीव निकट सम्बन्ध रखते हैं। हुसैनी नवरौज भीमसईराक जैसे रागों का जस्सेस उपर्युक्त भारता को धार भी पुष्ट करता है। अन्य भक्तियों के समान इन्होंने भी परम्परागत बार्हस्पत्य श्रुतियों को स्वीकार किया है। श्रुतियों पर स्वर-स्थापन की रीति भी गतानुभविक ही है। शाङ्ग देव ने बीजाखण्ड पर बार्हस्पत्य तारों की सहायता से श्रुति-निर्देश किया था किन्तु सोमनाथ ने अपनी बीजा के तारों के नीचे बार्हस्पत्य पर्यं सदाकर श्रुतियों को इमित किया है। फिर भी इससे कोई तात्त्विक अन्तर उपस्थित नहीं होता। निश्चय ही भरत और शाङ्गदेव का प्रभाव सोमनाथ पर भी है क्योंकि श्रुतियों के स्थिरीकरण का प्राचारभूत सिद्धांत उपर्युक्त प्रक्रिया से परिवर्तित नहीं होता।

सोमनाथ हुए 'राज बिबोच' के लगभग तीस वर्षों बाद दक्षिण के ही एक अन्य विद्वान् ब्यंकटमञ्जी पण्डित ने 'बतुर्दण्डिकासिका' नामक ग्रन्थ की रचना की। भरत और शाङ्गदेव का प्रभाव इस रचना पर भी है तथापि दक्षिणायन संगीत की यादृ स्वरों में निबन्धना और बहुतर मेल कर्ताओं (ठाठों) की यथित-मिथ उपस्थापना ब्यंकटमञ्जी का वैशिष्ट्य है। किन्तु ब्यंकटमञ्जी के बहुतर मेलकर्ताओं की मौलिकता यथित से पुष्ट होने पर भी व्यवहार में उपयोगी सिद्ध न हो सकी। स्वयं ब्यंकटमञ्जी ने जब अपने अन्य रागों को जनक मेलों के अन्तर्गत वर्गीकृत किया तब बहुतर ठाठों का मोह छोड़कर केवल सप्तम का ही प्रयोग किया था।

सन् १७०३ ई में तंजीर के महाराज तुमाजी राज भोंसले ने 'संगीत सारामृत' की रचना की। इसमें ब्यंकटमञ्जी का अनुसरण ही है ही शाङ्गदेव का प्रभाव भी निबिबाध है। 'संगीत सारामृत' के स्वराभ्याय में स्वर, श्रुति प्रायः सुष्ठता याति इत्यादि क विशेषण में शाङ्गदेव के 'संगीत रत्नाकर' की मान्यताओं का अनुकरण मान हुआ है अथ 'संगीत सारामृत' में भी मौलिकता का अभाव है। 'संगीत रत्नाकर' वही तेरहवीं शताब्दी का ग्रन्थ है वही 'संगीत सारामृत' सटाष्टवीं शताब्दी की रचना है। इस बीच अन्तराल में संगीत के क्रियात्मक स्वरूप में का परिवर्तन उपस्थित होना सम्भाव्य है उसका समुचित व्याख्यापन 'संगीत सारामृत' में भी नहीं हो सका है।

उपर्युक्त रचनाओं में से कुछ का उल्लेख इस प्रबन्ध के दूसरे तथा पाँचवें अध्याय में किया जा चुका है। रोप जिन कृतियों का यहाँ उल्लेख हुआ है वे प्रधानतः शास्त्रशास्त्र संगीत-पद्धति से सम्बन्धित हैं तथापि इन रचनाओं में उत्तरी हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति के ग्रन्थों की भी उपयोगी बात मिल जाती है, यद्यपि इनका सम्बन्ध उनके लिए भी उपरोक्त है। ये सभी रचनाएँ संस्कृत में हैं और इन्हीं के आधार पर उत्तर मध्यकालीन या रीतिवासीन संगीत के शास्त्रीय स्वरूप का अनुमान लगाया जा सकता है। प्रायेण कमकर हिन्दी रचना, उर्दू संसदीय आदि में जो पुस्तकें लिखी गयीं उनकी परम्परा इन्हीं ग्रन्थों से जुड़ जाती है। बम्बुर के महाराज प्रतापसिंह देव ने (सन् १०७६ से १५०४) 'संगीत सार' नामक ग्रन्थ का निर्माण अपने युग के अनेक संगीतज्ञों द्वारा कराया जा किन्तु उस पर भी 'संगीत रत्नाकर' संगीत दर्पण 'संगीत शारदा' 'अनुप बिजाय' इत्यादि पुराने ग्रन्थों का प्रभाव है। सन् १८८३ की रचना 'नगमाते शास्त्री' अथवा उपादेय है क्योंकि इसमें अपने प्रकाशन के युग के संगीत की बर्णना पर्याप्त है। 'नगमाते शास्त्री' की मास्यताओं में और शास्त्र की प्रसिद्ध मास्यताओं में बहुत अधिक अन्तर नहीं है। इस पुस्तक में स्पष्ट रूप से कुछ ठोठ विचारों को माना गया है। सन् १८४२ ई० में कल्याणकर द्वारा 'राग कल्पद्रुम' नामक ग्रन्थ लिखा गया। इसका भी कुछ ठोठ विचारों की प्रतीति होता है। इस ग्रन्थ के प्रारम्भिक पृष्ठों में संगीत-शास्त्र की भी बड़ी बहुत बर्णना हुई है, किन्तु इस बर्णना में 'संगीत रत्नाकर' के स्वराध्याय तथा 'संगीत दर्पण', 'रागमाला' इत्यादि ग्रन्थों में उल्लिखित सामग्री को ब्योक्त करने का प्रयत्न कर लिया गया है।

संगीत सम्बन्धी यह ध्याव्यापन तो उन पुस्तकों का है जिनके लेखक प्रधानतः संगीत पर ही लिख रहे थे या जो स्वयं उच्च क्रांति के संगीतज्ञ थे। इनके प्रति रीतिवासीन संगीत-शास्त्र पर कुछ ऐसी रचनाएँ भी उपलब्ध हैं जो बस्तुतः हिन्दी कवियों द्वारा लिखी गयीं किन्तु जिनकी रचना उन्होंने सम्भवतः मनोरञ्जन के लिए ही या फिर अपनी संगीत सम्बन्धी अभिरुचि की अभिव्यक्ति के लिए की थी यद्यपि ऐसी रचनाओं में संगीत-सम्बन्धी तथ्याभिव्यक्ति का कोनात्मक रूप स्थापना हो भी क्या सकती थी? वेब कुछ 'रागरत्नाकर' ऐसी ही रचना है। इस छोटी सी रचना पर भी बानोदर पण्डित का प्रभाव स्पष्ट है। कतिपय ब्रह्मचर्य इत्यादि हैं।

‘संगीत बर्षल’

धैरव का ध्यान

‘नयावर. अचिन्सातिलकरिजनेन
 सर्पेविमूपितगुणबहुतिबासा ।
 भास्वनिगुलकर एव गुमुग्घपाटी
 कुम्भाम्बरो जवति धैरव आदिराग ॥’ १

‘राम रत्नाकर’

धैरव राम सहित भावार्थ

बोझा

‘अस्मन्मुखे धैरव इमरु कर वृत्तयन तियधरधैरव ।
 मुग्घमानपकछानधर सीस बटा तति गंज ॥

धया क०

‘राम धयबाल गीमकंठ कंठ मुग्घमान मानुषत्र पावक विनीन करि राख्यो है ।
 उग्घबल घसम धय मुबनि मुर्जन बटा मुकुट सुगव भाल इन्दु बरि राख्यो है ।
 तालबारी बैताल प्रनापपाटी भूठ कर तार्थे यीमिनि वन इपक पूरि राख्यो है ।
 बुनि सरयमवै बरख बड़ो बरख सरख निमि नोर भैरों राजनिरि राख्यो है ॥’ २

- १ ‘चित्तके मस्तक में ले रंधा बहूती है, कपाल पर अन्नकला का तिलक है । चित्तके लीन भैरु हैं । चित्तके शरीर पर धूप प्रोक्ष्यमान हैं । चित्तके धयने धरीर पर हस्ति-वर्म बारस कर रखा है । चित्तके हाथ में विभूत नासित है, पले में मुग्घ-नाल है तथा चित्तके बरख इवेत है । ऐसा धारि राम धैरव है ।

रामीवर पण्डित कृत ‘संगीत बर्षल’

(अनुबादक पं० विश्वम्भर नाथ अट्ट एम० ए०
 एम० एम० बी० ‘संगीत विशारद’) पृष्ठ-८१
 प्रथम संस्करण १९६

- २ हेरु कृत ‘राम रत्नाकर’ पृष्ठ-२ हेरु प्रत्यावली प्रथम नाय, काशी
 नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा १९१२ में प्रकाशित

‘संगीत वर्णल’

भैरव की रागिनी भैरवी

प्यास

स्फटिकरश्मिदयी० रम्यकैमासगृह्णै
विक्रमकममपभैरवमयी मङ्गलम् ।
करपूतभववाद्या पीतवपयिताली
मुक्कविमिरितमृगणा भैरवी भैरवमयी ॥ १

‘राग रत्नाकर’

भैरवी यथा बो०

भैरव पूजति भोरुही रागिनि भैरवि काम ।
कमममुक्की कमभासनी क्रोमनाय पट तात ॥ २

यथा सर्वथा

कील से नैन कमानिधि सो मुख कौमल कामलता मुनरानी ।
बैभ सम्य प्योबनीसोरपी पट तात नमै विर सात्र मुहानी ॥
ताल समय कर क्य रसाय मुद्रुवति है छतिमाम भवानी ।
सारक क्यौ निधि सारक मोरुहै रावति भैरव राग की रागी ॥ ३

- १ "रमणीय कैलास बर्षत के विहार पर स्फटिक मण्डि के घातन पर शंठ कर, जिते हुए कमल के फूलों से जो महारत्न की का पूजन कर्णी है । जितके हाथ में कमवाद्य (मंजीरे) हैं । विद्यका बर्ल पीला है तथा जिताके नेत्र विद्यान हैं ऐसी भैरव की भार्या भैरवी कविषों ने बर्लन की है ।"

दामोदर पंडित द्वारा 'संगीत वर्णल' पृष्ठ-८३, ८६

२ 'राग रत्नाकर' पृष्ठ-६

३ 'राग रत्नाकर' पृष्ठ-६

‘संगीत बर्षल’

भैरव का प्यान

‘गंवाषटः सौष्टिकमातिमकस्त्रिनेत्र
 सर्पिकमुपितगुर्वंनकृतिवाद्या ।
 मास्वीनदूसकर एष नृमुध्वचारी
 शुभ्राम्बरो जयति भैरव भाविराव ॥ १

‘राग रत्नाकर’

प्रथम भैरव राग सहित भाष्यार्थ

श्लोक

‘मस्ममुजय ध्वं डमक कर तुमवन तियपरपव ।
 मुध्वमानयवसालवर छीत बटा ससि रंग ॥”

प्रथम श्ल०

“नाम ध्रुवबाल नीसकंठ कठ मुध्वमान नानुचन्र पावक त्रिनेत्र करि राख्यो है ।
 उज्ज्वल धरम धप सुबनि मुबंन बटा मुकुट सुर्वग भास इन्दु करि राख्यो है ।
 तालवारी बैताल प्रसापचारी पूत करे नार्थे योगिनि पन डमक पूरि राख्यो है ।
 पुनि सरसमयै बरव बड़ी बरव सरव भिदि मोर भैरों रागपरि राख्यो है ॥” २

१. जिसके अस्तक में से गंगा बहती है, कपाल पर जम्बूकता का स्थितक है । जिसके तीन नेत्र हैं । जिसके शरीर पर सर्प ओबाधनाय हैं । जिसने अपने शरीर पर हस्ति-चर्म धारण कर रखा है । जिसके हाथ में विशाल भास्ति है, उसे मैं बुध्व-नाम है तथा जिसके अस्त्र इवेत हैं । ऐसा सावि राग भैरव है ।

बामोदर पण्डित द्वारा ‘संगीत बर्षल’

(अनुवादक पं. विश्वम्भर नाथ बड्ड एम० ए०
 एम० एम० बी० ‘संगीत विशारद’) मुम्बई-४१
 प्रथम संस्करण १९२०

२. देव द्वारा ‘राग रत्नाकर’ पृष्ठ-२ देव प्रभाषिणी प्रथम भाग काशी
 नापरी प्रकाशित्वी तथा द्वारा १९१९ में प्रकाशित

'संकीर्ण कर्ण'

मैरव की पवित्री मैरवी

ध्यान

स्फटिकरचितपीठे रम्यकमलसमूह
 विक्रमकमलसमूहसंकीर्णकरी महेन्द्रम् ।
 करमूठकनबाधा पीठकनियतायी
 मुकुटिनिरिममुक्ता मैरवी मैरवस्त्री ॥ १

'राय रत्नाकर

मैरवी यथा बो०

मैरव प्रकृति मोरही पवित्रि मैरवि नाम ।
 कमलमृष्टी कमलासनी कोमलांग पट लाल ॥ २

यथा सर्वथा

कील से नैन कमामिषि सो मुख कोमल कामलता मुक्तासनी ।
 देव जमा प्योबनीसोरपी पट लाल लसै छिर धाम मुहानी ॥
 याम कमल कर रूप रक्षाय सुप्रकृति है ससिभाल भवानी ।
 सारद ज्यौं त्रिषि सारव मोरहि रापति मैरव राम की रानी ॥ ३

- १ "रमणीय कैलास पर्वत के जिखर पर स्फटिक मल्लि से धातन पर बैठ कर, जितने हुए कमल के कूलों से जो महादेव जो का पूजन करती हैं । जिसके हाथ में कमलाक्ष (संकीर्ण) हैं । जिसका कर्ण पीला है तथा जिसके नेत्र विजाल हैं ऐसी मैरव की भायाँ मैरवी कवियों ने कर्णन की हैं ।"

बालोदर 'संकीर्ण कर्ण' पृष्ठ-४३, ४६

२ 'राय रत्नाकर' पृष्ठ-३

३ 'राय रत्नाकर' पृष्ठ-३

संगीत वर्णम

भैरव की रागिनी बराठी

। ध्यान

बिनाशपत्नी बभित्तं मुकेली
 मुकुटका चामरचामेनन ।
 कर्णे दधाना मुरकृष्णपुष्पं
 बराठीमेव कथिता बराठी ॥१॥

'राग रत्नाकर'

बराठी बी०

पहर लीसरे छरद निशि बैराठी मर बास ।
 मोरी छित नूपन बघन मूनरुग कररसाल ॥ २

पद्या ल

रामरत बीरमिही भजनके धर्म कथन से तित कंक्की छानै ।
 बीरने कन लुगी धनके बुल की उपमा लखि कै छमि जानै ॥
 धारक बीम मध्याम्ह के अर बापि कनी सी रंभी मुलछाई ।
 बीर मिथे कर कंजनभूजन भैरव प्यायी बराठी बिरानै ॥ ३

१ अत्रिषके प्राग प्रथमत सुशोभित हैं । त्रिषके हाथ में कंकण है । जो अपने प्रिय स्वामी को चमर कुलन्दर प्रसन्न करती है त्रिषने अपने कानों में वेवलोह के मुक्त के पुष्प चारल किये हैं ऐसी बराठिना बराठी कही गयी है ।

बाधोदर बभित्तं कृत 'संगीत वर्णम' पृष्ठ-५७

रीतिकामीन काव्य और सांघीतिक प्रकृतिवां तथा उनका पारस्परिक सम्बन्ध २१६

'संगीत बर्षण'

मासकवीसिक की चामिनी तोड़ी

ध्यान

तुपारकुंभोग्रवसदेहपट्टि ।

कान्नीरकपूर्वबिलिपुदेहा ।

बिनामयती हरिष बनाये ।

पीनापरा रात्रति ठोड़िन्नेम ॥ १

'राग रत्नाकर'

टीको बी०

मृपनेनी मोहृति मृपनि रागति से कर बीन ।

सम्पूरण कुपहर सिविर तोड़ी कनक रगोन ॥ २

यथा क०

बीपर जमेली जाठ हाथ नीसककुकी वे ऊबरे बिबिष बास हाथ रम रोम की ।

मोहृनि मृगनि मृपननी परबीन बास सोन कर बीन ठान बीमै हिय हीम की ॥

सम्पूरण मोष मुक्त गरिममज्जोबनीके देखेछि बुति धनूय दामिनी ज्यो यह मोषकी ।

सिविर पहर बुजे धामद धनूप का पीबन जम्पारी प्यारी तोड़ी मासकोम की ॥ ३

'संगीत बर्षण'

मज राग की चामिनियां

मस्तारी बेचकारी ज भूपामो मुर्बरी तथा ।

टन्का ज पन्चमी भार्या मयरायस्य योपित्त ॥ ४

- १ "बिससठी देह का बर्षे कुन्द मजबा बर्षे के समान निर्मल स्वच्छ और जेत है । बिससे केसर तथा कपूर की सुगन्धि से अरौर का मर्मन ठिजा है । जो मर्म में मूर्ति से बिनोब करती है । बिससे अपने हाथ में बीला से रखी है । ऐसी घोमामयी कौशिक की भार्या तोड़ी है ।"

बामोदर पण्डित हस्त 'संगीत बर्षण' पृष्ठ-८१ २०

२ 'राग रत्नाकर, पृष्ठ-६

३ 'राग रत्नाकर, पृष्ठ-६

४ 'मस्तारी बेचकारी भूपामो मुर्बरी तथा टंकी ये पाँच मेष राग की भार्या हैं ।"

बामोदर पण्डित हस्त 'संगीत बर्षण' पृष्ठ-७१

'राग रत्नाकर'

शक मन्मथापूर्वा शो

मन्मथारी मठ गूबरी भूपाली मन्मथान ।
 देवधारि, मठ टक वहि पच मेघतिम नाम ॥ १

'संगीत दर्पण'

श्रीपद की रागिनी कानडी

ध्याल

कृपाणपादिर्यवन्तकड—
 मेकं बहूठी निबहूस्तकेन ।
 संस्तूपमाना गुरचारमीर्षे ।
 सा कानडेय किन दिव्यमूर्ति ॥ २

'राग रत्नाकर'

कान्हूरी यथा शो

दन्तिदन्त करबाल धक बिए बहूकर नाम ।
 शीसम कुपहर कान्हूरी सुमट घेत पट नाम ॥ ३

कवित्त

बन्धनतिलक भास शोक कर बाल गजदन्त करबाल कीन्हे बीरके बिधानरी ।
 श्रीपम पहर बूज बज्जल नि धाग म वी वीन्हे सात बाघो बन्धो सम्पूरम गालरी ॥
 मेघ परबपरबपाव गुन संबरव धंगनि धुमप घठ बधुर निबालरी ।
 मुनि मुच्छाम को न सापठ बिठान कान कीबिद सचही परे कान मुनि कान्हूरी ॥४

१ 'राग रत्नाकर', पृष्ठ-१७

२ 'जितके हाथ में बन्धु है । जिसने हाथी के दाँत का एक कुकड़ा हाथ में ले रखा है । देवताक के चारस जितकी स्तुति करते हैं । कानड़ा की ऐसी दिव्य मूर्ति है ।'

बामोदर पत्रिकत बून 'संगीत दर्पण', पृष्ठ-१ १

३ 'राग रत्नाकर' पृष्ठ-१३

४ 'राग रत्नाकर' पृष्ठ-१४

इन उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि देव ने 'राग रत्नाकर' में प्रायः दामोदर पण्डित का ही अनुसरण किया है। यहाँ कहीं कोई बहुत भ्रष्ट है यह देव की काव्य-प्रतिभा के कारण उपस्थित हुआ है। उदाहरणार्थ 'संगीत दर्पण' में कानड़ी का जो 'ध्यान' है उसमें 'अग्नि तिलक मान' का उल्लेख नहीं है किन्तु 'राग रत्नाकर' में इसका वर्णन है। दामोदर पण्डित ने बराटी के 'उग्गवल गीर' और 'सिद्ध कबुकी' की बर्णना नहीं की है किन्तु देव ने काव्योक्ति रसिकता से इसका उल्लेख किया है। देव की प्रतिभा ने विभिन्न रागों में अनेक अनेक सीटब से प्रयुक्त होने वाले म प ध नि सा रे ग म प ध नि ति सा ग म प ध इत्यादि स्वर-समुदायों का उमा प्योबनी १ सुरम में प्योबनी २ नि सा ग म प ध इत्यादि विविध रूपों में अत्यन्तपूर्ण अभिव्यक्ति की है। किन्तु इन सामान्य परिवर्तनों से प्रतिराष्ट्र नियम में कोई तात्त्विक अन्तर उपस्थित नहीं होगा।

'गार् विनोद ग्रन्थ' में भी प्राचीनता के प्रति अनात्मिक मोड़ की मनोवृत्ति दिखायी देती है। इस ग्रन्थ की रचना मोस्वामी यशदास द्वारा संवत् १२३२ में हुई थी। प्रस्तुत ग्रन्थ का सम्बन्ध संवत् १७० से लेकर संवत् १६०० तक के ऐतिहासिक काव्य और संगीत से है परन्तु मुख्य-परिचर्चा कभी किसी मान्य कवि के समान नहीं हुआ करता। जिस प्रकार संवत् १६०० परचात् हरिद्वार-जुग ऐतिहासिक और धार्मिक काल के बीच का संक्रान्ति काल है तथा उसमें अनेक नवीन बातों के साथ पुरानी परम्परा भी मिली हुई दृष्टिगोचर होती है उसी प्रकार मोस्वामी यशदास की का समय ऐतिहासिक संगीत और धार्मिक युगीन संगीत के बीच संक्रान्ति काल माना जा सकता है। इस प्रकार 'गार् विनोद ग्रन्थ' की संगीत सम्बन्धी अनेक माध्यमार्थ ऐतिहासिक सांगीतिक प्रवृत्तियों के अध्ययन में सहायक सिद्ध होती है। 'गार् विनोद ग्रन्थ' का आरम्भ औरत राग के 'ध्यान' से होता है और यह 'ध्यान' 'संगीत दर्पण' से ही उद्धृत

१ "देव उमा प्योबनी सो रंपी पट नाल लई तिर साज सुहानी"।

देव दूत, 'राग रत्नाकर' पृष्ठ-३

२ "छोड़े सुरंग में प्योबनी जो अमु हेरति प्रेम लकोप लताई"।

देव दूत 'राग रत्नाकर', पृष्ठ-४

३ 'और समय धावति न धावति निता पवर्ष तिसिर प्रभात पुनकारी पुनकारी है'।

देव दूत, 'राग रत्नाकर' पृष्ठ-५

८, किन्तु ग्रह, प्रथम ग्यास इत्यादि का वर्जन 'संगीत वर्ण' से निम्न है। 'संगीत वर्ण' का मूलक बीजत ग्रह, प्रथम धीर ग्यास से युक्त है पञ्चमिध धोइव जाति का राग है। १ किन्तु 'राग विनोद ग्रन्थ' के लेखक ने मूलक का ग्रह प्रथम धीर ग्यास स्वर पाण्डार मानते हुए 'हनुमन् मठ' की बुझाई दी है। २ लेखक के मतानुसार यह राग रामकली टोड़ी धीर गौरी से निम्न होकर काइव(पाइव) जाति का राग है। ३ इत लक्षण के उल्लेख के परचात् 'नाद विनोद ग्रन्थ' का लेखक जब उदाहरणस्वरूप अपने मूलक राग की स्वाई धीर अन्तरा उपस्थित करता है तब मूलक से सप्तो स्वरों का स्पष्ट प्रयोग कृष्टिपोचर होता है। ४

अस्तु स्पष्ट है कि 'नाद विनोद ग्रन्थ' के लेखक के युग में भी मूलक न जो 'संगीत वर्ण' के अनुकूल धोइव जाति का राग था धीर न पाइव। उक्त समय में वह प्रायः के ही समान सम्पूर्ण जाति का राग था परन्तु अपने युग के मूलक का उदाहरण देते हुए भी प्राचीनता के स्वामी के कारण लेखक ने

१

मूलक

“बीजतां प्रहृष्यन्ती रिपहीनावपता ।

मूलक स तु विज्ञेयो बीजताधिकमूर्च्छनाः ।

विह्वतो बीजतो यत्र धोइव परिधीतित ॥”

“मूलक राग में 'बीजत' स्वर अन्त, ग्रह ग्यास है। 'रि प' स्वर अधिक है। बीजत की मूर्च्छना में से उत्पन्न होता है। इसमें विह्वत बीजत लिया जाता है धीर यह राग प्रोचुव है।

बालोचर पञ्चमिध संगीत 'संगीत वर्ण' पृष्ठ-४३

२ “मूलक राग का पाण्डार प्रथम, पाण्डार ग्रह है, बांघारी हो ग्यास है, बांघारी ही गुर की पूटी मूर्च्छना है प्रात-काल की गान्या जाता है हनुमान मठ में कहा है—”

मोस्वामी पन्नालाल कृत 'नाद विनोद ग्रन्थ' पृष्ठ-१

३ “रामकली, टोड़ी, धीर इनसे मिलकर बना है, कुछ बीजत से प्रीति करता हुआ काइव मूलक है।”

मोस्वामी पन्नालाल कृत 'नाद विनोद ग्रन्थ' पृष्ठ-२

४ इच्छम्यः मोस्वामी पन्नालाल कृत 'नाद विनोद ग्रन्थ'

पृष्ठ-२, ३ मूलक राग का स्वामी धीर अन्तरा

उल्लेख प्राचीन कवियों का ही किया है। बल्कि ऐतिहासिक प्रायः सभी संगीत शास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थ ऐसे ही हैं जिनमें प्राचीन संगीत-शास्त्र की संक्षिप्त रूप रेखा ही या यही है किन्तु इन ग्रन्थों के लेखक अपने और अपने पूर्ववर्ती विनाशक संगीत के विवेचनात्मक सामंजस्य के आधार पर अपने युग के संगीत शास्त्र का स्पष्ट आकार लक्षा नहीं कर सके हैं। इस प्रकार संगीत-शास्त्र में भी ऐसी ही स्विमुक्तक बढ़ता का समावेश ही गया जैसा ऐतिहासिक हिन्दी काव्य-शास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थों में परिगणित हुआ है। इन युग में उन्नीस या पचासी में संगीत सम्बन्धी जो ग्रन्थ लिखे गए उनमें भी भरत और शाङ्कर की पद्धति के अनुसरण का प्रयास हुआ किन्तु प्राचीन आचार्यों के विद्वान्तों की अतीति हृदयमय किये बिना उन विद्वान्तों का अपने युग के प्रवर्धित संगीत से बन्धु सम्बन्ध-स्थापन करने का प्रयास एक ऐसी भूल थी जिसके कारण ऐतिहासिक प्रवृत्तियों में असांख्यीय अस्पष्टता छा गयी।

ऐतिहासिक संगीत के मूल्य-ग्रन्थों और अन्य संगीत में अस्पष्टता के एक नहीं बनेक कारण हैं। सबसे प्रमुख कारण तो यही है कि संगीत-शास्त्र का प्राथमिक, सुस्पष्ट, सर्वसम्मत और बीजगम्य व्याख्यापन जैसा पद्य में हो सकता है वैसे पद्य में नहीं किन्तु ऐतिहासिक काव्य शास्त्र को तरह संगीत-शास्त्र की भी अर्थात् पद्य में ही हो रही थी फलतः संगीत-शास्त्र में ईप्सित सुबाधता न था सही। 'नाट्यशास्त्र' और 'संगीत रत्नाकर' जैसे ग्रन्थों के आशु के कारण ऐतिहासिक संगीतशास्त्रों की मौलिकता को भी पतनने का अवसर नहीं मिल सका। इसके अतिरिक्त मूल्य-ग्रन्थ-लेखकों और मध्य-निर्माताओं के मूल्य-मूल्य व्यक्तित्व के कारण भी अनीप्सित सामंजस्य उपस्थित न हो सका। संगीत-शास्त्र पर लिखने वाले ऐतिहासिक अधिकांश लेखक अपने विषय के शास्त्रीय पक्ष का तो असांख्यीय प्रतिपादन कर रहे थे परन्तु प्रतिपाद्य मूल्यों के उदाहरण स्वरूप आतिथिकियों की प्रकृत रचना प्राप्त नहीं करते थे। आतिथिकियों की रचना उक्त युग के व्याप्तियामा पाठकों द्वारा होती थी। इस प्रकार उक्त युग के संगीतज्ञों और संगीत की भी स्मृति रूप से दो वर्गों में विभक्त मानना बुद्धिबुद्ध प्रतीत होता है। एक वर्ग उन पण्डितों का या जिनका मुख्य ध्येय सिद्धान्तिक या शास्त्रीय विवेचन का रूप ही था या उन पाठकों का जिनमें से अधिकांश अधिज्ञित होने के कारण शास्त्रीय उदाहरण से उचित उदाहरण आतिथिकियों की रचना करते हुए संगीत की क्रियात्मक साधना में अस्तित्व थे। यिनी गुणम रसूच शककर ली, मकलन ली, यिनी घोषी, सदारण, अचारण,

मोहम्मद शाह रंगीने मन्नाब सास्त्र एवं नबाब कासिम खानी की प्रभृति उच्च कोटि के संगीतज्ञ इन्हीं वर्षों में घाते हैं। किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि वे कलाकार संगीत के शास्त्रीय पक्ष से सर्वथा अनभिज्ञ थे। परम्परा से वाक्य होने के कारण या योग्य गुरु के विषय होने के कारण इन्हें संगीत के शास्त्रीय पक्ष का भी ज्ञान था किन्तु इसका अर्थ यह संगीत के शास्त्रीय पक्ष का निरूपण न था। इन्हें ऐतिहासिक उन कवियों की श्रेणी का कलाकार कहना चाहिए जो लक्षण-निरूपण और उदाहरण-अवयव के भ्रमों में न पड़कर स्वैच्छा से कविताएँ लिख रहे थे परन्तु जिसकी रचनाएँ निश्चय ही किसी न किसी सभ्य के उदाहरणस्वरूप रही या सज्जी थीं। जिस प्रकार काव्य-शास्त्र से अनभिज्ञ पाठक के लिए इन कवियों की रचनाओं का पूर्ण रसास्वादन सम्भव नहीं है उसी प्रकार इन गायकों की कला भी संगीत-शास्त्र से अपरिचित श्रोता के लिये नहीं है। इस प्रकार की घनेक पुरानी रचनाएँ बिना स्वर लिपि के 'राजकल्पद्रुम' में तथा स्वरलिपि सहित 'हिन्दुस्थानी संगीत-पद्धति' नामक पुस्तक 'मालिका' के विभिन्न भागों में संगृहीत हैं।^१

ऐतिहासिक काव्य और संगीत के तुलनात्मक अध्ययन में वस्तुतः यही बात स्पष्ट है जहाँ संगीत और काव्य की अपनी-अपनी विशेषताओं के कारण एक-दूसरे प्रबल व्याघात उपस्थित होता है। ऐतिहासिक काव्य प्रायः ही अपने लिखित रूप में उपलब्ध है परन्तु उस युग के क्रियात्मक संगीत का मास्परक केवल श्रोता उपलब्ध नहीं हो सकता। प्रायः उस युग का संगीत जामोफोन रिकार्ड जैसे किसी यंत्रण द्वारा सुरक्षित कर लिया जाता या वर्तमान युग की तरा लपेट्टा बोमबम्ब स्वरलिपि द्वारा उसे किसी सीमा तक बाधक कर लिया जाता तो प्रायः उस युग के क्रियात्मक संगीत के प्रत्यक्ष ग्राह्यत्व स्वरूप के

१ 'हिन्दुस्थानी संगीत पद्धति' में जो प्रमुख जयान्त तराने इत्यादि विद्ये गए हैं उनमें से कुछ तो प्राचार्य भातखण्डे द्वारा बनाए हुए हैं तथा कुछ उनमें प्रमुख शिष्यों द्वारा लिखित हैं, किन्तु अधिकांश प्रमुख जयान्त, जयान्त इत्यादि पुराने जस्तादी के रहे हुए हैं। विभिन्न बरतनों के वाक्य समेत तक उन जयान्तों की अपनी बरतन की रसा करते हुए नहीं रहते हैं। इस प्रकार उपर्युक्त पुस्तक में प्रायः सभी प्रमुख पुरानों के जयान्त इत्यादि संगृहीत ही किये हैं। यही कारण है कि इस बोमबम्ब में प्रायः इतने पुस्तक से प्राणितिकार्य उद्भूत की गयी है।

समझने में इतनी कठिनाई न होती। कृष्णानन्द व्यास का 'राज कल्पद्रुम' निश्चय ही भारतीय संगीत का विश्वकोश माना जा सकता है, परन्तु उस में ध्रुव, जगन्नाथ द्रुमदी तयना प्रभृति का उल्लेख होने पर भी उन गीतों की तात्कालिक नाट्यात्मक निबन्धना को समझने का कोई साधन अब खोज नहीं रह गया है। सांख्यिकाओं को गीत ताल स्वर इत्यादि के साथ एक सीमा तक स्वरानुसंधान में प्रायश्चित्त करने की प्रवृत्ति पर्याप्त प्राकृतिक है। परन्तु 'कल्पद्रुम' में किसी भी सांख्यिका की स्वरानुसंधान नहीं मिलती। ऐसी दशा में पुरानी परिपाटी के यादगर्भ से मौखिक रूप में परम्परा से प्राप्त उन गीतों की जो नाट्यात्मक निबन्धना उपलब्ध होती है उसी का प्रयत्न ग्रहण करके धारणा बढ़ता पड़ता है या फिर 'भारतपुराणमाला (राजा मन्दाकार प्रसी कृत) हिन्दु स्वामी संगीत-वङ्गलि क्रमिक पुस्तक मासिका जैसी पुस्तकों में पुराने गीत जिस रूपरेखा में मिल जाते हैं उन्हीं को आधार मानना पड़ता है। तथापि यह तो निश्चित ही है कि बीचकाल से पूर्व-सिन्धु की परम्परा से मौखिक रूप में जने जाते रहने के कारण इनकी मूल नाट्यात्मक निबन्धना एकान्ततः प्रसन्न नहीं मानी जा सकती। 'राज कल्पद्रुम' मात्र मात्र ऐतिहासिक महत्त्व का ग्रन्थ रह गया है। उसमें संसृष्ट गीतों की राग-तालवद्ध क्रियात्मक संगीत का व्याख्यान प्रकाश करने के लिये ऐसा ही प्रयास आवश्यक है जैसा मूल पुरानी गीत इत्यादि के पदों का धारण के लिए अपरिहार्य है। †

† सुबना — गीतों के सम्बन्ध में राग और ताल निर्देश मिल जाने पर जोड़ी बहुत सुविधा हो सकती है क्योंकि गीतों को लेकर पापक को यह सोचना पड़ता है कि —

- १ कविता किस रस की है और उसके रसानुसृत कोन का राग उपयुक्त होगा।
- २ प्रयुक्त राग का स्वरूप क्या है।
- ३ स्वामी में राग का उठाव कैसे होगा।
- ४ धम्मरे में राग का उठाव कैसे होगा।
- ५ यह संझ और ग्यात स्वरों के निर्वाह के लिए क्या करना उचित होगा। (इस नियम का धारणन बढ़ता से पालन नहीं होता तथापि धर्म स्वर का महत्त्व प्रायः यथावत है)

१८३२११ 'संगीत रत्नाकर' में बाणेश्वर का उल्लेख करते हुए जो कुछ कहा है वह आज भी अधिकतर में शरय है। बाणेश्वर के लिए संगीत का पूरा ज्ञान तो आवश्यक है ही काव्य-ज्ञान भी किसी सीमा तक अपरिहार्य है।

- १ गीत के शब्दों का राग के स्वरों से किस प्रकार सामंजस्य स्थापित होगा।
- २ कविता के भावों के अनुसार उसके किन्-किन् शब्दों के लिए किस-किस प्रकार की स्वर-रचना स्ताम्प्य होगी।
- ३ ताल के कौन-कौन से आकारों के साथ गीत के कौन-कौन से भावों का सम्बन्ध स्थापित होगा। — लक्षिका

१ आचार्य भातकण्ठ ने 'संगीत रत्नाकर' (आङ्ग'रु) के आधार पर 'हिन्दुस्थानी संगीत-प्रवृत्ति' नामक पुस्तक 'मालिका' के चौथे भाग में (पृष्ठ-४४, ४५, ४६, सन् १९३२) बाणेश्वर की इन विशेषताओं का उल्लेख किया है:

“१ अद्यानुशासन ज्ञान २ अविमान प्रबोद्धता (अमर कोवाचि प्रश्नों का ज्ञान), ३ अत्र प्रवैरवेदिन्य (सब प्रकार के प्रश्नों का ज्ञान) ४ अलंकार-कौशल ५ रस भाव परिज्ञान ६ रस-स्थिति-ज्ञान (मिथ्य मिथ्य शब्दों में प्रचलित संगीत की ऐतिह्यी का ज्ञान) ७ अशोक भाषा ज्ञान ८ कला-शास्त्र कौशल ९ गीत वाद्य और नृत्य में आनुष्य १० हृद्यसातीरप्रामिता (रागाभिप्यस्ति में क्लामि प्रतीत न होना और सौम्य व्यक्तित्व) ११ जय ताल कला-ज्ञान १२ अनेक काकु-ज्ञान (स्वर काकु राग काकु देश काकु क्षेत्र काकु अन्य राग काकु यंत्र काकु-इन भेदों का ज्ञान) १३ अमृत प्रतिमोद्नेदभारत्व (नवनबोम्येपधालिनी प्रता) १४ अनुप वेदता (सुखर गायन करने की अक्षित) १५ देशी राग ज्ञान, १६ वाक्य पदुत्व (तथा में विद्यय प्राह कराने वाला वाक्य-आनुष्य) १७ राग-रूप परिचयाम १८ सार्धत्व (सरसत्व), १९ उचितप्रता (धीरित्य-विचार) २० अनुच्छिन्दोत्ति-निर्बन्ध (रसतन्त्र रचना करने की शक्ति) २१ नूतनवाद्यु-विनिर्मितिज्ञान (नवीन स्वर-रचना करने का ज्ञान) २२ परिचित परिज्ञान २३ प्रबन्ध प्रयत्नता २४ हृतगीतविनिर्मास (छोम कवित्व) २५ वरान्तर विरचयता (विद्य-भिन्न गीतों की प्रया के अनुकरण करने की सामर्थ्य) २६ विरचानमनक्रीडि (तीनों स्वार्थों में वचक लेने की अक्षित) २७ धातुविनैपुध्य (सामान्ति तथा वपमालि का ज्ञान) २८ अविमान (चित्त की एकाग्रता)।”

मलिकान्त की कविता में भी ठीक ऐसा ही अन्तर दृष्टिमोक्ष होता है। मन्त्रि कालीन कवियों में यदि भावपक्ष प्रबल है तो रीतिकालीन कवियों का कलापक्ष अधिक लक्ष्य है।

रीतिकालीन काव्य और संगीत के इस तुलनात्मक अध्ययन से दोनों की मूल प्रवृत्तियों में साम्य सुस्पष्ट हो जाता है। गृहकार रस का प्राधान्य और अमलकार प्रवर्तन की कवि तो तत्कालीन संगीत और काव्य दोनों ही में समान रूप से मुखर हैं। इस युग का काव्य अपने बाह्य रूप-आकार में भी संगीत से सम्बन्ध रखता है अतः पहले परिच्छेद में तत्कालीन छन्द और अलंकार-बोधना का संगीत की दृष्टि से विचार करना समीचीन होगा।

उपरोक्त विवेचन के परिणामस्वरूप ये निष्कर्ष उपलब्ध होते हैं

- १ काव्य में भावपक्ष और कलापक्ष दोनों ही अपरिहार्य हैं तथा काव्य की सीर्ष्य-साधना में संगीत अतीव सहायक होता है।
- २ रीतिकालीन विभिन्न काव्य प्रवृत्तियों के समानान्तर ही उस युग की विभिन्न सांगीतिक प्रवृत्तियाँ भी थीं।
- ३ रीतिकालीन संगीतकों की सांगीतिक निबन्धनाओं में चाहे सब-काव्य-माधुरी और उस युग की रीति-माधुरी के दर्शन न हों परन्तु तत्कालीन काव्यगत प्रवृत्तियाँ उन में भी स्पष्टतः दृष्टिमोक्ष होती हैं।
- ४ उस युग की परिस्थितियाँ तत्कालीन कवि और संगीतज्ञ दोनों ही को समान रूप से परिचेष्टित किये हुए थीं।

बियाड़ का प्रदर्शन बुद्धि का कोशम ही तो है। आलाप की सी स्निग्ध पम्पीरता यहाँ कदापि नहीं मिलेगी। यह अमलकार-अदर्शन भी बड़ा घालन्य प्रब होता है। तथापि यह ध्यान रखना चाहिए कि अमलकार-अदर्शन की युग में हृदय पक्ष का पला न धीरे बिया जाय। बुद्धि बायक ऐसे भी मिलेने को बार-बार भिन्न आलाप करके भट्ट तालबाजी पर अन्तर घाते हैं। इससे उनका पाण्डित्य-अदर्शन तो घटाय ही जाता है, किन्तु हृदय पक्ष का व्यक्तीकरण न होने से गाने में 'रस नहीं आ पाता।'

५ विश्वम्भर नाथ प्रभू द्वारा 'संगीत प्रबन्ध'
पृष्ठ-२५, २६ द्वितीय संस्करण

- ३ ऐतिहासिक आचार्य-कवियों के समान उस युग के संगीतशास्त्रियों पर भी अपने विषय से सम्बन्धित संस्कृत ग्रन्थों का प्राक्क विद्यमान या फलतः उनमें भी मौखिकता का प्रभाव रहा ।
- ६ ऐतिहासिक काव्य की तरह उस युग के संगीत में भी शृङ्गारिकता और अमत्कार-प्रदर्शन का प्राबल्य हो गया था ।
- ७ ऐतिहासिक सांगीतिक निबन्धनाद्यो के पीछे से भी उस युग की कविता की तरह प्रायः नायिका-भेद मन्त्र-धिस्र आतु-वर्धन इत्यादि की ही अर्थात् अधिक हुई हैं ।

परिच्छेद-७

रीतिकालीन छन्द और अक्षर-योजना
का

संगीत से सम्बन्ध

रीतिकालीन छन्द और अलंकार-योजना

का

संगीत से सम्बन्ध

परिच्छेद-७

बिह्व-वाङ्मय का अधिकोष्ठ छावोबद्ध है और इसमें सन्देह नहीं कि छन्दारमक निबन्धना का आधार संगीत-शास्त्र ही है। पारंपार्य समीक्षकों ने जब कविता को समीतात्मक बिचार प्रथमा मानव-हृदय के धारैयों की संगीतमय भाषा में अभिव्यक्ति स्वीकार किया था तब कविता के छन्दोबद्ध सौष्ठव और उसके न्यायमक प्रवाह को भी वे भूले न थे।^१ समीत और काव्य के पारस्परिक सम्बन्ध के स्पष्टीकरण में छन्द का अध्ययन अविहार्य रूप से सहायक होता है। मानव धारि-काय से अपने हृदय की तीव्र न्यायमक अनुभूति को संगीतमय भाषा में ही अभिव्यक्त करता थाया है। हृदगत उन्माध के प्रवृत्त में समा न सकने के कारण वह प्रथम ही नाच उठा होया और शोकामिभूत होने पर उसकी बाणी की धारिता एवं पद-सञ्चार की प्रिविलता भी इसी प्रकार मुस्पष्ट रही होवी।^२ मानव की इसी मानसिक और सारैरिक रथा में वे बीज छिने पड़े थे जो

१ (क) *An Anthology of Critical Statements* by T Carlyl
Page-81

(ख) (Poetry is) the concrete and artistic expression of the human mind in emotional and rhythmical language"

—Watts Duntton "Poetry" in *Encyclopaedia Britannica*
(Ninth Edition) Page-83

(कविता) "धारैयप्रवण तथा छन्दमय भाषा में मनोबावों का मुक्त एवं कलापूर्व प्रकाशन है।"

२ " and first from the origin of metre. This I would trace to the balance in the mind effected by that spontaneous effort which strives to hold in check the working of passion"

— *Biographia Literaria* by Coleridge
Page 100 (Edition 1930)

कासांतर में संकुचित होकर मानव भावामिव्यक्ति के लिए काव्य और संगीत के सहज माध्यम के रूप में प्रस्तुत हो उठे । १

मानव की जयात्मक चेतना निर्यागम्य है । उसकी अनेक धारीरिक क्रियाएँ जैसे श्वास की क्रिया रक्त परिचलन की क्रिया चलना-फिरना इत्यादि निरव्ययात्मक रूप से जयात्मक ही है । २ अतः इस सहज जयात्मक चेतना का जब

“ और पहले जन्म के उद्भव-काल से । इसका कारण, मैं स्वतः संज्ञात प्रबल से उद्भूत वह मानसिक अनुगत समझता हूँ जो चित्त के भावेय को नियंत्रण में रखने का यत्न करता है ।”

- १ ऐतिहासिकों का मत है कि कृष्टि के प्रारम्भ से अधिकतम पम्भीर और मर्मध्यापी भावों को अनुभवों ने संगीतमय भावा में ही व्यक्त किया है । अतएव कविता और कृत या संगीत का सम्बन्ध बहुत पुराना और स्वाभाविक है । इस सम्बन्ध के कारण हमारे मनोवेग अधिक तीव्र पाव से उत्पन्न हो उठते हैं । हमारे भावों में अद्भुत परिवर्तन हो जाता है और हमारी कल्पना कवि की कल्पना का अनुसरण करती हुई कहीं-कहीं वह से जाती है, चली जाती है और अपनी सत्ता भूलकर उसकी सत्ता में लीन हो जाती है ।”

डा० इयाममुम्बर दास द्वारा 'साहित्यशास्त्र' पृष्ठ-१० अंश संस्करण

- २ The sense of rhythm —on which it may be said that sensory exciting effects of hearing including music finally rest —may probably be regarded as a fundamental quality of neuro-muscular tissue ”

— Studies in the Psychology of Sex' by Havelock Ellis Volume I Edition 1936 (Sexual selection of Man, Hearing) Page—113

“यन्त्र की अनुसृष्टि को—जिसके सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि यन्त्र इती पर यन्त्र के अन्तर्गत संगीत भी सम्मिलित है अनुसृष्टि विषयक उद्दीपनकारी प्रभाव निर्भर है—सम्भवतः स्नायु-वैज्ञानिक विद्यालय अनुसृष्टि का आधारभूत गुण माना जा सकता है ।”

किसी अन्य समारम्भ वस्तु से सम्पर्क स्थापित होता है, तब उसका परिणाम हमारे लिए उद्दीपनकारी होता है। १ वस्तुतः संगीत और काव्य दोनों ही का बाहु बहुत कुछ समय और छन्द पर ही प्रापुठ है। संगीत वा काव्य की अभिव्यक्ति लय-सम्पृक्त होने पर श्रोता को प्रतापसा ही अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है। जिस प्रकार नृत्य देखते समय स्वतः नृत्य न करते हुए भी हम उसकी पंक्ति से मानसिक तादात्म्य स्थापित करके मानो मनसा उस नृत्य में सक्रिय भाग लेने लगते हैं, उसी प्रकार संगीतज्ञ या कवि के लय प्रववा छन्द के बाहु से सिंच कर और उसके प्रवाह से तादात्म्य स्थापित करके हम उसमें मनसा प्रवाहित होने लगते हैं। ऐसी स्थिति में संगीतज्ञ या कवि की अभिव्यक्ति हमारी मन-स्थिति को सहज ही धारणासा कर लेती है और इस प्रकार वह हमारी स्वाभाविक लयारम्भता का तात्कालिक परिचिन्तन ग्रंथ बन जाती है। २ इसी कारण कवि और गायक दोनों ही लय की उन्मेषा नहीं करते। संगीत की वो प्रकृति ही ताल और लय से अभिन्न है। अतः प्रायः ही वह ताल और लय से प्राबद्ध है किन्तु हिन्दी-साहित्य के छायावादी कवियों ने

१ (क) वही, पृष्ठ-११४

(ख) "कविता बहुतांश में कवि के भाव स्थित तरल सखों का संगीत की लय-छन्द में प्रायक प्रवाह है। मानव की शरीरगत सहज लयात्मक चैतना का प्रमाण नियमित रक्त परिक्रमण, श्वास-क्रिया इत्यादि हैं। इस नैसर्गिक विरूपता का बहुवर्धन की किसी भी वस्तु से तादात्म्य निश्चयात्मक रूप से सहज मानव का उद्देश करता है।"

डा० विश्वम्भर नाथ बहु हस्त 'रत्नाकर' उनकी प्रतिभा और कला' पृष्ठ-२२६

२ "लय और स्वर के समितार में एक परस्परमकता है और क्योंकि सभी क्रियाएँ पवित्रोत्पन्न होती हैं, अतः शरीर के धारोद्धारोद्देश में लय के साथ विरक्तता हमारा मन ही कविता के अन्तर्गत को सहज ही स्पर्श करता हुआ कवि के अत्यन्त सावधानी स्वप्नों से अक्षुण्ण सम्बन्ध स्थापित कर छन्द-प्रवाह से अभिन्न होकर बहने लगता है, अतः उच्चका सम्बन्ध हमारे हृदय की बहुल बन जाता है।"

वही पृष्ठ-२१७

छन्दों को प्राबलिकता के लिए धनावश्यक सम्बन्ध मान कर कविता को सम्पन्नमुक्त करना उचित समझ, फिर भी वे सार्वभौमिक प्रवाह की उपेक्षा न कर सके।

बमत्कार और पाण्डित्य-प्रदर्शन की रधि ने ऐतिहासिक कवियों को प्रायः सभी प्रकार के छन्दों में कविता लिखने की प्रेरणा दी। इसी कारण कैवल्य की 'उमचन्द्रिका' छन्दों का धनावधारण बन गयी थी। तथापि माधिकांश कवियों के प्रिय छन्द कवित्त सबैया और बोहा ही रहे। सबैया और कवित्त (बनासरी) दोनों ही बर्भिक छन्द हैं। सामान्यतः बर्भिक छन्द हिन्दी की प्रकृति के अधिक अनुकूल नहीं होते इसी कारण हिन्दी कवियों ने माधिकांश छन्दों का ही प्रयोग अधिक किया, किन्तु ऐतिहासिक कवियों ने कवित्त और सबैया दोनों ही छन्दों में अपनी कला-कुसुमता का परिचय दिया और पूरे दो सौ वर्षों तक ये दोनों छन्द कविता के क्षेत्र में अपना पौरवपूर्ण स्थान बनाये रहे।

सबैया और बनासरी के उत्थान और विकास के सम्बन्ध में विद्वानों के पारस्परिक मतभेद को स्वीकार करते हुए डाक्टर नगेन्द्र ने 'बेब और उनकी कविता' में सबैया की संपारिता का अपभ्रंश रूप स्वीकार किया है। प्राकृत-वैशम्प के आचार पर उन्होंने प्राकृत साहित्य में घाठ मगल वाले किरिट और घाठ सगल वाले दुर्मिस सबैया के अस्तित्व को भी सिद्ध किया है। उनकी यह धारणा सप्रमाण और तर्कसम्मत है, किन्तु बनासरी के सम्बन्ध में उन्होंने "द्रुपद राग में गये जाने वाले कतिपय पदों" के सम्बन्ध का उल्लेख करके जो माप्यता स्थापित की है उतमें किसी भी संवीक्षण की प्राप्ति हो सकती है,

१ 'बनासरी के विषय में कोई निश्चित प्रमाण नहीं मिलता। संस्कृत के पियल छन्दों में सबैया प्राकृत-वैशम्प में इतका कोई अस्तित्व नहीं है। कुछ विद्वानों की धारणा है कि द्रुपद राग में गये जाने वाले कतिपय पदों का का रूप इससे मिलता है और अनुमान यही है कि लोक-गीतों की कुछ सयों को बर्भिक आचार लेकर बीड़े परिवर्तन-परिधोवन कर आर्यों द्वारा यह छन्द बनाया गया। इस अनुमान की दृष्टि सूरतामर के निम्नलिखित पद से जो राग महार में है, अतिरिक्त-रूप में हो जाती —

सब रधि बधि साग्यो सपन कुंजनि कुंज

चित्त धरनि साम्यो प्रतिपा, बरकि रही।

क्योंकि भूपर कदापि किसी राग का नाम नहीं है। भूपर तो एक खेती है जिसमें बम्बीर प्रकृति का कोई भी राग नहीं भरलता से माया जा सकता है। पीतू, तिसककामोव समाज जैसे खंवल प्रकृति के रागों में भी भूपर-खेती का प्रयोग असम्भार्य नहीं है। दूसरी बात यह है कि जनासरी ही नहीं सबैया भी भूपर खेती में मेव है। इस कवन के प्रमाणस्वरूप निम्नस्थ उद्धरण उपस्थित किया जा सकता है

राग जामासट खीवास (विमन्वित)

जामा परी बनना जल में जहाँ ठाड़े हुते जबराम किमारे
जो गिरखे दिखमानु मुदा एगहू न जरे हूकाब बिठारे ।

हा हा जनि प्यारी तेरी प्यारी खीकि खीकि जरे,
पलकौ करक विप हिय में करकि रही ।
बातन करति कान सातसि है भीहू बाग,
जत न जलति बाग धंखिवा करकि रही ।
सूरदास नवन दहल विप मुनि ज्यों ज्यों,
कहाँ त्यों त्यों बच कतकों करकि रही ।

घाय देखिये कि उपर्युक्त यह रूप-जनासरी का कितना स्पष्ट उदाहरण है। घाने वाले राग महार में डालकर इसे कोई रूप दे दें, परन्तु साधारण रूप में यह जनासरी ही है।"

इस गीत की स्वरलिपि यह है

छावानट-बीठान (बिभन्धित) ।
स्वायी

| | | | | | | | | | |
|---|----|----|----|----|----|----|----|----|----|
| १ | सा | सा | प | सा | सा | - | सा | रे | सा |
| २ | बा | नि | प | बा | सा | • | बा | म | मा |
| ३ | | ४ | | री | ५ | | | २ | |
| ४ | सा | रे | सा | म | ५ | म | म | म | म |
| ५ | मे | ४ | हा | थ | ५ | प | प | ते | ५ |
| ६ | प | रे | प | म | - | के | हो | रे | - |
| ७ | ५ | गम | की | ना | - | ५ | ५ | ५ | ५ |
| ८ | | ४ | | ५ | ५ | • | | २ | |

धमरा

| | | | | | | | |
|----|----|----|----|---|----|----|----|
| १ | सा | सा | सा | - | रे | सा | सा |
| २ | नि | र | बे | ५ | बि | बा | भा |
| ३ | • | २ | २ | • | • | ३ | ३ |
| ४ | सा | प | म | - | म | रे | सा |
| ५ | ५ | ५ | ह | ५ | म | म | रे |
| ६ | ५ | ५ | २ | ५ | ५ | सा | सा |
| ७ | ५ | ५ | ५ | ५ | ५ | रे | सा |
| ८ | ५ | ५ | ५ | ५ | ५ | ५ | ५ |
| ९ | ५ | ५ | ५ | ५ | ५ | ५ | ५ |
| १० | ५ | ५ | ५ | ५ | ५ | ५ | ५ |

१ आचार्य जगतगुरु कृत 'द्विगुस्वामी संगीत-पद्धति क्रमिक' १९००, द्वितीय संस्करण

इस रूप में स्थायी और अस्थाय दोनों धर्म हैं अथ सर्वप्रथम का प्रथम चरण स्थायी बन गया है और दूसरा चरण अस्थाय। यदि मानक से संघीत और प्रायोगिक की रचना और की जाती तो तीसरा चरण संघीत और चौथा प्रायोगिक बन सकता था किन्तु भाषकों को छन्द-योजना से उठना प्रयोजन नहीं रहता बिना स्वर-योजना से। स्थायी और अस्थाय इन दो भागों में ही उन्हें मन्त्र, मन्त्र और तार स्वरों में रंग का नाट्यमय स्वरूप स्पष्ट करने की यथेष्ट सुविधा मिल जाती है अथ संघीत और प्रायोगिक की उन्हें विशेष विमता नहीं रहती। इसी कारण धनेक रूपों में प्राप्त स्थायी और अस्थाय ये दो ही धर्म उपलब्ध होते हैं। जैसे लयाक्षरों में भी गीत के उपर्युक्त चारों धर्म दिखाये जा सकते हैं परन्तु उनमें संघीत और प्रायोगिक के धर्म कहीं-कहीं ही होते हैं। सामान्यतः लयाक्षरों की रचना स्थायी और अस्थाय में ही पूर्ण हो जाती है। अस्तु, उपर्युक्त उद्धरण यह सिद्ध कर देता है कि रूप-योजना में सर्वथा छन्द को वा लेना सुघल वाक्य के लिए कठिन नहीं है।

यही बात ब्रह्मसूत्र के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। ब्रह्मसूत्र-योजना का यह रूप उपलब्ध है

शक्ति शक्ति प्रायः प्यारे प्यारे बस तार तारे
 पठाइयो हुँसने को रजनी धंधिपारी है।
 भूजन उतार डारों और पठ छोड़ काठे
 बसो सब छोड़ काम लयन लरी घापी है।
 बनी यों सुधर मार, देखे बहु बार-बार
 बनकठ है शक्ति शक्ति पठ कापी है।
 परसे मूं मन्त्रा और काटत है विम की कोट,
 कहे हरिबन्धन बहु भावत धंधिपारि है।

इस प्रपञ्च की स्वर-लिपि इस प्रकार है

अपञ्चपञ्ची - औताम (विलम्बित) १

स्वामी

| | | | | | | | | | | | |
|-----|------|----|-----|------|------|-----|-------|-----|------|---|-----|
| म | - | प | प | प | प | प | - | प | म | न | सा |
| रे | | लि | सा | र | न | आ | ऽ | न | व्या | ऽ | रे |
| घा | × | • | | २ | | • | | १ | | ४ | |
| नि | त्रि | सा | प | रेप | रेसा | सा | - | सा | नि | न | प |
| वा | | ऽ | ब | ऽऽ | न | सा | ऽ | र | सा | ऽ | रे |
| प | वे | • | | २ | | • | | १ | | ४ | |
| घा | बा | सा | रेम | - | मप | - | सांनि | सां | सां | - | सां |
| प | टा | ऽ | यो | ऽ | हेऽ | ऽ | ले | ऽ | बे | ऽ | को |
| घा | | • | | २ | | • | | १ | | ४ | |
| सां | सां | नि | नप | पत्र | सां | निन | पन | म | परे | न | सा |
| र | न | मी | पऽ | बीऽ | ऽ | याऽ | ऽऽ | रि | हेऽ | ऽ | ऽ |
| घा | | | | २ | | • | | १ | | ४ | |

धन्तरा

| | | | | | | | | | | | |
|----|---|---|-------|-----|----|-----|---|----|-----|---|-----|
| म | - | प | सांनि | सां | नि | सां | - | नि | सां | - | सां |
| पु | ऽ | ब | म | ऽ | ऽ | ठा | ऽ | र | बा | ऽ | रो |
| घा | × | • | | २ | | • | | १ | | ४ | |

१ आचार्य भातखण्डे द्वारा 'द्विभुक्तानी संक्षेप-व्याप्ति क्रमिक पुस्तक सामिका,'
भाग चौथा वृत्त-२२४, २२५ और २२६, द्वितीय संस्करण

| | | | | | | | | | | |
|-------------------|--------------|-------------------------------|--------------------------------|---------------|----------------|--------------------------------|------------------------------|----------------|-------------------------------|------------------|
| नि घा | सा नि | सा | प र | रेम () | रेवा () | नि घा | - | रेमि () | ब | नि प |
| घोर X | र | ऽ | प | ऽऽ (२ | ऽऽ (२ | घो • | ऽ | बऽ (६ | का | ऽ रो ४ |
| रे ब X | म र सो | - ऽ • | म र | म ब २ | प ऽ | सा नि घो • | सा ऽ | नि क ६ | सा का | - सा ऽ म ४ |
| प सा म X | सा प | निब () मऽ (• | बाप () माऽ (• | म ऽ २ | म सा घी | निब () भाऽ (• | पब () ऽऽ (• | म रि ६ | गरे () हे (• | ब सा ऽ ४ |

संघाटी

| | | | | | | | | | | | |
|---------------|----------|------------------|--------------|-------------------------------|--------------------------------|---------------|--------|-------------------------------|----------|--------------------------------|---------|
| सा ब X | सा नी | - • | प र मू | म ऽ २ | प सु | म ब • | - ऽ | गरे () ऽऽ (६ | ग मा | रेवा () ऽऽ (४ | सा र |
| सा हे X | सा हे | - • | प र ब | रेम () ऽऽ (१ | रेवा () ऽऽ (१ | सा बा • | - ऽ | सा र ६ | नि बा | ब प ऽ र ४ | |
| प ब X | प म | प र क • | प र व | प र हे २ | प ऽ | म बा • | - ऽ | ब ऽ ३ | म म | - सा ऽ नि ४ | |
| सा सा X | सा ब | सा व • | रे ब | सा ऽ २ | - ऽ | सा का • | - ऽ | सा रि ६ | नि हे | ब प ऽ ऽ ४ | |

घानोग

| | | | | | | | | | | | | | |
|----|----|----|----|-----|----|-----|----|----|----|----|-----|---|----|
| म | प | सा | नि | — | सा | नि | — | सा | प | नि | सा | — | सा |
| ग | र | वे | ५ | | बू | ५ | | म | प | बा | को | ५ | र |
| × | | • | | | २ | | | • | | ३ | | ४ | |
| सा | नि | सा | रे | रेव | रे | सा | सा | सा | सा | नि | — | प | प |
| | | | ट | उ५ | ६ | ५ | नि | या | कि | को | ५ | ५ | र |
| का | ५ | • | | | २ | | • | | ३ | | ४ | | |
| × | | | | | | | | | | | | | |
| म | म | म | म | प | — | सा | नि | नि | सा | — | सा | — | सा |
| क | हे | ह | रि | ब | ५ | स्त | म | म | य | ५ | ह | ५ | ५ |
| × | | • | | २ | | • | | | ३ | | ४ | | |
| प | सा | — | नि | प | म | सा | नि | प | प | म | गरे | प | सा |
| | | | (| (| | (| (| (| (| (| ५ | ५ | ५ |
| बा | ५ | ब | उ५ | घ | मि | सा५ | ५ | रि | ६ | ५ | ५ | ५ | ५ |
| × | | • | | २ | | • | | ३ | | ४ | | ४ | |

उपर्युक्त रूप में रूपक के चारों अंग विद्यमान हैं, यद्यपि यन्त्रासरी के सभी अक्षर को स्वरबद्ध किया जा सका है। शृङ्गारपरक राम अयनयवन्ती में अमिसारिका नाबिका का यह वर्णन काव्य और संगीत के पारस्परिक सहयोग का उत्तम उदाहरण है। रीतिकालीन कवियों ने भी कृष्णामिसारिका के ऐसे ही चित्र प्रस्तुत किये हैं। उद्भूत भीत की भावागत साहित्यिकता में अथवा यन्त्रासरी के वास्तवीय स्वरूप में यदि कहीं यत्किंचित् त्रुटि बिलामी होती है तो अत्यन्त कारण सांगीतिक निबन्धना का प्रायः अथवा भीत रचयिता का अल्प साहित्यिक ज्ञान ही है किन्तु इससे प्रतिपाद्य साम्यता में कोई तार्किक अन्तर उपस्थित नहीं होता। कृष्णानन्द व्यास द्वारा 'राग कल्पद्रुम' से यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी के प्रायः सभी प्रमुख कवियों के पद बद्ध, सबैदा इत्यादि रीतिकाल में वायकों द्वारा गाये जाते रहे हैं। राग कल्पद्रुम के धारण में ही 'राग बागर की सूचना' दीर्घक। प्राक्कथन सिखा गया है इससे स्पष्ट हो जाता है कि कृष्णानन्द व्यास द्वारा के दोस्त्रावियों द्वारा 'राग-सावर' की उपाधि किसी भी और सङ्घे

बलीस बयों तक सम्पूर्ण उत्तर भारत में प्रमत्त करके उस युग के प्रचलित गये धीर पुराने पीठों का संग्रह किया था। 'रायकल्पद्रुम' १ के प्राक्कथन की ये पंक्तियाँ इस सम्बन्ध में द्रष्टव्य हैं।

"नाना प्रकार के छन्द बोहा खोख्य औपार्ई सबैया कवित मूलना विमङ्गी धार्वी धिक्करिपी धार्वूमविधीकृत भोटक बसन्त-रिजकवा मासिनी नापरान नादस्वरूप हरिणीपूना बयकरि छन्द महीमपी इन्द्रबन्धा भोठीदास दोधक साबंत रोता भुत्रङ्गप्रपाठ पुरतोमरछन्द बनासरी गद्यपद्यादि धनेक छन्द में पीठ । इत्यादि तिन सौ साठ ठाम । नाना प्रकार के छन्द ठाम सभ एकपदी द्विपदी त्रिपदी चतुष्पदी पंचपदी षट्पदी सप्तपदी अष्टपदी नवमपदी दशमपदी नापिकामर स्वकीया परकीया सामान्या क्षत्रिजादिभेद धंसकारादि नयनय नयन रतन बगन धयन यथादि अष्टमग धुमाधुम भीमावती गगितादिभेद व्याकरण न्याय भीमासा पठकाध्यादि इलोक प्रस्वान रत्नाकरादि धनेकस्तोत्र स्वरूपवादि भीमभक्तभाचार्य की भीयुसाईकी कृष्णाष्टक योस्वामिभोविरवर की हठ रामानुजकीकृत भाववाचार्थकीकृत भीमावताचार्यकीकृत भीहितहरिबंधकी हठ रूपसनातनपुसाई श्रीकृष्णचैतन्य श्रीछक्रपाचार्यकीकृत विश्वमङ्गल पुष्पमन्त्राचार्य इत्यादि धनेक धधुर स्तोत्रादि श्री मुररासकी मुरस्वामिभोक्त मुरसागर एतने महाभाजन की बानी मुररास मुरराम भीमदेवकीकृत नामक की ठानधन नायक भीनुबाबरे नायकपोपाल नायकबोधी नायकधिरनु नायकमीर नायकककुसु नायक रामदास बयन्नाप मुरस्वामी परमानन्दस्वापी चित्तस्वामी गोविन्दस्वामी चतुर्भुजदास कृष्णदास कुम्भनदास नन्ददास मुररास महनमोहन भीमटकी महाबलमटकी महाबल भिम व्यामत्री हिनमानन्द + + + + + + + + + + + इत्यादि धनेक कबीरदासकृत विरिबर कधिराम भूपन मधिराम पयाकर देवमासम बिद्यापति कमलापति मुबंध कुसपति भिम चन्द्रकवि बृहदाज राजा कर्पे विमल प्रतरि राजा विरधनाप सिद्ध मानभाजन के पान संग्रह । २

इस उद्धरण से यह विदित हो जाता है कि रीतिकामीन कवियों के कवित सबैय भी उस युग के नामकों द्वारा माये जाते थे धीर ऐसे ही गाये जाते थे

१ संगीत नामक अकादमी, दिल्ली में इस छन्द के दो नाम सुरचित हैं । नीते प्राक्कथन यह छन्द अप्राप्य है ।

२ कृष्णानन्द व्यास कृत 'राग कल्पद्रुम' पृष्ठ—२ धीर ३ 'रायसागर की सूचना' के आसर्भत द्वितीय अण्ड ।

जैसे मल्लिकार्जुन या रीतिकाल के पद रचयिताओं के पद। यह इस तथ्य का एक और प्रमाण है कि परम्परागत पद शैली के रीतिकाल में समय-समय पर रूप-आकार की दृष्टि से परिवर्तन होते रहे हैं। पर तो सामाजिक कवियों ने भी नहीं लिखे परन्तु इनकी कविताएँ प्रसिद्ध भारतीय आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों से प्रायः भी गायी जा रही हैं। मल्लिकार्जुन पदों रीतिकालीन कवित्त सर्वशेषों और सामाजिक कवियों के गीतों में रूप-आकार का भेद अतीव स्पष्ट है, परन्तु मात्र स्थाकार के भेद से कविता का नेपथ्य समाप्त नहीं हो जाता। वाक्य-बन्धन के अनुसार गीत में सामान्य सा परिवर्तन भी कर लेता है। गीतों की परम्परा अधिकांश में मौखिक होने से या वाक्य के अधिस्तित होने से भी कभी कभी गीतों में पाठान्तर हो जाता है। उदाहरणार्थ 'राग कल्पद्रुम' से यह गीत लिया जा सकता है

भैरव-रुक्ताल (श्रुतपद)

“घाए नु घाए मोर भले ही सब
 निरि जाये इव अनुरागे पागे रङ्गत मोर ।
 भले ही घाबो बैठी बिजल इराकं अमल
 भए नए कुसुम फिरोर ॥
 घानन्दपन रस बरसे छवि रहे बाह
 मोर ते भले घाए मोर ॥”
 ('राग कल्पद्रुम' खण्ड १, मानाध्याय पृष्ठ-८६)

अभिज्ञता नायिका का यह वर्णन रीतिकालीन साहित्यिक मनोवृत्ति का स्पष्ट प्रमाण है। गीत में घानन्दपन की छाप भी है। यही पद भी बिस्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित घनानन्द प्रभाकरनी के पृष्ठ-११४ पर इस प्रकार दिया हुआ है।

(भैरव)

(२१)

(एकताला चलती)

“घाए नु घाए मोर, भले ही ।
 रङ्गि रंगीले छबीले मया करि सब निरि जाये
 इव अनुरागे पागे-रंग-रंग-मोर ।
 बैठी बलि हों बिजल इनाबत अमित भए नए कुसुम फिरोर ।
 घानन्दपन रस बरसे कित हूँ छाए ही रहि मोर ॥”

इस पर भी न तो पत्राचार-कृत कोई स्वरचिति उपलब्ध है और न कृष्णा नन्द श्याम ने ही 'राय कल्पद्रुम' में संकलित किसी भी त्रयी स्वरचिति की है। परन्तु यह नहीं बताया जा सकता कि कृष्णाश्याम श्याम के युग में इस त्रयी की रचना क्या की जायगी। हमें इस प्रकार मात्र से तथापि हिन्दी-साहित्य के प्रायः सभी इतिहास-लेखकों ने पत्राचार के संगीतज्ञ होने की चर्चा प्रथम की है। १ इस पर से भी यही पता चलता है कि पत्राचार संगीतज्ञ थे। मौरव प्राचीन काल से ही प्राप्त स्थलीय स्वरप्रकाश राग माना जाता रहा है, परन्तु 'आए जु आए मोर' जैसी पंक्ति से प्रारम्भ होने वाले खण्डिता गायिका के वर्णनात्मक पर के लिए पत्राचार द्वारा मौरव राग में पाये जाने का निर्देश स्पष्ट ही उनके वर्णित-लाभ का चोकर है। 'राय कल्पद्रुम' में भी यह मौरव राग में ही है, किन्तु पत्राचार का 'एकताला बसती' (सम्भवतः उनका प्रथम मध्य एकताल या कृत एकताल से है) 'राय कल्पद्रुम' में एकताल (ध्रुवपर) हो गया है। इस परिवर्तन से यह सम्भव है कि कृष्णाश्याम ने सम्भवतः इसे खण्डिता या बिलासवत एकताल में मुद्रा किया। पत्राचार के मौरव और 'राय कल्पद्रुम' के मौरव इन दोनों में मात्र अन्तर का भेद है किन्तु अन्य पाठान्तर निरन्तर ही विचारणीय है। 'आए जु आए मोर' जैसे (मर्म) ही दोनों स्थलों पर प्रायः समान ही है। इसके बाद 'रहीसे रानीसे लीसे मया करि' इत्यादि शब्द 'राय कल्पद्रुम' के पाठ में नहीं हैं। इस पर का पाठ-रंग-संसार 'राय कल्पद्रुम' में पाये गये हैं और ही गया है। इसी प्रकार 'बैठी बसि ही विजय दुखारत मयि प्र भए नए-कृष्ण कियोर' ने स्थान पर राय कल्पद्रुम में 'मने ही घाबो बैठी विजय दुखारत बसत नए नए कृष्ण कियोर' पाठ है। धर्मिय बंक्ति में भी पर्याप्त पाठान्तर है, किन्तु मूल भाषना और बहुत कुछ शब्द-योजना का साम्य मात्र ही राय और शास्त्री की एकता इसी विरथा

१ 'बहुते हैं कि एक दिन दरबार में कुछ कुबच्चियों ने बादाह से कहा कि औरपुछी साहब पाते बहुत अच्छा हैं। बादाह से इन्होंने बहुत बात-बोली किया। इस पर लोधा ने कहा कि ये इत तच्छ न गाएँ यदि इनकी प्रेषिका सुखाव नाम देया नहे तब गाएँ। देया बुलायी गयी। उन्होंने उसकी और भुंही और बादाह की और पौठ करके ऐसा माना पाया कि सब लोधा तन्वय हो गये।"

प्राचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास'
 पृष्ठ-२६७ संस्करण सं० १९९९

को बुझ करती है कि 'राय कस्यहुम' में जो पद दिया हुआ है उसका मूल रूप यनामन्त्र का यही पद है।

छन्दों को संगीत की बन्धिका में, प्रारम्भसात् करने की प्रक्रिया में एक उत्सोक्त नीच बात धीर होती है। किसी गीत की बन्धिका बगले समय उसका छन्दों की माशाओं की यचना ताल के बोल के अनुसार होती है। छन्द की माशाओं का ताल के बोलों माशाओं धीर माशाओं से सामन्त्रस्व स्थापित होकर जब छन्द की सम्बन्ध-योजना का पीतारमक स्थिरीकरण हो जाता है तभी बन्धिका का स्वस्व निश्चित होता है। फलतः ताल के मात्रह से किसी छंद की घाट मात्राएँ पीठ की बन्धिका में सोमह मात्राएँ भी बन सकती हैं तथा प्रावरयकता पढ़ने पर सोमह मात्राएँ इस मात्राएँ भी हो सकती हैं। बहि संगीत के मात्रह से ऐसी प्रावरयकता उपस्थित न हो तो छन्द की सोमह मात्राएँ बन्धिका में भी ठीक सोमह ही मात्राएँ रह सकती हैं। पञ्चोलिखित कविपम उदाहरणों से यह बात सर्वथा स्पष्ट हो जावनी।

राय यमन-त्रिताल (मध्यतल) †

| | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |
|----|----|---|----|---|---|---|---|---|----|---|---|---|---|----|---|---|----|---|----|--|--|--|
| घा | नि | ब | - | प | } | म | प | प | म | } | प | - | - | - | } | म | प | म | रे | | | |
| घ | बा | ऽ | घि | ब | | म | ब | म | ना | | ऽ | ऽ | ऽ | नि | | घ | बि | म | | | | |
| • | | | | १ | | | | | × | | | | | | | | | २ | | | | |

यह पंक्ति यमन के उस छोटे खयाल की प्रथम पंक्ति है जो धारमिक

विद्याधियों को सिखाया जाता है। पीठ के बोल हैं — ^१स ^२बा ^३घि ^४ब ^५म ^६ब ^७म

^८ना ^९लि ^{१०}घि ^{११}म। छन्द की दृष्टि से देखा जाय तो इस पंक्ति में चौदह मात्राएँ हैं, परन्तु त्रिताल की सोमह मात्राओं में इन्हें प्रामुख्य रूप से समाहित कर दिया गया है। त्रिताल सोमह मात्राओं की ताल है। मात्रा बोल धीर विद्याधियों सहित इसका स्वरूप यह होता है

त्रिताल

| | | | | | | | | | | | | | | | | |
|------|----|----|----|----|----|----|----|----|----|----|----|----|----|----|----|----|
| माशा | १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ | ७ | ८ | ९ | १० | ११ | १२ | १३ | १४ | १५ | १६ |
| बोल | ना | बि | बि | मा | ना | बि | बि | ना | ना | घि | घि | ना | ना | बि | बि | ना |
| ताली | × | | | | २ | | | | • | | | | ३ | | | |

† प्राचार्य ज्ञानलाले द्वारा 'हिन्दुस्थानी संगीत-म्यदति क्रमिक पुस्तक मालिका' पहली पुस्तक नृप-११ संस्करण १९४१

विज्ञान की इस कुरीतियों के अनुसार उपर्युक्त गीत की पंक्ति और उच्चको स्वरलिपि पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जायगा कि छन्द के अनुसार कुछ लघु की मात्राएँ स्वरलिपि में भी कुछ लघु बनीं हैं। केवल 'म ना' की लीला मात्राएँ या 'म ना' में से केवल 'ना' की दो मात्राएँ स्वरलिपि में चार मात्राएँ बनकर विज्ञान के साक्षे में समा गयी हैं और इस प्रकार गीत की चौरस मात्राएँ सोलह मात्राएँ बनकर विज्ञान में ठीक बैठ गयी हैं।

इस उदाहरण से यह तात्पर्य नहीं कि सर्वत्र इसी प्रकार छन्द की निरिच्छता मात्राओं में व्यतिक्रम उत्पन्न करके गीतों को बन्धित में बाँधा जाता है। यदि छन्द और प्रयुक्त छान की प्रकृति में साम्य ही हो बिना अपनी ओर से कुछ बढ़ाव-बढ़ाये भी वायक उसका सफल प्रयोग कर सकता है। उदाहरणार्थ निम्नस्थ गीत लिया जा सकता है। इसकी प्रत्येक पंक्ति बाँध मात्राओं की है।

राय वसन

स्वायी

मज मन बरगा निघान
मुझ संपद एक नाम
धरणीयत बल्लभ प्रभु
पूरत सब मन मुकाम ।

अक्षरा

मजस मुस बायक प्रभु
पक्षित पपठ नायक बिभु
धरणीयामी धबिकल
निरगुन कर चतुर भ्यात ।

इस गीत की बन्धित एकताल (बाँध मात्रा) में की गयी है एकताल का स्वरूप यह है।

एकताल

| | | | | | | | | | | | | | |
|--------|----|----|----|----|-----|----|----|----|---|----|----|----|-----|
| मात्रा | १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ | ७ | ८ | ९ | १० | ११ | १२ | |
| श्लोक | बि | पि | बा | मि | तिर | कट | दु | ना | क | सा | बा | मि | तिर |
| छाती | × | | ० | | | | २ | | ० | | १ | | |

निम्नलिखित स्वरलिपि से यह स्पष्ट हो जायगा कि स्वर और टाल से युक्त होकर भी इस नीत की भाषाओं में विसंगति नहीं हुई है

राग यमक—एकताल (मध्यलय) १

| | | | | | | | | | | |
|-------------------|-------------|--------------|-------------|--------------|--------------------|--------------|---------------------------|----------|--------------|---------|
| प म × | प म • | म म • | ग क र | म र • | प प परे ए | — ऽ | म मि रे | म बा | — ऽ ४ | न न |
| म मु × | रे क | म र छौ | म ऽ | प प र | प ब | प ऽ | रे क रे | रे बा | रे ऽ ४ | सा म |
| छा श × | छा र | रे बा | — ऽ | ग न र | म त • | म ब • | प प स्थ रे | प म | न म ४ | प सु |
| म प पु × | — ऽ | प र • | ब त | मि स र | मि ब | सा म • | सा न मि मु रे | बा का | न ऽ ४ | प म |

अक्षरा

| | | | | | | | | | | | |
|--------------------|----------|------------------|---------|--------------|---------|--------------------|----------------|---------------------|------------|--------------------|----------|
| म प मों × | ग ऽ | प म | प म | प मु र | प ब | प सा बा • | ब ऽ | सा म रे | सा क | सा म ४ | सा मु |
| मि सा म × | सा बि | रे ल • | रे क | ग ग र | रे त | सा ना • | — ऽ | सा मि प रे | बा क | बा प बि ४ | प मु |
| म प पों × | — ऽ | प म त • | म र | ग बा र | — ऽ | प मी | रे ऽ | ग प रे | रे बि | छा क ४ | छा म |
| मि सा नि | सा र | रे मु | रे न | न क | रे र | सा ब | रे सा मु | मि ब र ऽ | मि प्या | न ऽ न। | प |

१ भाषाएँ मात्राएँके हत हिन्दुस्थानी संपीत पद्धति कविक पुस्तक भाषिका
द्वारा भाग, पृष्ठ १२, १६, तीसरी प्राकृति।

वस्तुतः रीतिकामीन किसी भी कविता के गंत्व में सम्बन्ध नहीं हो सकता। यदि धाम भी कोई गायक चाहे तो रीतिकाल के कवियों की रचनाओं को सरसतापूर्वक पढ़-पाठ-बढ़ कर सकता है। क्योंकि जितना लचीला संगीत का नायकत्व स्वरूप है उतना ही लचीला उसकी मय का माध्यम भी घट कीट की बन्धित धामों में व्यापार उपस्थित नहीं होता। किन्तु एक बार गीत की बन्धित गिर हो जाने पर उसके व्यावहारिक प्रयोग में एक मात्र नया उसके प्रत्यक्ष धरम धंस की भी भूल करने पर गायक 'वेतासा' कहलाने समता है।

कविता-सर्वियों के प्रतिरिक्त दोहा छन्द का प्रयोग भी रीतिकामीन कवियों ने कब किया है। इस छन्द के गेयत्व में भी कदापि सम्बन्ध नहीं किया जा सकता। श्री धर्मरत्न महाराज ने ऐतिहासिक 'वीन काव्य संग्रह' में ऐसे अनेक दोहे दिये हैं जो बारहवीं या तेरहवीं शताब्दियों में बीजाचार्यों द्वारा विभिन्न रागों में गाये जाते रहे हैं। उन दोहों पर वेम राग के नाम का उल्लेख भी स्पष्ट दिया हुआ है। प्रायेण कबीर इत्यादि अनेक कवियों ने श्री गाने के लिए ही दोहों की रचना की। तुमको इत 'उपचरितमाधस' चाहे कुछ कीटिकाव्य न हो किन्तु संगीतात्मक प्रकरण है और इसी कारण कथावाचक सुनों से दोहे बाँपाइयाँ पाते चले आ रहे हैं। नवनागम्बी मामकों की एक बीमी यह भी है कि वे किसी गीत को पाते-पाते उसके बीच-बीच में दोहों को भी उसी रूप में बाँपाकर पाते जाते हैं। वस्तुतः यह कोई लचील चीनी नहीं है। रीतिकाल में भी इसका यथेष्ट प्रचार था। तुमको साहब (इश्वरसुखाने) रीतिकाल के ही कवि हैं। १ इनकी 'धामा बनी माय दो से अद्भुत मह गीत इस कथन के प्रसारस्वरूप उपस्थित किया

१ 'इनका जन्म सं० १८४३ में माना जाता है। वे ब्राह्मण के और ब्राह्मण बन्धना से ही लक्षित जातना में लीन थे। इन्होंने अपना समस्त जीवन हाथ रख (धामीमह) में ही व्यतीत किया और यहीं अपनी जीवन लीला समाप्त की।

ये बड़े विद्वान थे और प्रत्येक विषय का प्राथमिक विवेचन करते थे। इन्होंने घट-नामायुक्त धामावनी और रत्न-नामक तीन प्रसिद्ध ग्रन्थों की रचना की।"

डा० रामचंद्रमार बर्मा द्वारा 'हिन्दी साहित्य का प्रागोचनात्मक इतिहास' पृष्ठ-२६१, २६२, प्रथम संस्करण

निम्नलिखित स्वरमिपि से यह स्पष्ट हो जायगा कि स्वर और ताल से युक्त होकर भी इस बीज की मात्राओं में विसंगति नहीं हुई है

रास यमन—एकताल (मध्यमय) ?

| | | | | | | | | | | |
|-------------------|--------------|-------------------|-------------|--------------|--------------|--------------|--------------|-------------------|----------|---------------|
| पति म × | प म • | म न र | ग क र | म ब • | प न • | — ऽ | म नि ३ | ग षा | — ऽ | न न |
| ग सु × | रे ल • | म ग रौ • | प प र | प ब • | प र ए | ग ऽ | रे क ३ | रे नि बा | रे ऽ | सा म |
| सा श × | सा र | रे जा | — ऽ | ग न र | ग त • | म ब • | — ऽ | प प रस ३ | प न | न प्र ऽ |
| म प पु × | — ऽ | न र • | प त | मि स र | नि ब • | सा म • | सा न | नि पु ३ | नि का | न ऽ ऽ |

धनतरा

| | | | | | | | | | | | |
|--------------------|----------|--------------|---------|--------------|---------|--------------------|----------------|-------------------------|--------------|----------------|----------|
| ग मौ × | ग ऽ | प ग | प न | प पु र | प ल | प सा बा • | न ऽ | सा ब ३ | सा क | सा प्र ऽ | सा मु |
| मि सा प × | सा लि | रे स • | रे न | न ब र | रे त | सा ना • | — ऽ | सा नि य ३ | प नि क | प बि ऽ | प मु |
| म प रौ × | — ऽ | न म त | म र | ग बा र | — ऽ | प मौ ऽ | रे ऽ | ग प्र ३ | रे बि | सा क ऽ | सा न |
| मि बा नि | सा र | रे पु | रे न | न क | रे र | सा ब | रे सा तु | नि प (रऽ) | नि प्या | प ऽ | प न। |

१ प्राचार्य मातृशब्दे इत हिन्दुस्तानी संगीत पत्रिका कविक पुस्तक भागिक, दूसरा भाग, पृष्ठ-१५, १६, तीसरी प्राकृतिक।

वस्तुतः रीतिकामीन किसी भी कविता के गेयत्व में सम्बन्ध नहीं हो सकता। यदि पात्र भी कोई गायक चाहे तो रीतिकाम के कवियों की रचनाओं को सरलतापूर्वक राग-ताल-बद्ध कर सकता है क्योंकि त्रितना तबीमा संगीत का मातृशब्द स्वरूप है बतना ही तबीमा उसकी मय का माप्यम भी यत पीत की बन्धिया बमाने में व्याघात उपस्थित नहीं होता। किन्तु एक बार गीत की बन्धिया स्थिर हो जाने पर उसके व्यावहारिक प्रयोग में एक मात्रा क्या उसके प्रत्यक्ष प्रत्यक्ष अंश की भी भूल करने पर नामक 'बताना' कहलाने मयता है।

कविच-सर्वियों के प्रतिरिक्त दोहा छन्द का प्रयोग भी रीतिकामीन कवियों ने कृत किया है। इस छन्द के गेयत्व में भी कदापि सम्बन्ध नहीं किया जा सकता। श्री अमरचन्द्र नाइटा ने 'ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह' में ऐसे अनेक दोहे दिये हैं जो बारहवीं या तेरहवीं शताब्दियों में जैनियों द्वारा विभिन्न रूपों में गाये जाते रहे हैं। उन दोहों पर नेत्र राग के नाम का उल्लेख भी स्पष्ट दिया हुआ है। प्रागे चलकर कबीर इत्यादि अनेक कवियों ने भी गाने के लिए ही दोहों की रचना की। तुमसी कृत 'अमरचरितमाला' चाहे कुछ रीतिकाम्य न हो किन्तु संगीतात्मक अक्षर्य है और इसी कारण कथावाचक मुण्डों से दोहे चौपाइयाँ पाठे जाते रहे हैं। मन्नालन्दी गायकों की एक शैली यह भी है कि वे किसी गीत को पाठे-गाते उसके बीच-बीच में दोहों को भी उसी राग में बोलकर गाते जाते हैं। वस्तुतः यह कोई नवीन शैली नहीं है। रीतिकाल में भी इसका मधेष्ट प्रचार था। तुमसी साहब (हापरलवाले) रीतिकाल के ही कवि हैं। १ इनकी 'शब्दावली' नाम की से उद्धृत यह पीठ इस रूप के प्रमाणस्वरूप उपस्थित किया

१ "इनका जन्म सं० १८४३ में माना जाता है। ये ब्राह्मण थे और बाम्पा-वस्था से ही अक्षित भावना में लीन थे। इन्होंने अक्षय समस्त जीवन हाकर (मसीण्ड) में ही व्यतीत किया और वहीं अपनी जीवन लीला समाप्त की।

ये बड़े विद्वान थे और प्रत्येक विषय का शास्त्रीय विवेचन करते थे। इन्होंने धर-रामायण अष्टावली और धर-नागर नामक तीन प्रसिद्ध ग्रन्थों की रचना की।"

डा० रामकुमार वर्मा कृत 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' पृष्ठ-२६१, २६२, प्रथम संस्करण

का सङ्गा है

इप्पा'

(१)

देहका गिहारियां प्यारी पिया प्रेम बा ॥८६॥
 बिरह बेल बिठ भीन्हु जमेली नर तन भरबिध मन महबा ।
 गो बुन गूँच सुठ सुठ भासा नी मन जाफिर बुसभासा ।
 गुर हिये हरबा सम्हारियां ॥१॥

॥ बोहा ॥

भीन्हु जंप रस रीठि को मंबर बास नहिं सैत ।
 बेत जलो नन भासठी सूँचि मधुकर हेत ॥९॥
 मोरसमी मन मोमर कहिये तन मन बन की फुलबाठी ।
 ग्यारी निरठ मुण्ड के नैना ऐन बैन सख बर चाटी ।
 गुर पर तन मन बारियां ॥१॥

॥ बोहा ॥

ममन डोर पर वोड़ को सब सुठि संघ समान ।
 जान प्रपम असमान को कीन्हा बरति बसान ॥१०॥
 करनफुल सुठ सैठ हाबधी बुमाबांस मुन गुनबाठी ।
 डारी डार कैल कंबलन को गुरजमुली मय बड़ चाटी ।
 गुर पिय सन कर बारियां ॥१॥

॥ बोहा ॥

वार धयम धमी देख को भेप मजन सोड़ जाय ।
 बिबठ मरे फिरि फिरि बिजे पिय पिय धमी ध्यान ॥११॥
 बिरह बंद बस बंद कमोशन बोदन रवि करि करि कबसा ।
 करनफुल कहना गुर केरी करिया पर बस नेह नबसा ।
 धस पिय पीर गोहारिया ॥११॥

॥ बोहा ॥

बंधा करन कमोदनी, कंबल बिरह रवि रीठ ।
 दिव्य समझ गुर मिलन की तुलसी मटपट रीठ ॥१२॥ १

१ तुलसी साहिब (हापरस बाले) को 'शब्दावली' भाग २, पद्यसागर
 सहित, पृष्ठ-१४२, १४६, द्वितीय संस्करण

अन्य जगहों की तरह बोझ के सम्बन्ध में भी यही सत्य है कि इसे निम्न निम्न चानों और निम्न-निम्न चानों में ना सेना कोई बड़ी बात नहीं है। वास्तुतः काव्य और संगीत के पारस्परिक सम्बन्ध पर विचार करते समय इस सत्य की कभी उपेक्षा नहीं की जा सकती कि न तो काव्य अपने समस्त रूप में संगीत है और न संगीत अपने समस्त रूप में काव्य। इसी कारण संगीत अपनी प्रकृति के अनुकूल कविता से स्वभावतः जितना ग्रहण कर सकता है मात्र उतना ही लेता है और कविता भी अपनी प्रकृति के अनुकूल संगीतिक तत्वों को जिस सीमा तक ग्रहण कर सकती है उसी सीमा तक प्रारम्भसात् करके शेष विशेषताओं को छोड़ देती है।^१ काव्य और संगीत के सम्बन्ध सम्बन्धी प्रौढत्व की उपेक्षा करने से कभी-कभी घातकता में विरोधी मान्यताएँ दृष्टिगोचर होने लगती हैं। उदाहरणार्थ अहाँ पद्य की यह कहते हैं कि "पर कवित्त-छन्द हिन्दी के इस स्वर और मिति के धार्यवत्य की चीज लेता है। उसमें मिति के नियमों के पालनपूर्वक चाहे धाप इकतीस मुक-अक्षर रख दें चाहे तपु एक ही बात है छंद की रचना में अंतर नहीं घाता। इसका कारण यह है कि कवित्त में प्रत्येक अक्षर को चाहे वह तपु हो या मुक एक ही मात्रा-काव्य मिलता है, जिससे छंद-बद्ध छन्द एक दूसरे को भ्रंश करते हुए परस्पर टकराते हुए, उन्धारित होते हैं हिन्दी का स्वाभाविक संगीत नष्ट हो जाता है। सारी व्यवधानों जैसे मधुपान कर लड़कवाती हुई, मड़ती लिंबती एक उल्लेखित तथा विरोधी स्वर पाठ के साथ बोलती है।

इस मान्यता के विपरीत निरामा जी का कहना है, "हिन्दी में मुक-अक्षरकाव्य कवित्त-छंद की बुनियाद पर संभव हो सकता है। कारण यह छंद विरक्तान से इस भावि के कण्ठ का द्वार हो रहा है। दूसरे, इस छंद में एक विरोध मुग यह भी है कि इसे सोच नीतान धारि बड़ी चानों में तथा दूसरी की चीनताओं

१. 'अतः कवि, संगीत से जितना ग्रहण करना शक्य है उतना लेकर शब्द का परिवर्तन कर देता है, और गायक, कविता से जितना आवश्यक होना है उतना लेकर शब्द को छोड़ देता है, किन्तु इस सम्बन्ध को कौन धारण कर सकता है कि संगीत और कविता के सम्बन्धन से जो प्रत्यक्ष-संयोजन होती है उसमें विचित्र होकर प्रभाता एक इच्छित अवस्था में पहुँचकर अनिर्घनीय धारण में मिलान हो जाता है।"

डा० विश्वम्भर नाथ शर्मा की रेडियो बार्ता 'कविता और संगीत', २३-२ १९३५ को दिल्ली रेडियो से प्रसारित

में भी सफसतापूर्वक गा सकते हैं और नाटक प्रादि के समय इसे काफी प्रवाह के साथ पढ़ भी सकते हैं। धाव भी हम राम-सीमाओं में सवमन-परसुचम संवाह के समय वातावाप में इस छन्द का जमत्कार प्रत्यक्ष कर लेते हैं। यदि हिन्दी का कोई वादीय छन्द जुना वाय तो वह यही होना। + + + + इस छन्द में Art of Reading का ध्यान मिलता है और इसमिये इसकी उपयोगिता रङ्गमंच पर सिद्ध होती है।" परस्पर विरोधी इन माम्यताओं पर यदि इस दृष्टि से विचार किया जाय कि कवित्त सर्वथा बोधा प्रभृति सभी छन्द पायक द्वारा रचित स्वर-तास की योजना में सांघीतिक निबन्धना के नियमों से युक्त होकर विविष्ट स्वस्व ग्रहण कर लेते हैं तो विचार के लिए विषेय स्थान नहीं रह जाता।

उपर्युक्त विवेचन ताल और छन्द के पारस्परिक सम्बन्ध के आधार पर ही किया गया है। मय और छन्द की दृष्टि से विचार करने पर छन्द रचना में भी ताल की दृष्टि से धात्तरिक संघीत अनुस्यूत रहता है जो भावाभिभ्यक्ति का सबसे माध्यम भी है। जिस प्रकार संगीत में यन्त्रीरता उत्पन्न करने के लिए बीताल तिसबाड़ा विभिन्नित एकवास धाड़बीतास मूमरा बीठी तालों का प्रयोग होता है इसी प्रकार विभिन्न छन्द भी विभिन्न भावों की अभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त नयात्मक वातावरण का सुजन करते हैं। कानिदास ने अत्रविभाप के लिए बीतालीय छन्द का प्रयोग कुछ सोच विचार कर हा किया था। इस छन्द की गति में जो कातर विह्वलता है उतने कानिदास की प्रमीशित अभिव्यक्ति को घटीय सफसता प्रदान की है। इस प्रकार दीपवर्धन और इतिवितिका का प्रवाह निबन्ध ही एक घीवास्वपूर्व कबमा से परिपूरित है। रोसा और रूपमासा दोनों बीबीस मात्राओं के छन्द हैं, किन्तु दोनों में सवात्मक बीवम्य के कारण पर्यान्त धात्तर दिखायी देता है। रोसा में यदि प्रवाह का आशेग है तो रूपमासा में धात्तर पदिक की क्तामिति। १ संघीत की धात्तरिक नयात्मकता से

१ रोसा में बीबीस मात्राएँ होती हैं और म्याच्छु तैरह पर यति होती है तथा रूपमासा में भी बीबीस मात्राएँ और धात्तर में नियम से क्रमशः एक युव और एक नयु होता है। बीरह और बस पर यति होती है। संघीत में भी इसी प्रकार घटति जमार और दीपवर्धनी दोनों ही बीरह-बीरह मात्राओं की तालें हैं किन्तु दोनों की प्रकृति में तात्त्विक अन्तर है। यही बात युक्त-ताल और बीताल (बाच्छु मात्राओं) में भी परिलभित होती है।

सन्निविष्ट होकर ही छन्द इस प्रकार की भावाभिव्यक्ति में समर्थ हो पाते हैं। काव्य में अनुस्यूत यह वह आन्तरिक संघीत है जिसके परिधामस्वरूप छन्द पड़ते ही मारों-प्राणों की सीम पर राग सा बज उठता है। प्रत्यक्ष रूप से छन्दों को न गाने पर भी मानो उनके मुख संघीत में मन तस्मीम हो जाता है। छन्दों की नियम सम्बन्धी बकइबानी ही इस जगत्प्रकृत आन्तरिक संघीत का नियमन करती है, किन्तु इस बकइबानी के कारण छन्दों के प्रत्यक्ष गेयत्व में कोई व्यवधान उपस्थित नहीं हो सकता। सांघीतिक निबन्धना में हिन्दी का कोई भी छन्द सरमता पूर्वक बल सकता है, यद्यपि ऐतिहासिक छन्दों को लेकर पंजी का यह कहना कि उनमें हिन्दी की प्रकृति के अनुकूल पार्यात्मकता यथया संघीतात्मकता नहीं है कदापि उचित नहीं है। १

अलंकार-योजना

ऐतिहासिक कविता में छन्द के साम्य से संघीत की लयात्मकता का जो समावेश हुआ वह तो वाही इसके पतिरिक्त विविध अस्वात्मकारों एवं अस्वात्म, माधुर्य तथा शौच की सुगन्धों से भी उस युग के काव्य में संघीत-तत्त्व का सुन्दर सम्बन्ध हुआ।

संघीतोपयोगी ध्वनि का अर्थ में अक्षर ही संघीत का मुख तत्त्व है, यद्यपि साम्राज्यिक ध्वनियों जैसे धर्षण अक्षरों के अन्व प्रवाह-मुक्त संघर्ष के कारण कर्बोद्विग्न को जो अनुभूति होती है वह अपनी प्रकृति में संघीत की अपर्युक्त आभासवृत्त विशेषता से बहुत भिन्न नहीं है। बसन्त-यह कविता में समाहित यह प्रकृत संघीत है जिसके कारण कविता में अनुभूत संघीतता या जाती

१ (क) "धर्षण तथा कर्बोद्विग्न एतत् भी मुझे हिन्दी की कविता के लिए अधिक उपयुक्त नहीं जान पड़ता। सर्वथा में एक ही अक्षर की आठ बार पुनरावृत्ति होने से, जतमें एक प्रकार की अक्षरता, एक-स्वरता (monotony) या जाती है।"

यद्यपि 'अक्षर' की भूमिका, पृष्ठ-३४, प्रथमावृत्ति

(क) "कविता-स्य ध्वनि सेता बल पड़ता है हिन्दी का अक्षरजत नहीं, पोष्य-युक्त है, न जाने यह हिन्दी में कैसे और कहाँ से आ गया।"

यद्यपि 'अक्षर' की भूमिका, पृष्ठ-३३, प्रथमावृत्ति

है। १ कवि को धीरे-धीरे यह ध्यान रहता है कि वह कविता में जिस भाषा का प्रयोग कर रहा है वह अपनी प्रकृति में कितनी ही भाषा नहीं है और उसके भीतर या पाठक भी वह कभी नहीं भूलते कि वे कविता को जिस भाषा की सुन या पढ़ रहे हैं वह अपनी प्रकृति में विद्विष्ट है। इसी कारण वहाँ विद्वान्तर-प्रवर्तकों को विशेष महत्त्व न दिया जाय किन्तु कवि उनके प्राग्भारिक संघीत के कारण उनकी उपेक्षा कभी नहीं करता।

ऐतिहासिक कविता में इस प्राग्भारिक संघीत के प्रत्यक्ष का प्रयास केन्द्रबद्ध से ही आरम्भ करना मुक्तिमुक्त होया क्योंकि वे ही हिन्दी के प्रथम आचार्य कवि और कवि काव्य के प्रवर्तक एवं ऐतिहासिक के आरम्भ के बीच की कड़ी हैं। उन्होंने 'रसिक मिया' का आरम्भ इस संगीतकरण से किया है

धम संगीतकरण

धी यशोध बंधना—(छप्पय)

एक-रदन गजबदन, सबलबुधि मदन-कयत-मुठ।

पीरि-मंद आनन्द-मंद, जग-मंद पंद-मुठ।

गुल-बाबक बाबकमुकीति वसनायन-भायक।

धमनायक बायक-बहिउ सब लायक-लायक।

गुल-गुल धमठ मयवंत-जब मवतिवत नक-मय-हुरत।

जय केसवदात निवात-निधि लंबोदर मसरत-वरत। २

ऐतिहासिक छन्द-वीथना पर विचार करते समय यह कहा जा चुका है कि सभी छन्द वेग होते हैं। छप्पय की भी वा बेना कठिन नहीं है। जैसे ही छप्पय प्राचीन काल से माये जाते रहे हैं। १ मस्तु, संघीत का सदारमक प्रवाह यहाँ

१ कविता के संघीत की लचीला वस्तुता संघीत के संगीत की अनुसंगिता है।

डा० विश्वम्भर नाथ मधु हस्त 'रत्नाकर धनकी प्रतिभा और कला' पृष्ठ-२२६, प्रथम संस्करण

२ 'केन्द्रबद्ध प्रवर्तनी' अष्ट १ (सम्पादक विनय नाथ प्रसाद मिश्र) पृष्ठ-१

३ छप्पय 'ऐतिहासिक वेग काव्य-संगीत' सम्पादक अपरचन्द्र गह्वरा बंकर लाल गह्वरा,

पृष्ठ-२४, ३३ (प्रवर्तनी) पर उद्धृत वेग छप्पय

भी घटबिन्दु रूप से विद्यमान है। इसके प्रतिरिक्त केराब ने उपर्युक्त छन्द में धर्म-योगना द्वारा जिस संघीतात्मक नाद-सौन्दर्य का उल्लेख किया है वह भी धर्मना काव्य और बरेश है। प्रथम पंक्ति में प्रयुक्त छन्द-योगना में 'र' और 'न' इन दो वर्णों की नादात्मकता का लय में संवरण हुआ है। दूसरी पंक्ति में 'न', 'र', 'र' तीसरी में 'दायक' 'नायक' चौथी में 'कायक' 'नायक' पांचवीं में 'य' और 'म' तथा अन्तिम पंक्ति में 'र' 'न' और 'र' ध्वनियों की लयात्मक पुनरावृत्ति जिस नादात्मक संघीत का सुजन कर रही है वह छन्द का धार्मिक संघीत ही है।

धम्मट ने 'काम्यप्रकाश' के लक्ष्य उस्तास में धर्मासकारों के स्वरूप और वेद का विश्लेषण करत हुए बर्णोक्ति अनुप्रास यमक श्लेष चित्र और पुनवृत्त बदासास इन छ. धर्मकारों का उल्लेख किया है। इन धर्मकारों में धर्म का परिवर्तन कर देने से धर्मकार द्वारा प्रदत्त धर्मकार नष्ट हो जाता है। केराब के उपर्युक्त उद्धरण में कृत्यानुप्रास और यमक पर ही धर्म-विन्यास-वैचित्र्य निर्भर है। इस कौशलपूर्वक धर्मसंशुद्धन से जो नादात्मक वैशिष्ट्य उत्पन्न हुआ है वह छन्द की ऐतनी लयात्मकता से सम्पृक्त होकर नाद-सौन्दर्य का ऐसा मन्त्र वागावरण निमित्त कर देता है जिसके कारण योडा या पाठक कवि की प्रसिद्धि के सहज ही तादात्म्य स्थापित कर लेता है। इस समय बन्दना में केराबरास की छाप कवि की वैयक्तिकता की ही छाप है। निरवय ही पर्येय-मन्त्र योडा या पाठक केराबरास से तादात्म्य स्थापित करके इस रचना का मान करत हुए अपने इच्छेय की प्रकृति-भावना में तन्मग्न हो लकटा है। यदि पाठक के मनेय मन्त्र होने के प्रतिबन्ध को हटा भी दिया जाय तब भी छन्द के धार्मिक संघीत में किसी प्रकार का व्यापान उपलब्ध नहीं होता। बिना धामे ही इनका धार्मिक मनीय पाठक या श्रोता के मान में एक राय सा बजान लयता है, मानो मन किसी स्वरलहरी के भीत घबभुद्धन से झँकती हुई प्रसिद्धि के रूप-वास में उलभ गया हो। यहाँ यदि कोई कमी रह गयी है तो कम यही कि इसे किसी राग और ताल में बाँधने का प्रयास नहीं हुआ है। धम्मट के पदों में और इस छन्द में धर्माकार के प्रतिरिक्त और कोई विधेय अन्तर नहीं है।

धर्मासकारों से निरवय ही रचिता के धार्मिक संघीत में वृद्धि होती है। वस्तुतः किसी सीमा तक ये ही धार्मिक संघीत का आधार भी है। धम्मट इसका धर्म यह नहीं कि काव्य-शास्त्रियों ने जिन विभिन्न धर्मासकारों की

गिनती गिनाबी है वे सभी प्रान्तरिक संगीत का छत्रक करने में समर्थ होते हैं। वाद्यसंस्कार काव्य की दृष्टि से प्रयुक्त शब्द के परिवर्तन की प्रसङ्गसौलता पर प्राबुत हैं। इसी कारण विद्यासंस्कार, श्लेषसंस्कार, बहोक्ति इत्यादि को भी मम्मट ने शब्दासंस्कार जोपित किया है परन्तु प्रान्तरिक संगीत की दृष्टि से अनुप्रास और यमक को जो महत्व दिया जा सकता है वह बहोक्ति श्लेष पुनरुक्तिवशात् प्रायः ही नहीं दिया जा सकता। विद्यासंस्कार का सम्बन्ध चाहे विद्यकला से भले ही जोड़ा जा सके किन्तु संगीत से उसका सीधा सम्बन्ध नहीं है। हाँ अपने सम्पूर्ण श्रेणियों और उपश्रेणियों सहित यमक और अनुप्रास विषय ही कविता में प्रान्तरिक संगीत का संवर्धन करते हैं।

अनुप्रास का वृत्तियों से सीधा सम्बन्ध है। कंसक का उपर्युक्त उद्धरण उपनामिका वृत्ति का सुन्दर उदाहरण है, क्योंकि इसमें मातृवर्गमिध्यांजक बर्ण ध्वजा व्यञ्जन अपनी संगीतारमकता के कारण सहृदय-हृदय-हारी बन गए हैं। 'काव्य प्रकाश' के अष्टम अध्याय में मम्मट ने वृत्तियों का जो विश्लेषण किया है उस का प्रमुख आधार संगीतारमक बर्ण-योजना ही है। वृत्तियों गुणों और शब्दासंस्कारों से जो रचना जितनी ही सुसज्जित होती है वह प्रान्तरिक संगीत में उतनी ही समृद्ध हो जाती है और इस सीखने में जितनी कमी या जाती है उनी अनुप्रास से उसमें प्रान्तरिक संगीत भी कम हो जाता है।

कवि को जहाँ वातावरण को धोखपूर्ण बनाया होता है वहाँ वह पर्यावृत्ति का प्रयोग करता है। धोखे कुच के ललाटे से कविता में प्रयुक्त शब्दों की ध्वनि कठोर हो जाती है फलतः उनकी सहायता से वातावरण की कठोरता विरल हो जाती है यही कारण है कि वीर रस के उत्कृष्ट विभाग में कवि कर्णकट्ट शब्दों का उपयोग करता है। ऐसी रचना को बढ़कर पाठक का चित्त भी उद्दीप्त हो उठता है। प्रत्यय-हेतु प्रयुक्त कृत वसवार का यह वर्णन उपस्थित है

(कविता)

निकसत म्याग तें नयूँ प्रती-मानु केछी
 छरें तम तोम-ने पजदर के जाल को ।
 नागति सपकि कंठ बैरिज के नाकिन-सी
 छरिहि रिम्भरें रें व मु इन की जाल को ॥

तान छिटियाल छत्रमाल महाबाहु बनी
 वहाँ लीं बखान करी ठेरे करवाण को ।
 प्रतिभट-भटक बटीले सेठे काटि काटि,
 कासिका-सी किलकि बनेउ देति काल का" ॥ १

इस कवित्त की अन्तिम दो पंक्तियों में ध्वन्यात्मक कठोरता में बातावरण को धीरे-धीरे प्रदान किया है। इन पंक्तियों के उच्चारण में जिह्वा की उलट-पुलट और उच्चरित 'क' तथा 'ट' ध्वनियों की कठोरता तत्काल की कटाकट को मूर्तिमान कर देती है।

बीर रस का यही निष्ठ कवि जब श्रृङ्गारपरक रचनाएँ करने लगता है वह उमड़ी बापी भी भावानुकूल होकर परिवर्तित हो जाती है। यहाँ यह कठोरता नहीं छूटी जो बीर रस की वर्णना में व्यक्तित्व है। मुग्धा नायिका का यह सज्ज-विच इच्छित है।

(दुर्लभ लक्षणा)

" यदि लीं बनी मुग्धमा मु बरी मुब अर भाइ लीं फलकें ।
 कवि भूपन भंग लीग बिपजत्र मोठिन-पाल हिमे फलकें ॥
 उन दोहन की मनसा मन लीं नित होत गई मनना ललकें ।
 बरि भावन बाहर बात मनी मुमुकानि किबो छवि की सलकें ॥ २

कवि की सीखा सम्बन्ध मानव-हृदय की भावनाओं के है। यत कवि को यदि भावानुष्ठीयता में स्वाभाविकता का समावेश करना है तो उसे अपनी बापी को भी अनुकूल मार्ग प्रदान करना होगा। लोको-व्यवहार में भी कष्ट-स्वर का यह उधार बहान किया नहीं जाता। बापी के इस विशेषण से हृदय भावनाओं की अभिव्यक्ति बड़ी सज्ज हो जाती है।

१ श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'मूलत-ध्वन्यावली' (द्वितीय संस्करण) पृष्ठ-११८, द्वितीय संस्करण

२ श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'मूलत-ध्वन्यावली' (द्वितीय संस्करण) पृष्ठ ११७, द्वितीय संस्करण

उदाहरणार्थ

फुटकर

(अनुबन्ध बचन कृष्ण प्रति)

“ भाव बुली बिबुरी सी कितेकर प्रेम प्रवाह कया तिन बांभी ।
 ऊबो सुनो तुम ऊबो सुनो तुम ऊबो सुनो तुम या सुनि मांभी ।
 ठाकुर कीन सों का कहिये गति रेखि कै मेरी बिरा सह नांभी ।
 हां इतनी कहने ई परी हयें सांभी हूं सांभी हूं सांभी हूं सांभी । १

‘ऊबो सुनो तुम’ अथवा ‘सांभी हूं’ के पुनरावर्तन से परावृत्तिमूलक बीप्सा का जो समावेश हुआ है वह निश्चय ही भाव को अद्भुत स्वाभाविकता प्रदान कर रहा है। भाव की तरसठा को उबग के अन्वयवर्न ‘न’ से प्रवाह मिला है तथा मधुर कोमल पर रचना से यमोच्चारिक प्राणसठा भी प्राप्त हुई है, अतः वहाँ माधुर्य गुण और उपनामरिका वृत्ति भी विद्यमान है।

गुण अवरय ही रस के बर्म हैं, परन्तु अलंकार रस के बर्म नहीं। रस से रहित कविता में भी अलंकारों का समावेश हो सकता है और निश्चय ही ऐसी स्थिति में भी अर्थों की भावार्थकता अर्थों के प्रवाह में अवरय करती हुई वृत्ति मोचर होती है किन्तु वहाँ अलंकार भावों का बला घोटने मयते हैं वहाँ उन अलंकारों का प्राणरिक संगीत भी निष्कल हो जाता है। अनुप्रासादि के दुराग्रह की अथवा अलंकारों से कविता को भावार्थक बनाने की प्रवृत्ति की किसी आलोचक ने कभी अग्रहमा नहीं की। अस्तु यदि कोई अलंकार भाव को उत्कर्ष प्रदान करता है तो उसके प्राणरिक संगीत भी भावोत्कर्ष के सहायक होता है, किन्तु यदि अलंकार इस उद्देश्य में सफल नहीं होते तो उनसे निहित प्राणरिक संगीत भी विरह्य हो जाता है।

कुछस कवि की भाषागत मञ्जीवता उनके अर्थ-अवयव पर ही निर्भर है। उक्ति को अर्थस्पर्शी बनाने के लिए मानव प्रकृति का सम्पूर्ण ज्ञान अपेक्षित है। भाषा की वाक के अनुकूल और भाव को भाषा के अनुकूल रखने का कवि को बराबर ध्यान रखना पड़ता है। समीतात्मक अर्थ-अनुकूल से उक्ति की हृदय स्पर्शिता पाठक के मालस का अग्रहण ही नहीं करती उसके अन्तर्ग में बैठ भी पाती है। बिहारी का यह दोहा अष्टम्य है

१ ज्ञान अथवा ज्ञान द्वारा सम्पादित ‘ठाकुर-उत्तर’, पृष्ठ-४३, अथवा संस्करण

“ कीज सुनै कामों कहीं सुरति विभाष नाह ।
बराबरी ज्यो लत है ए बरस बरसह ” ॥ १

यहाँ बिरहिणी के व्याकुल हृदय की जो अनिश्चिति हुई है वह अनुप्रास और धमक की संवीतात्मकता से और भी ठरस हा गयी है। फलत इस शास्त्र का प्रबलत्व ग्रहण करके बिरहिणी की कातर अनिश्चिति और भी निश्चिन्ता से पाठनों के हृदय को छू गयी है।

अपर्युक्त उद्धरणों के प्रत्युदाहरणस्वरूप ऐसे छन्द भी उपस्थित किये जा सकते हैं जहाँ उद्देश्यकारों की समयास स्यापना में उद्यम जाने के कारण रचनाकार के कवि-हृदय का अपहरण हा हो गया है। बिहारी का ही यह बोझ उपस्थित है।

“ कमहु कनक तें सीमुनी नादकता अपिफाइ ।
रहि बापें बीउछ, रहि पापें ही बीराह ॥” २

यहाँ ‘कमहु कनक’ में धमक का जो प्रतिष्ठा है वह अपनी संवीतात्मकता के कारण बुद्धि को बमलूत हो करता है, किन्तु बुद्धि की नीतिनरक सामीप्य के उत्कर्ष में इन संवीतात्मकता से कोई उल्लेखनीय सहयोग प्राप्त नहीं होता।

वेच न भी अनुप्रास के फल में पड़कर कहीं-कहीं धरने हृदय की राग प्रसिद्धता को समावरणक रूप से अर्थकारभाराकाण्ठ बना लिया है।

“ तेरी सी बेनी है स्याम अमाउम
ठरीपो बनी है स्याम अमा सी ।
पूरनमासी सी तू जखरी
घर तानी खारी है पूरनमासी ॥
तेरी सो घानन बंद लर्न
तुम घानन में सखी खंड यमा सी ।
लौडी बहू रमनीय रमा
‘बकिरेब’ है तू रमनीय रमा सी ॥” ३

१ श्री जयप्रकाश दास ‘रत्नाकर’ इत ‘बिहारी-रत्नाकर’ बौद्ध-१६६

२ श्री जयप्रकाश दास ‘रत्नाकर’ इत ‘बिहारी रत्नाकर’ बौद्ध-१६७

३ ब कि बिबर इत विह-रत्नाकरनी बृष्ट ११८ (प्राचीन पुस्तक बाग सं०६)
भारतवासी प्रस कार्यालय-प्रकाश

उपर्युक्त छन्द में गायिका के सौन्दर्य-निक्षेपण में उपमा के प्रतिरिक्त समक धीर धनुषास की भी पर्याप्त सहायता भी यही है, परन्तु इनके द्वारा जो नादात्मक सौन्दर्य उत्पन्न हुआ है वह भाव के प्रभाव में सम्भवतः हीन होकर व्यर्थ हो गया है। प्राच्य संगीत की ऐसी ही निष्क्रियता भूपन के इस कवित में भी मिलती

ऊँचे मोर मंदर के घर रह जाती ।

ऊँचे मोर मंदर के घर रहती है ।

कंद-मूल भोग करे कंद-मूल भोग करे

तीन बेर जाती है वी तीन बेर जाती है ।

भूपन सिद्धि धंय भूपन सिद्धि धंय

विजय हुलाती है वी विजय हुलाती है ।

भूपन जनत सिद्धि धंय धीर तेरे पास,

नगल जड़ाती है वी नगल जड़ाती है " । १

इसी प्रकार 'नासपाती जाती है बनासपाती जाती है' २ अथवा 'आकचक चमू के अचाकचक चहुँ धोर' ३ वीं उक्तियों में समक की चमक से उद्भूत प्रास्त्यिक संगीत तो अवश्य है किन्तु इनमें भावमय सार्वजनीयता की स्पष्टता होने से प्रास्त्यिक संगीत बुद्धि को अमलकृत करके रह जाता है, भावोत्कर्ष में सहायक नहीं होता। संगीतोपयोगी ध्वनि का जो लक्ष्य ही भावों का स्पष्टीकरण है किन्तु वहाँ भाव ही विरोधित हो जाता है वहाँ नादात्मकता भी निष्क्रिय हो जाती है।

वेद धीर भूपन के उपर्युक्त उदाहरण ऐसे हैं जिनमें शब्द-योजना धंयकार कीदल से कुछ होकर भी धनीधित प्रास्त्यिक संगीत का उल्लेख नहीं कर सकी है किन्तु इसका यह धर्म नहीं कि सर्वत्र उनकी रचनाओं में ऐसा ही हुआ है। वे कवि रीतिकाल के सिद्ध कवियों में से हैं अतः इनकी रचनाओं में जो चानुर्य पूष शब्द-अंगुष्पन की वह अकार विद्यमान है जो किसी भी रचना को धनी वारमय गौरव से समृद्ध बना देती है। वेद के निम्नांकित छन्दों की सवीतमय

१ श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'भूपन-प्रवाहनी'

(गिरा-बाधनी) पृष्ठ-७१ द्वितीय संस्करण

२ वही पृष्ठ-७१

३ वही पृष्ठ-८१

छन्द-योजना के अमलकार को भसा कौन प्रसवीकार कर सकता है !

ही ही ब्रज बुन्दाबन मोही मैं बसत सदा

बमुना तरय ब्याम रंग प्रसमीन की ।

बहुँ और सुन्दर सवन बन बसियत

कुजनि में सुनियन पूजनि प्रसीन की ॥

बसीबट तट नट-नामर नटनु,

मोमें रास क बिसास की मधुर पुन बीन की ।

भरि रही मनक बनक ताल ठाननि की

तनक तनक ठामें मजक चुरीन की ॥ १

इस सबैये की प्रथम पंक्ति में 'तरय' 'ब्याम रंग' 'प्रसमीन' जैसे शब्दों की भाषात्मकता से कवि ने यमुना की लहरों के कलकल प्रवाह को भूतिमान कर दिया है। छन्द की सभ्य में इन शब्दों के उच्चारण मात्र से भीम को कुछ ऐसे लपेटे लेने पड़ते हैं मानो एक के बाद एक लहर उठती जाती या खी हो। दूसरी पंक्ति में 'सवन' 'बन' 'कुजनि' 'सुनियन' की संगीतात्मकता ने भ्रमरपक्षी की गुंजार को प्रतीक कलात्मकता से पूर्णता प्रदान की है। तीसरी पंक्ति में 'नट' 'नटनु' 'मधुर' 'पुन' में नृत्योद्योगी लक्ष्मण के 'भातिर' 'तिरकिट' भरि पन इत्यादि शोभों की अनुकृति पर्याप्त समीच है। अन्तिम पंक्ति में तो नृत्य म प्रस-संवादन करते समय बृक्षियों की झंकार ने मिसकर जो हृदयहारी घातपंथ उत्पन्न कर दिया है वह निरुचय ही काव्यगत धान्तरिक संगीत का उत्कृष्ट उदाहरण है। शेष के निम्नस्थ छन्द में भी धान्तरिक संगीत का अमलकार बरान्तीय है

सहर-सहर नीधों सोतल ममोर डोने

बहर-बहर बन बेरि के बहरिया ।

महर-महर भुकि मीमी भरि सामो देब

छहर-छहर छोटी बूँदत छहरिया ।

हहर-हहर हंसि हंसि के हिनोरे बड़ी

धहर-धहर तन कोमल बहरिया ।

धर-धर होठ पीठम को पीठपट,

सहर-सहर होठ प्यारी को सहरिया ॥२

१ डा० नगेश कृत 'शेष और उनकी कविता' से उद्धृत पृष्ठ-२२३

२ 'रीति-शुद्धार', सम्पादक डा० नगेश पृष्ठ ११० प्रथम संस्करण

यहाँ भी वाद्यों की गड़गड़ाहट बुरों की झड़ी मग्न वायु का संचरण और उसी में सहस्रिया का लहराना सौंतात्मक सन्द-योजना द्वारा ही मूर्तिमान किया जा सका है।

कुछ सन्द ऐसे भी होते हैं जिनकी नाशात्मकता सहजात होती है अर्थात् ऐसे शब्दों का सम्भारण करते ही उनका भाव अपने-आप प्रकट हो जाता है। ऐसे सन्द भी सम्भारणकारों की ही कोटि में आँगे किन्तु अर्धम्भनकारी शब्दों को हमारे रीतिशास्त्र में कोई विशेष नाम प्राप्त नहीं है। अंगरेजी में इस प्रसकार का अर्थ 'ओनोमोपोइया' है। अस्तु हिन्दी में ऐसे अनुकरण मूलक शब्दों का अर्थकार शास्त्र की दृष्टि से चाहे कोई विशेष नाम हो अथवा न हो किन्तु इनका प्रयोग अनेक श्रेष्ठ कवियों की रचनाओं में सहज ही मिल जाता है। ऐसे शब्दों की सहज स्वाभाविकता में भाषागत अर्थकार की अनुपम क्षमता होती है। भाषानुक्त शब्दों की सहायता से भाषा कितनी अर्थवर्धित हो जाती है इसके उदाहरणस्वरूप भूपन का यह छन्द द्रष्टव्य है

भूपन

अंका के लिए तें बल डबर उमंइयो उडमंइयो
 उडमंइम सो सुर की नरह है।
 बाही बारासाह बहापुर के अडत वैड
 वैड में मडत मान राग बबनह है ॥
 भूपन भनत अने कुम्मत हरीसबारे
 किम्मत अमोल बहु हिम्मत कुरह है।
 हर पर छपह महि मह फरनह होत
 कर नमनह से असह बम रह है ॥ १

वेद ने यदि श्रुतियों की कोमल अंकार के लिए अनुमानमय कोमल शब्द योजना और मधुरावृत्ति का प्रयोग किया है तो भूपन ने प्रीत्युज के समुचित समावेश के द्वारा अपनी रचना में ऐसी कठोरता समाहित कर दी है कि इस

रचना के प्रथम मात्र से धर्म की प्रतीति हो जाती है। इस उद्धृत पद सबटना १ के अन्तर्गत का आचार आन्तरिक संघीत ही है। उपर्युक्त कवित्त का आरम्भ इसके ही ध्वनि से होता है। इस ध्वनि को सुनिश्चित करने में 'वल्' इकर 'उम' इयो 'उम्वं' इयो 'उम्वं' इम जैसे धर्मध्वननकारी शब्द प्रतीक सहायक हुए हैं। टर्क्य का प्राधिभय तथा 'यर' 'बंम' 'दु' 'क' 'न' 'नम' 'द' किम्मत 'मुम्मत' 'हिम्मत' इत्यादि में समान वर्णों का परस्पर उपयोग स्वयमेव ही उस नादपरक समीर काठावरण का सूजन कर बैठा है जिसके द्वारा धर्मियान के समय के व्यापार तथा मारू राम की कठोरता कानों में बूज उठती है। ऐसी पक्ष्य प्रत्यावनी से शोक धर्मियजन जिस आन्तरिक संघीत का उद्देक होता है उसी के मोह के कारण परम्परा से ऐसी शब्द-योजना होती घायी है। निरक्षय ही इस संघीत में भी हृदय को स्पर्श करने की क्षमता होती है। ऐसी रचनाओं में से आन्तरिक संघीत उत्पन्न करने वाले धर्मध्वनन-समूह कठोर शब्दों को यदि

१ (‘योज’ के धर्मियजनक)

(१००) योग आद्यतृतीयाम्यामन्वयो रैल तुत्ययोः ।

दादि धर्षी वृत्तिर्व्यं गुम्ब उद्धत प्रोवति ॥

पशुवार—योज के जो धर्मियजन-साधन हैं वे ये हैं—

(१) वर्ण—जैसे कि टर्क्य धारि वर्णों के प्रथम (क, ख ड त प,) और तृतीय (स ज ड ढ ब) वर्णों का उनके अपने अपने धर्म्य (वर्णों के प्रथम वर्णों के धर्म्यवर्ण ख घ, ठ ब क और वर्णों के तृतीय वर्णों के धर्म्य वर्ण घ ङ, ड ब न) वर्णों से संयोग प्रपचा भेदभाव (जैसे कि 'गु' 'ख' धारि में), रैल का नीचे, अन्त प्रपचा दोनों धोर से संयोग जैसे कि बन्ध, निह्वारि धारि में), समान वर्णों का परस्पर संयोग (जैसे कि बिला बिला धारि में), ड ठ ड और ड वर्ण तथा मकार और यकार ।

(२) वृत्ति—जैसे कि वीर्यवृत्ति प्रपचा वीर्य तथात धोर—

(३) रचना—जैसे कि उपर्युक्तवृत्ति वाली उद्धृत पदसंख्या ।

यो मम्मत इत आध्य-प्रकाश धर्म्य उस्ताप पृष्ठ-
१००, १०१ जोसम्पा विद्यावहन-अन्तर से प्रकाशित

नकार दिया जाय तो फिर इनमें रूढ़ ही क्या जायगा ? यही कारण है कि मौखिक और पद्यावृत्ति को बीर, बीमत्स, रीर प्रादि कठोर भावों की अभिव्यक्ति के लिए स्थाय्य माना जाता है ।

वस्तुतः रीतिकामीन काव्य में सव्यों की जो कारीगरी हुई उस में भान्तरिक संगीत सर्वत्र सहायक हुआ है । इन रीतिकामीन कवियों के पूर्ववर्ती कवि जो थे ही अस्त गायक अथ मन्त्रि के आदेश में उन्होंने जो कुछ गाया वही काव्य की कोटि में आ गया परन्तु वे कवि कसाकार थे फलतः सव्यों और सव्यों की कारीगरी से इन्होंने भान्तरिक संगीत का जो अमत्कार उत्पन्न किया वह इनकी कला का प्रमुख पुत्र ही बन गया ।

अस्तु, रीतिकामीन कवियों की छन्द और असंकार-योजना का संगीत से जो सम्बन्ध रहा है उसके अध्ययन के फलस्वरूप प्राप्त निष्कर्ष ये हैं

छन्द-योजना

- १ कविता अशोभ्य होने पर ही अधिक शोभनीय प्रतीत होती है तथा अन्धकारमक-निबन्धना संगीत की मय पर ही भाव्य है ।
- २ कवित्त और सर्वथा दोनों ही गेय हैं । इस सत्य के प्रमाणस्वरूप धनेक ऐसे मृपद या धय प्रातिष्ठिकाएँ उपस्थित की जा सकती हैं, जिनके शोक कवित्त या सर्वथा छन्द में बंधे हुए हैं ।
- ३ मात्र कसाकार के भेद से कविता का नेयत्व नष्ट नहीं हो जाता । बोधे और छण्य भी सर्वत्र गेय रहे हैं । अब तो यह है कि प्रायः सभी छन्द सफलतापूर्वक गाये जा सकते हैं ।
- ४ सव्यों से चाहे रस की सीधी प्रतीति न हो परन्तु मृषक-मृषक सव्यों की संगीतपरक लयात्मकता विभिन्न रसों के अनुकूल धरण्य सिद्ध होती है, इसी कारण कृष्ण कवि सर्वत्र मात्र के अनुकूल छंद या संगीतात्मक प्रवाह का सावधानी से ध्यान करता है ।

असंकार-योजना

- १ अब क प्रवाह में सव्यों के नाकारत्मक अनुकरण से एक ऐसे भान्तरिक संगीत की सृष्टि होती है जिसमें पाठक या श्रोता को आकृषित कर देने की धमोप धमता होती है ।
- २ शीघ्रता अनुप्रास धरणा यमक जैसे सजासंकारों एवं धरने धरों का

स्वयमेव ही ध्वनन करने वाले धर्मध्वननकारी या अनुकरणमूलक धर्मों की सहायता से कवि की रचना का सहज ही भावानुकूल भावपरक वातावरण प्राप्त हो जाता है। यह कृत्य कवि की वाणी को भावानुकूल मार्ग मार्ग्य धर्म इत्यादि प्रकाश करने में अतीव सहायक होता है, अतः धार्मिक संगीत का काव्य शास्त्र में वर्णित गुणों और कृत्तियों से भी सीधा सम्बन्ध जुड़ जाता है।

- ३ रस से घासिप्त घटलक धर्मकार रस का धर्म ही बन जाते हैं, किन्तु जहाँ धर्मकारों की धर्मावस्थक प्रवर्धनी से मात्र सम्बन्धित उपस्थित किया जाता है वहाँ उनसे उत्पन्न होने वाला धार्मिक संगीत भी प्रभावहीन हो जाता है।
- ४ रीतिकामीन कवियों ने अपनी काव्यपरक सौंदर्य-साधना में छन्द-योजना और धर्मकार-योजना से उत्पन्न होने वाले संगीतारमक प्रभाव और प्रभाव का बड़े परिष्कृत से समाविष्ट किया है, अतः इस विशेषता के अनुष्ठीयन के प्रभाव में उनकी रचना चातुरी का अध्ययन सर्वांगीण नहीं बन सकता।

परिच्छेद-८

रीतिकालीन प्रमुख काव्य-रूपों

का

संगीत से सम्बन्ध

रीतिकालीन प्रमुख काव्य-रूपों का संगीत से सम्बन्ध

परिच्छेद-८

रीतिकालीन गौतिकाव्य और संगीत

(क)

रीतिकाल में घाकर मक्ति की पावन बात संकीर्ण तो भवस्य हो गयी परन्तु सूखी नहीं। बन्तुत हिन्दी-साहित्य में ऐसा युग कभी नहीं आया जब किमी विधेय प्रकार की काव्य-रचना दफ्तम बन्द हो गयी हो। युग परिबलित होने हैं बरिस्वयियां बदलती हैं और इन्ही के साथ काव्याभिरभि में भी भिषता घाती रूठी है। फलत किमी युग में यदि एक मनोवृत्ति प्रबल रूठी है तो दूसरे युग में कई दूसरी मनोवृत्ति अधिक प्रबल हो जाती है। युग-मनोवृत्ति के ऐसे ही परिवर्तन के कारण रीतिकाल में परम्परागत पर-रीमी चाहे हास्योमुख हो गयी हो परन्तु इस युग में भी बहु विरस्कृत नहीं हुईं। मरु कवियों ने प्रायः गौतिकाव्य की ही अपनी अनिम्यक्ति का माध्यम बनाया है।

रीतिकाल में शृङ्गारिक मनोवृत्ति का प्राभास्य वा घट- इस युग के काव्य में शृङ्गार का इतना अधिक वर्धन हुआ कि यह युग ही शृङ्गार काल कहा जाने गया परन्तु रीतिकाल से पूर्व निर्गुण और सकुन मक्ति-सम्बन्धी रचनाओं की जो परम्परा स्थापित हो चुकी थी उसके सम्बन्ध-मुक्त रीतिकाल में टूटे नहीं थे। निर्गुणोपासक और सकुणोपासक मरु इस युग में भी बिलमान के और के प्रात्मप्रबोध ज्ञान-बीराम्य की बुद्धता या मक्ति-साधना के उल्लय के लिए सबीत की अपनी साधना का र्थ बनाकर पतिकालीन कवियों की प्रति अपने उपास्य में वस्तीन के।

संगीत में सम्यक्ता उत्पन्न करने की जो अपरिषेय मक्ति है उसे सम्यों को- बलों ने बहुत पहले ही मनी-साधि पहचान लिया था। इसी कारण चाहे नि-पोपासना हो चाहे सपुणोपासना दोनों ही में संगीत समान रूप से इरिठ हुआ

सम्पत्तों और मत्तों में अपने हृदय की अस्मिन्मूर्ति प्रदानत संगीत के माध्यम से ही की है, यद्यपि रीतिकामीन गीतिकाव्य में सांगीतिक तत्त्वों का प्रभाव नहीं है। हाँ यह धरम्य है कि इस युग के निर्गुन मत्तों में जो कुछ बाया उस पर कबीर का प्रभाव और समुन मत्तों में जो कुछ बाया उस पर सूर, तुलसी और मीरा का प्रभाव अत्यधिक है। अस्तु इस युग के गीतिकाव्य में कबीर, नागक सूर, तुलसी मीरा इत्यादि की पुनरावृत्ति ही अधिक हुई। भक्तिकासीन उद्युक्तोपासकों और निर्गुनोपासकों के समाग रीतिकामीन पर-रचयिताओं में अनुभूति की विसृति का मार्ग नहीं है। फिर भी इसका यह अर्थ नहीं कि उनमें वैभक्तिमत्ता का एकान्त प्रभाव है या उनमें हृदय की स्निग्ध पुकार है ही नहीं। प्रस्त केवल सापेक्षिक महत्त्व का है।

जहाँ तक निर्गुन सम्पत्त कवियों की रचनाओं का सम्बन्ध है साहित्यिक समीक्षा की दृष्टि से उनकी रचनाएँ अतिनी नीतिपरक और उपदेशात्मक हैं अतनी काव्योचित राग रसिभ्या से सम्पन्न नहीं किन्तु उस युग में जिस शीतल और धाम्निमयी बाणी की आवश्यकता थी वह संगीत के माध्यम द्वारा इन्हीं के कण्ठ से नि सृत हुई। उनकी मान्यताओं के इतने प्रचार का कारण उनका साहित्यिक ज्ञान नहीं सगीत प्रेम ही है। सुन्दरबास को छोड़कर प्राय सभी सम्पत्त कवियों के सम्बन्ध में जो ऐतिहासिक प्रमाण मिलते हैं वे यही सिद्ध करते हैं कि वे विद्ये परे मिले नहीं थे। १ जिस ज्ञान-भार्य का उन्होंने अनुसरण किया उसकी धार्मिक अज्ञानता में भी वे नहीं पड़े थे। ऐसी स्थिति में यदि संगीत का प्रभाव भी उन्होंने ग्रहण न किया होता तो इस बात की सम्पन्न करना कठिन नहीं कि उनकी अस्मिन्मूर्ति का क्या प्रभाव पड़ता भवता जन साधारण में अपनी बातों का प्रचार के लिए सीमा तक कर पाते। निश्चय ही संगीत के प्रभाव में उनकी बाणी स्वाधित्व प्राप्त करने में कम ही समर्थ हो सकती थी। ज्ञान-वैराग्य का विषय कुछ ही लोगों को प्रिय होता है परन्तु इन भावनाओं के संगीत से सम्पन्न हो जाने पर पहले संगीत के जादू से हृदय

१ "निर्गुनपत्त्रियों में वे ही एक ऐसे व्यक्ति हुए हैं जिन्हें समुचित शिक्षा मिली थी और जो काव्य-रत्ना की रीति अति से अक्षरी तरह परिचित थे।"

बिचता है फिर उसके बहाव में बहने वाला मन ज्ञान-बीजक की भावना पर भी झुकने लगता है। शोका के लिए ही नहीं गायक या मन्त्र के सम्बन्ध में भी यह बात सोचनी चाहते ठीक है।

गीतिकाव्य की दृष्टि से रीतिकामीन प्रमुख कव्य कवि मनुकवास मुन्दरदास तुमगी साहब भीला साहब यारी साहब युमान साहब पसद साहब सहबोबाई श्याबाई शर्यादि हैं।

इन कवियों के पदों की यदि उस युग में प्रचलित क्रियात्मक संवीत की दृष्टि से समीक्षा सम्बन्ध होती तो काम की बहुत सी बातें हाथ मय सजती की किन्तु रीतिकामीन मन्त्र कवियों के पद ही नहीं हिन्दी का प्रायः समस्त पर साहित्य तत्कामीन क्रियात्मक संवीत की दृष्टि से नहीं जाया जा सकता। संवीत ध्वनि विद्या है और इसका सीधा सम्बन्ध 'कणोन्मि' से है परन्तु काम का बीज ध्वनिकान् उपस्थित हो जाने के कारण पुराने पदों का तत्कामीन प्रत्यक्ष वेप स्वरूप अब उपलब्ध नहीं हो सकता। यदि इनकी प्राचीन स्वरूपियाँ ही प्राप्य होतीं तब भी इस सम्बन्ध में बहुत कुछ अनुमान लगाया जा सकता था किन्तु इनका भी अभाव होने के कारण केवल कल्पना-किरण न माध्यम से ही उस भूमि पर संवीत की यत्किंचित् छानबीन हो सकती है।

एक बात धीर भी है। पर रचयिता के लिए यह बहुत आवश्यक नहीं है कि वह स्वतः श्रद्धा संगीतम भी हो। ऐसा ही सचता है कि एक द्वारा कोई पद बनाया जाय 'धीर मधुर कण्ठ वाले शिष्य उन्हें अपने स्तुनाधिक संवीत ज्ञान के अनुसार गाने लगे। ऐसी स्थिति में पद का शब्द-स्वरूप एक द्वारा तो नाद-स्वरूप शिष्यों द्वारा निर्मित होता है। यदि पद रचयिता ही उसका गायक भी हो तब पर के सम्बन्ध में राग-निर्दोष सहज स्वाभाविक होता है अथवा राग-धीपक प्रायः नहीं हुआ करता। मूर तुलसी जीय बनानन्द मारठन्दु हरिद्वज्य प्रभृति क पनों में राग-निर्दोष इमी कारण हो गया है कि इन सभी का क्रियात्मक संवीत से पर्याप्त सम्बन्ध था किन्तु यारी साहब भीला साहब युमान साहब शर्यादि की अनेक रचनाओं पर राग-धीपक क स्थान पर 'शब्द भिन्ना हुआ है। बीने 'धर' धीर पद क रचनाकार में सांगीतिक दृष्टि से कोई उत्प्रेक्षणीय अन्तर नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि 'धरों' की रचना ता निरचय ही गाने के लिए हुई, किन्तु या तो के किसी साम्प्रदायिक धीर की पुनः में—बिना किसी शास्त्रीय राग ताल की विधेय चिन्ता विदे—पाये जाते रहे या फिर इनके नादस्वरूप को नाने जाने की श्रेष्ठता पर छोड़ दिया गया। निर्गुण भक्तों धीर

सगुण मन्त्रों की भक्ति के स्वरूप में सरसता का जैसा प्रस्तर है वैसे ही प्रस्तर 'सर्वों धीर पदों में भी दृष्टिगोचर होता है। यह भी ध्यान देने की बात है कि मनुष्य मन्त्रों ने अपने पदों को कभी 'सम्प्र' नहीं कहा। उनके पद बस पर ही हैं धीर कुछ नहीं। इपर निर्गुण ज्ञानाश्रयी ध्याना क मन्त्रों में 'सम्प्र' लिखे जिनका सांकेतिक मायस्वरूप भी उनका निर्वृण ब्रह्म के समान कुछ इस प्रकार का रहा जिसे जो जानता है बस नहीं जानता है तथापि जहाँ भाषाशेष के कारण 'शरणों' में कुछ सरसता या यमी है प्रकृता उनमें बाह्य संगीत के समावेश के कारण राय-नाम का निर्देश किया जा सका है वहाँ यौतिकाम्य की विधेयताओं के साथ संबंध के तत्त्व भी जमर प्राये हैं। उदाहरणार्थ मसूकवास, सुन्दरदास धीर पारी साहज के ये पद दृष्टव्य हैं

मसूकवास

"बापा कोत्र रे जिय माई ।
 प्रापा खोजे जियुवन सुम्ह, प्रबन्धकार मिटि जाई ॥
 जोई मन सोई परमेसुर कोई बिरसा प्रबन्धु जाने ।
 जौन ओपीसुर सब बट भ्यापक सो यहु बप बखाने ॥
 सख्य प्रताहत होत बहा लें तहाँ ब्रह्म को बासा ।
 यमल मडल मे करत कलौसे परम जौति परगासा ॥
 कहत मसूका निरखुन के सुन कोई बड़भाषी चाई ।
 क्या बिरहो धीर क्या बेगमी जहि हरि देव नो पाई ॥" १

सुन्दरदास

"देवहु दुरमति या सतार की ।
 हरि सो हीग हाथ स बाबत मोट बिकार की ॥
 नाता बिधि के करम कमावत खबर नहीं सिर मार की ।
 झूँ मुन मे भूलि रहे हैं कृती पाब नंबर की ॥
 कोई बेसी कोई बगबी साई कोई भास इप्पार की ।
 प्रबन्ध-वच मे बहुदिसि ध्याये मुनि बिसरी करतार की ॥

१ 'मसूकवास जी की' बानी (बेकनेशियर प्रेस प्रयाग)

नरक जानि के मारय जासे मुनि मुनि बात सवार की ।
 अपने हाथ पसे में बाही पायी माया बार की ॥
 बारम्बार पुकार कहत हौं छोईं सिरजन हार की ।
 मुन्दरदास बिनस करि जईं देह छिनक में छार की ॥११॥

मायी साहब

“या बिधि भजन करो मन सार्ई ।
 निर्मल नाम सखी विनु सोचन सेत फटिय रोसमाई ॥१॥
 सीव कि मुरति प्रकास बसत जस बिठ बकोर बंदाइ ।
 कृमक नीर जसति मरी जैसे सागर बुब समुंद समार्ई ॥२॥
 जैसे मृग की रीति परस्पर, सोइ कंचन हू जाई ।
 मन पगरी पर बात लखिन सय कृम-कमा गट सार्ई ॥३॥
 तब तिलक छापा मन मुझा भजपा जाप तिर पाई ।
 भंवर बुध बहू ब मेवमा जोग जुपति बनि सार्ई ॥४॥
 बाबी जसति लख को लार्ई सति में मोन नहार्ई ।
 यायीदास सोईं मुक मेरा जिन यह जुपति बतार्ई ॥५॥ २

उपर्युक्त उठरणों में मसूक दास धीर मायी साहब के ‘सख निर्पुण भक्ति-भावना की सीधी व्यक्तिक्रिया है। यही बात मुन्दरदास की रचना में भी है किन्तु वे कर्णिक कोरे सक्त ही नहीं काव्य-व्यंग्यमय भी हैं। यद्यपि उनकी रचना में अन्तर्गत प्रवाह धीर धर्मयुक्त सख साध्य-योजना के कारण अपेक्षाकृत अधिक सौन्दर्यमय प्रवाह या गया है। हरि चर्पा मसूकदास की रचना में भी है धीर मुन्दरदास की रचना में भी किन्तु यह मुन्दरदास की अधिक साहित्यिकता का ही परिणाम है जिसके कारण उनकी रचना में पाठक को अधिक आसानीयता प्रतीत होती है। मसूकदास के पद में ‘सख प्रमाहृत् का अस्तित्व है धीर मायी साहब ने भी पहली ही पंक्ति में भजन की बात कही है। यद्यपि रचे तो दोनों ही। पद

१ ‘कविता कौमुदी’ पहला भाग (सम्पादक राम नरेश त्रिपाठी)

पृष्ठ-१४१ १४४ पाँचवीं संस्करण

२ ‘यायीसाहब की रत्नावली’ (विनयेन्द्रियर प्रेस प्रयाग) पृष्ठ-१

पाने के लिए गये हैं किन्तु इन पर्वों की प्रतिशक्ति को हृदयंगम करने के लिए साम्प्रदायिक ज्ञान की अपेक्षा है। मन्थना इनके माये जाने पर 'बाँधी जमटि सर्प को बाँई, लसि में मोन नहाई 'बोइ मन सोई परमेशुर' 'गगन मंडल में करत कमोसै बँसी उक्तिवाँ वीठ सुमने ताने के मस्तिष्क की परीक्षा करते सर्वेसी।

समयगत पदों में राग वजन का काम संगीतज्ञ की स्वेच्छा पर छोड़ दिया गया है किन्तु त्रिषी में राग की मानिकता स्वानुकूल सम्भावनी की अपेक्षा भी तो रखती है। तुलसी साहब (हाजरत बाले) की धर्मोपनिषित रचना देखिए। इसमें २-नाम का भी उल्लेख है।

तुलसी साहब

'जातरा ब्याम'

'नाम बोही नाम बोही कोई बुद्धे भेद भेरी जिन जाना री ॥१॥
 राम न सके नाम गुन पाई, संतन को बरसाना री ॥२॥
 बहू राग से नाम निजारा समायन बाबाना री ॥३॥
 बोइ मजन काल कैरी बंधन पर बीजे परबाना री ॥४॥
 कोई समजन सतपुर से पावे हिये दूप दुष्टि दिखाना री ॥५॥
 मूरत सिद्धर बड़ी बस हारे पाव पर पहिचाना री ॥६॥
 तुलसी मजन मुक दूर जानी मूरज किरत समाना री ॥७॥१

इस रचना का गीतक 'जातरा ब्याम' है। अतः यह पुनः इस समय का प्रमाण है कि मूर तुलसी के युग में प्रचलित भूपद-रीती रीतिकाल में भाकर मयाम-रीती में परिवर्तित हो गयी थी। 'जातरा काण्डका का ही ब्यान्तर है, जिनके एक बजन में अधिक प्रकार गायकों में प्रचलित हैं किन्तु कौनों काण्डका गायकी काण्डका घडाना काण्डका वैसे काण्डके के किसी प्रकार विशेष का स्पष्ट धार्मिकत्व न होना पर 'जातरा' में सामान्यतः ब्यापारी काण्डका का ही बोध होता है। यह राग मन्मीर प्रकृति का है। अतः एक घोर तो शृङ्गार की मन्मीरता अधिभक्त करन में श्रावक हीता है तथा दूसरी घोर वैराग्य वल की मन्मीरता

१ तुलसी साहब (हाजरत बाले) की सम्भावनी, भाग-२
 पृष्ठ-२४५, वैतसेडियर स्टीम प्रिंटिंग वर्क्स से प्रकाशित

के लिए भी गायकों द्वारा प्रायः व्यवहृत हाता रहा है। इस दृष्टि से देखा जाय तो यहाँ रचना के मात्र के अनुक्रम ही राग-व्ययन हुआ है, किन्तु इसकी अन्तिम दो पक्तियों में जो भावना अभिव्यक्त हुई है, उनका सहज बाधगम्य न होने के कारण अनुभूति की सावजनीयता में कमी प्रवश्य आ गयी है।

अन्त कवियों ने हिबोयना २ बसन्त १ होमी ४ इत्यादि छीर्यको से भी कुछ रचनाएँ लिखी हैं। अथवा अरहूह मादकता में भ्रमता हुआ अशुभ का एगीन महीना जब जन-मानस को भी रयीन बना देता है तब उसके अन्तस् का उस्तास होनी की शून में मूँज उठता है। होमी की इस मस्ती से उनका भी हृदय हिमोरे से उठता है जो सामान्यतः सांसारिकता से बहुत दूर माने जाते हैं। प्रत्यय-हेतु गुमास साहब और मीखा साहब की अशोभित्व हासियाँ इष्टम हैं

गुलाल साहब

होमी

“होरो मन बेसे जह उठत पूज भनकार ।

घाठ पहर बुनि सयी एरगु है बिनु जाने बिनु तार ।टेका।

१ इष्टम्य—आचार्य मातलकडे हृत गीतनुस्वानी संगीत-पद्धति कमिक पुस्तक मालिका' भाग-चार पृष्ठ-१३२, १३३
द्वितीय संस्करण

अपान की शम्भ-योचना यह है :

राग दरबारी कागहूहा

स्वापी

समझत ना मन तू मेरा

लाख बार समझवत हूँ मैं कछे न तजत प्रियरा ।

अंतरा

भूरी मया भूरी काया भूरा जपत पसेरा ।

अंत सने कोई काम न प्राप्त जब प्रभू एक तेरा ॥

२ इष्टम्य—‘मीखा साहब की बानी’ पृष्ठ १७-१८

(बेलबेडियर प्रेस इलाहाबाद) संस्करण सन् १९१९

३ वही पृष्ठ ४०-४२

४ वही पृष्ठ, ४२-४७

काम श्रेय तहनां नहि देखियत चहनां बार न पार ।
 इसो दिसा में होरी ऊठठ प्रभु भी के बरबार ॥१॥
 बिसस बिसस सखियां गुन गाबहि पंचम मुर शबिकार ।
 प्रेम पिबुकारी भरि भरि मारत भीरत बह्य अपार ॥२॥
 धनुमब फागु खेमत सुख साम्यो निर्मल ज्ञान बिचार ।
 कोटि मुर छवि कोटि कोटि छवि भूमक परल बिहार ॥३॥
 संतन संय मिमि होरी खसो प्रीतम भरल बिहार ।
 कह मुमाल खरनन बसिहारी बसि बसि प्राग पियार ॥४॥१

भीष्मा साहय

‘होती’

(१)

‘होरी सो बेसै जाके सतगुरु ज्ञान बिचार ।

यहि सिबाइ को भीर करतु है ताको जगम सुधार ॥१॥
 इंसन पियल हूँ सुल्ल मँटानो सुल्लमन भवो छबियार ।
 मूर जहूर बदन पर मलकत बरखत अपर अपार ॥ २॥
 बाजत मनहुव मँटा तहूँ छुनि छबिगत छत्र अपार ।
 पुसकि पुसकि मन धनुमब पावत पावत फलक दिवार ॥३॥
 मजर मबीर कुमकुमा केसरि, उमगी प्रेम पोखार ।
 राम नाम रस रंग भयो मत काम श्रेय हुंकार ॥४॥
 स्यापक पुरन प्रगम प्रगोबर, निज साहब बिस्तार ।
 भीष्मा बोसत एक समन में है जग सकल हमार ॥५॥२

उपर्युक्त दोनों हीतियों को पुन काशी राम की उन सामान्य होतियों के संय की प्रतीत होती है जसी फागुन के महीने में प्राय मुनी जाती हैं । यह ठीक है कि होती के उस्मास से सम्बन्धित पीठ बिहाय औरबी इत्यादि भिन्न भिन्न रायों में भी गाये जा सकते हैं किन्तु काशी राम होती के भिन्न इतना

- १ ‘पुलाल साहय की बानी’ (बैलबेडियर प्रेस प्रयाग) पृष्ठ १०२
 द्वितीय संस्करण
 २ ‘भीष्मा साहय की बानी’ (बैलबेडियर प्रेस प्रयाग) पृष्ठ-४२,
 संस्करण १९१९

कठिबड हा गया है कि किसी समय से हाली मुनात की फरमाइश करन पर बहु प्राय इसी समय से होली मुनाता है। उपयुक्त बोनो होवियों में सामान्य होवियों जैसा शृङ्गागिता चाहे न हो किन्तु इनकी भास गति प्रकटा प्रवाह दीपबन्दी ठाम में काथी समय की प्रकथित हावियों से भिन्न नहीं है। १

यस्तु ऐतिहासिक ज्ञानाधारी शाखा के कवियों की कृतियां सगीत से प्रलय नहीं है। इनकी रचनाओं पर कहीं-कहीं ही स्पष्ट ही समय-सोपकों का उल्लेख मिल जाता है और जहाँ नहीं मिलता वहाँ गावकों द्वारा इस कमी की पूर्ति कर ली जाती है। उदाहरणार्थ गीता प्रेस मोरकपुर से प्रकाशित तथा श्री विद्योयी हरि द्वारा सम्पादित 'भजन-सुग्रह' के जो विभिन्न भाग प्रकाशित हुए हैं उनमें राग और ठाम के शीर्षक स्वर्गीय श्री बिष्णु दिग्म्बर द्वारा दिये गये थे। इस 'भजन-सुग्रह' के तीसरे भाग में पृष्ठ १४४ पर सहजोबाई की निम्नांकित रचना राग बिबाधत ठाम धारण में दी हुई है

सहजोबाई

'राग बिबाधत'

हरि बिनु ठरी ना हिनू कोऊ मा बस माहीं ।
 धन्त समय नू देखिन कोई यहै न बाहीं ॥
 बस मू कहा छुटा सकै कोई समय न होई ।
 नारी हूँ फति रहि यहै स्वारस कू रोई ॥
 पुन कतिअर कौन के माई प्रक बन्धा ।
 सब हो ठोक बसाइ है समझै नहि धन्धा ॥
 महस दरब ह्या ही गै, पवि-पवि कर जोड़ा ।
 करहा मज ठाके रहै बाकर पद बोड़ा ॥
 पर काबे बहु पुन छै हरि-मुविरल खोया ।
 'सहजो बाई' जन बिरे सिर बुनि-बुनि राया ॥'

१ देखिए पाषाण मातङ्गणे कृत
 'हिनूस्वानो संवीन-बद्धति क्रमिक पुस्तक मातितर'
 दूसरा भाग पृष्ठ, ३३६, ३३७
 तृतीय संस्करण

सगुणों का सैद्धान्तिक निरूपण और साधना के विधि-विधान मुख्यतः उनकी स्वानुभूति पर ही आधारित थे। अपनी इस धार्मिक अनुभूति पर उन्हें पूर्ण भ्रष्टा और घटन विचार या इसी कारण उन्होंने कभी यह नहीं कहा कि उनके सिद्धान्त किसी धर्म-ग्रन्थ के द्वारा प्रमाणित हैं। उनकी तो घटन भावना ही यह थी कि उनके सिद्धान्त मार्गदर्शक और साधना के बंध एकान्ततः सत्य हैं और कोई भी व्यक्ति उनकी ही तरह उस साधना-लोक में उतर कर इस सत्य की अनुभूति प्राप्त कर सकता है। सगुणों की यही भावना उनकी अभिव्यक्ति की ईमानदारी है और यही वैयक्तिक रासायनिकता उनके शब्दों या पदों में सर्वत्र विद्यमान है। उनके अस्तर्जगत की निर्लेप अभिव्यक्ति प्रायः संगीत के ही माध्यम से हुई है।

जिस प्रकार भक्तिभाव के सगुण कवियों की अपेक्षा भक्त-कवियों में गीतिकाव्योपयोगी तत्त्व अधिक हैं उसी प्रकार रीतिकालीन रीतिकाव्य में भी सगुण कवियों की अपेक्षा भक्त कवियों की रचनाओं में संगीतानुकूल स्वारस्य और काव्योचित रास-रसिकता अधिक है। जो वैयक्तिक रासायनिक अनुभूति तो सगुण कवियों में भी मिल जाती है परन्तु संकीर्ण में ऐसे ही गीत अधिक बहिष्कर प्रतीत होते हैं जिनमें लोकगीतों की तरह धार्मिक मानव भावनाओं की निराकरण स्वीकृति विद्यमान रहती है। प्रेम, शोक, व्यकुलता, मान, रति, शीघ्र, विह्वलता, रस, अमुराम, विराम इत्यादि की निर्लेप अभिव्यक्ति मानव हृदय को बिलम्बी शीघ्रता और निष्कलता से छू लेती है जतनी बन्दी और जतनी महाराई से मान-वेदाय की विचार प्रदान भावनाएँ अन्तस् का स्पर्श नहीं कर पाती। हिन्दी-रीतिकाव्य के इतिहास में यद्यपि मूर, गुमरी और मीरा का युग फिर कभी नहीं सौटा परन्तु रीतिकालीन भक्तिपरक गीतिकाव्य में सीजन और असीकिक प्रेम की अभिव्यक्ति विरल नहीं है। रीतिकाल में लक्षण शब्दों के प्रयोग के कारण बोद्धिकता की अभिवृद्धि हो रही थी पर तत्कालीन अनेक कवियों में हृदय-वत्त मर्माहित सा हो गया था। अनुभूति की तीव्रता का सहज उच्छ्वसन उनमें कम था फिर भी एक ओर तो उस युग के प्रेमोगमल कवियों—बैठे धनामल्य भालम अकुर, बोधा धारि—की भावितकृतियों और दूसरी ओर नामरीहास अलबेनि अलि बाबा हित गुंदावन राम मुन्दरि कुंवरि भववत् रतिक धारि के मरम पदों के कारण रीतिकाल में कुछ गीतिकाव्य के अभाव की अनुभूति जन्मी नहीं हो पाती। इन युग के अनेक श्रेष्ठ उपदेशकों ने मानुष्य भाव से प्रेरित होकर मुन्दर पदों की रचना की। इन कवियों की शायी में

निराश ही तन्मयता है किन्तु सखी भाव की प्रवृत्ति से रचित इन पदों में जो शृङ्गारिकता भा मयी भी उनके कारण विभिन्न सम्प्रदायों के रसिक भक्तों ने अपने पदों को मुक्त बोधित कर उन्हें अपने अनुयायियों तक ही सीमित रचना उचित समझा। अस्तु रीतिकाल में रीतिकाम्य के ह्यामोम्बुब होने का यह भी एक कारण है। इस सम्बंध में यदि परिचयपूर्वक जोर की जाय चाय ही विभिन्न सम्प्रदायों के अनुयायियों में यदि कुछ उदारता भा जाय तो रीतिकाल में सिखा यथा पर्याप्त पर-साहित्य प्रकाश में आ सकता है। इस पय म ब्रज यन्त्र में मुख्यतः बसन्त राधा बसन्त माध्व (गौड़ीय) निम्बार्क तथा हरि वासी (टूटी) सम्प्रदाय के अनुयायी संगीत को अपनी साधना का रस बना कर, अपनी-अपनी उपासना में रत थे। इन सम्प्रदायों म गौड़ीय सम्प्रदाय का साहित्य अधिकतर संस्कृत या बंयसा में ही उपलब्ध है। ब्रजभाषा में पर रचना की और इनका जसाहू प्रायः नहीं लिखापो वेता। यही कारण है कि गौड़ीय सम्प्रदाय में हिन्दी पर-साहित्य का इतना अभाव दृष्टियोजर होता है। बसन्त सम्प्रदाय के अनुयायियों ने भी रीतिकाल में पर-रचना प्रायः नहीं की। इसका मूल कारण यह है कि इनके पूर्ववर्ती अष्टछाप के कवियों ने जो पर लिखे थे उन्हें धार्मिक दृष्टि से इतना अधिक महत्त्व प्राप्त हो चुका था कि मन्दिरों में उन्हीं के पदों को गाया जाना आवश्यक समझा जाता था। यही नहीं बर्य घर के विभिन्न उत्सवों क सिप अष्टछाप के कवियों के विशिष्ट पर लिखित भी कर दिये गये पलत परवर्ती भक्तों में नूतन पर रचना की आकांक्षा उठीप्ट न हुई। कुछ धार्मिक भास्वा से प्ररित होकर वे लोग पुराने पदों को ही अडा भक्ति से पाना उचित समझते रहे और भाव भी वे ही पर यथापूर्व गाये जाते हैं। अष्टछाप के कवियों के परवान् इस परम्परा में नूतन पदों के अभाव का यही प्रमुख कारण है। हाँ राधा बसन्त और निम्बार्क सम्प्रदाय के भक्तों ने रीतिकाल में भी अनेक पदों की रचना की। निम्बार्क सम्प्रदाय के अन्तवत हरिवासी (टूटी) सम्प्रदाय में भी अनेक ऐसे भक्त हुए जिन्होंने माधुर्य भावना से प्ररित होकर सहस्रों गुल्पर पर बनाय। यद्यपि अपने सम्प्रदाय के पूर्ववर्ती कवियों द्वारा रचित पदों के प्रति इन लोगों की प्रबल भास्वा थी परन्तु नूतन पदों के प्रति भी इनमें उदा सोनता म थी अतः इन सम्प्रदायों के भक्त कवियों और कवयित्रियों ने रीतिकाल में भी अनेक पर रच। ऐसे अनेक भक्त-नामक धार्मिकों में से संगीत की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कुछ नाम म हैं

- २ श्री बनीटनी जी
- ३ श्री किशोरी राग जी
- ४ श्री सुन्दरि कुंवरि जी
- ५ श्री रसिक गोविन्द जी
- ६ श्री गरहरि देव जी
- ७ श्री रसिक देव जी
- ८ श्री ससित किशोरी देव जी
- ९ श्री ससित मोहिनी देव जी
- १० श्री मगवत रसिक
- ११ श्री कमल नयन जी
- १२ श्री सहचरि सुख जी
- १३ श्री स्वप्नास जी
- १४ श्री प्रेम दास जी
- १५ श्रीमती धान्सी बाई जी
- १६ श्री चाचा हित कुन्दाबन दास जी
- १७ श्री रतन दास जी
- १८ श्री रसिक दास जी
- १९ श्रीमती बयासजी जी

इन कवि-नामावली से उपर्युक्त प्रमुख सम्प्रदायों के मूल गायकों का उत्तम प्रतिनिधित्व हो जाता है। संगीत और शाय्य की जो विशेषताएँ इनमें उपलब्ध हैं, श्रुताधिक रूप में वे ही विशेषताएँ ऐतिहासिक शाय्य पद्य-रचयिताओं में भी मिलती हैं। इन कवियों की कृतियों में राधा-वृष्ण की सीमा धीरे-धीरे रूप-माधुरी की अनुपम छटा है बस्य होती है। पृथु होस इत्यादि जलसर्षों में उनके भावुक मानस का उन्मेष है और है उनका हृदन की बहु शृङ्गारिता जो राधा-वृष्ण का मुनगात करके सौकरिता और शरीरकृता दोनों का प्रतिरूप करती हुई बिलम्ब हा उठी है। कुन्दाबन के मन्दिरो में जब महतमन मन्वान की मन्तुल मूर्ति का रचन करते हुए मन्दिरो के गायकों (समाजिया) के समवेत स्वर से इन पदों की मुग्धे हैं तब नेत्रत्रिय धीरे-धीरे कर्णत्रिय दोनों ही की परितृप्ति के साथ उनका हृदय बिलम्ब नाव बिभोर हा जाता है यह बहने की बात जतनी नहीं है जितनी प्रत्यक्ष देखने की। इन रसिक मन्तों की सरस बापी कमी तो संसार की मददरता धीरे-धीरे माया से क्षिप्त होकर मन को प्रबोध देने लपती है और कभी

कृष्ण-नीला में लम्बे होकर जन-मानस को हरा भरा करने लगती है, प्रत्यक्ष रचनाओं को स्तुमत् हो वर्षों में विभक्त किया जा सकता है। एक वर्ग तो उन पदों का है जिनमें वैराग्य भावना सैद्धांतिक विस्तृत मुक्त के प्रति बड़ा प्रतिक्रिया भवभाव के पावन नाम की महिमा और कुन्दार कुन्दार के प्रति प्रगुरक्ति की प्रमिष्यक्ति हुई है और दूसरा वर्ग उन पदों का है जिनमें उनके हृदय की राग रसिकता भगवद्-आन्ता भाव को प्रपनाती हुई संपीठमय उपासना में मुक्त हो चली है। वैराग्य-भावना से प्रोत्पन्न उनके पदों के कुछ उदाहरण ये हैं

श्री रसिक शेष जी

(पद)

मैया रे ! या तन से हृदय उड़ानो ।
 या बिन तेरी कसु न बसपी बस के ह्राय बिकानो ॥
 प्रनरय करि करि नर बन जोर्यी सा भन भयो बिरानो ।
 बसती बेर कसु संय न नीनो सिर बुनि बुनि पछितानो ॥
 माता पिता सबन सुत, बन्धु भनने करि बिन मानो ।
 ए तेरे कोउ काम न भावे सबे बटाउ जानो ॥
 ह्राय पाव बरि नैन नासिका बदन मुखि कुम्हमानो ।
 बरि बरि छार भयो एक दिन में मिति गयो टीक ठिकानो ॥
 बुधिद संय बहुरि ना ताकी पाई बित करि भयो पवानो ।
 श्री रसिकदिहारो के बदन बिन दीपक सो निरकतानो ॥ १

श्री नागरी दास जी २

किते बिन बिन कुन्दारन खोए ।

पोंही बुझा या ते बसतो राजस रंय समोए ।

१ श्री महाशरीर बिहारीसाल द्वारा सम्पादित 'श्री निम्बार्क मापुरी' (संस्करण संवत् १९९७) पृष्ठ-११९

२ श्री नागरीदास जी के सम्प्रदाय के सम्प्रदाय में परमि मतनेव है। सम्प्रदाय इत नाम के बाद पाँच कवि हुए हैं। कुन्दारदास महाराज नागरीदास को श्री बियोपी हरि ने 'बज मापुरी सार' के पृष्ठ-१२३ (द्वितीय संस्करण) पर बसन्त कुन्दार का शिष्य माना है। 'श्री निम्बार्क मापुरी' के लक्ष्य कुन्दार जी बिहारी सार के अपनी पुस्तक के पृष्ठ-११९ पर इन्हें निम्बार्क मतानुयायी बताया है।

काहि पुनिन ठसन की सग्गा सुनसरन पर बोए
 भीने रसिक धनम्य न बरसे विमुजन के मुय बोए ।
 हरि बिहार के ठोर रहे नहि सति धमाम्य बन बोए
 कन्ह सपय बसाव मिठारी माया राइ बियोए ।
 ईकसर ह्यके मुय तकिके ह्यो कन्हहु हुंते कहुं रोए
 क्रियो न धपनो काज पचए मार सीस पर बोए ।
 पायो नही धामन्य सेस में सबे देस टकरोए
 'नागरिकास' बसे कुंजरन में जब सब विधि मुज मोए । ?

श्री सुन्दरि कुंवरि श्री
 (पब)

मन ! तू काहि पबत कहा जाहू ?
 बड़ बगम उछाठ बसत है तिनको कीन निबाहू ?
 लोको कहा मार है प्रिया ! काहे को दुख मानै ?
 निर्मय हूँ निरिचल्य सहज में प्रभू कृपा किन जानै ?
 पपत-पह के पाहसीर ए बहूत बटाऊ लोग
 तिनमें तूह धान कसो है तिहुं करम-संपीय ।
 कस कीड़ी मय कुंजर पाबत रे साहिव है सबको
 ली कहि इव्य इलीकित बोरी पूरत पोपन देह
 छोऊ पासन-करनहार बह लीकै करत धझेइ ।
 काम कोब धर सोम मोह, मय इनको सत्रि तू मारी
 ठासो दुरयम संस मिटी सब हूँ बचन निर्वांचे ।
 निरचस हूँ बुड़ सोबि सवाल मान गूठ मय मरी
 सुमरि नंदनबन निरिबरधर पबो सब धय होय बति ठेरी ।
 बहूत धमोकिक मुय संपइ ली काहु सरन थी रघा
 'सुंदरि कुंवरि' मुठा कीरति की यहि राबे ली नाहू धनाभा । २
 उपयुक्त पबों में मन को सांसारिक माया-मोह छोड़कर धय माने
 की घोर धपतर होने का जो उपदेस दिया गया है उसमें पौतिकाम्योपयोगी
 अनुभूति की विभूति सर्वत्र विद्यमान है । इसी प्रकार निम्नलिख पबों में मुक्त पर

? 'श्री निम्बाक मापुरी' पृष्ठ-१९२
 ? 'श्री निम्बाक मापुरी' पृष्ठ-१९३

महा राधा-कृष्ण के नाम-स्मरण में विरहाम घोर दुग्दावन की पावनता में जो घात्वा प्रकट की गयी है जगमें भी उनके हृदय की निगलता शायद दृष्टि गोचर होती है

श्री रतन वास जी

(पर)

राग काशी

यह बानी पसत हित प्रम मूल तें ।

श्री हरिबंध चरन जल सींसी स्वादस्वरूप प्रकृष विभूति तें ।

श्री पुन कृपा व प्रंकुर हाठ है बल र्जनत रसकवि पर परसे मूल त ।

बैठे छाइ मुख हित रतनवाम नित बुन परम न बहु विविधि रूप त । १

श्री ललित बिहारी देख जी

(पर)

मोहि भरोमो स्वामी जी को ।

करि हूँ अपनी घाप बराबरि प्राणप्रकार धिये को ॥

विषम, वामना बारि बेह करि उद्वत है हित मीको ।

रमिक बिहागी बिहरिनि तन मन और मयै मय खीको ॥ २

श्री सुन्दरि कुंवरी जी

(पर)

भवि मल ! श्री सुपमानकुमारी ।

पुन विधि रूपराधि कीरतिका मद्रजपादा सुह ब्रजियाती ।

भोगी कुंवरी कइंती राधा नवन विमोरी नामरि

आके नित आधीन रमिकवर मोकुमबद उभावरि ।

पिर कर जीव मोक बदकोतिन आनी रचना राबे

सोई राधा हाव बिधामो तदपर नाच नु नाई ।

वममा आके चल-कच को चापि माग निज मानै

गो राधा-मद परछन जाकक लावन मिन लगमार्नै ।

आरौ नाम रटत मज मुर नर मुनि जोपी निष साधा

लाको सो नित लगी रहन है एक नाम रट राधा ।

१ संपादक बाबा बंसीदास (बम्बयन)

२ श्री निम्बार्क मापुरी पृष्ठ-३१६

जाको ध्यान भरत है साधक किते कष्ट तप करहीं
 सो राधा के ध्यान नर-गृह काज न करत संघरहीं ।
 जाकी कृपा मनावत दिन बिधि निशि दिन गावत माव
 सो सो राधा कृपा-दृष्टि के जाहि लप्यो रह साव ।
 जाको दरस सैस सनकाधिक करि-करि भाग मनाई
 सो राधासुखमम निहारत सोभी भमर कहाई ।
 हीन लोक जाकी पन्थज को नाम सेत सिर नावत
 सो सो राधा पावन परि-परि जब तब सदा मनावत ।
 धरे पुष्ट-धन बड़ बेद को है श्री राधा-नाम
 निष्पुण-हृदय धाराव जाप निज यह ही घाटो नाम ।
 श्री बुन्दावनदेव छाप सो मने घसीकिक पायो
 'सुंदरिकांवरि' जलन-मकन पै ह्वै धमि धव मन रह मङ्गलायो । २

श्री सलिल किशोरी देव जो

(राय-देवर्नवार)

हमारे हरि हैं सदा मुहाई ।
 ओह ओह कब करे पुनि छोई घोपत मन भाई ॥
 हरप-हरप मनुष्यग बजावत बीबनि घति मुसबाई ।
 श्रीहरिबासी ललित किशोरी' हंसि हंसि कठ लगाई ॥ २

श्री रसिक देव जो

(राय बिहारी)

भाव बडो बुन्दावन पायो ।
 जा रज को गुर नर, मुनि कमपत बिधि संकर सार नायो ॥
 बहुतरु बुन मा रज दिन बीते जन्म जन्म रहकायो ।
 सो रज घब हुवा करि सीनी समय-निघान बजायो ॥
 घाय मिस्यो परिवार धापने हरि हंसि कष्ट मगायो ।
 स्वभा स्वामजू बिहुरत बोळ सली-समाज मितायो ॥

१ श्री निम्बार्क मापुरी' पृष्ठ-५९५, ५९६

२ श्री निम्बार्क मापुरी', पृष्ठ-१३६

सोग सगताप करो मति कोई दाब मको बनि घायो ।
 'धीरसिद्धविहारी' की पति याही बनि-बनि भोक बहायो ॥ १

श्री कामल मयन जी का पद

(राम-बसन्त)

धी बुन्दाबन छवि नहीं न जाइ । जहाँ प्रकृतितनुनुम अनेक भाइ ॥
 नमिनी नमिन बुति अपार । अमिनी अति तहाँ कर्त मुबार ॥
 कुंज घाम तहाँ रक्षी बनत । बैठे रूपति मुख घनत ॥
 कनक मूरुम अकनी मुबार । प्रीतम प्यारी तहा कर विहार ॥
 भलिठारिक तहाँ सती बृह । बदन बोति भागो कोटि इन्धु ॥
 प्रतिबिम्बित सपति बिपिन बाम । सता अवन में योर मराम ॥
 बिबिध पीन तहाँ रई निर । निरपि बिहारिनि हरपि बिठ ॥
 अमल नाकत सरग बमार । छवि पर बारी कोटि मार ॥
 माना रंग सौं रंगे हैं साम । सापर छोई पट युताम ॥
 घाए बेनि न्यान अमुना तीर । मोहल बीर 'रघुपाम' सरौर ॥
 रय बसत तजि नबल बारि । मुहे पहिर करि विचारि ॥
 बिजन भोजन करि रमात । बीरी घात सखी के जगाम ॥
 कर बेनि मानन्द कुस काति । नूपुर किचिनि मुर मुहाति ॥
 ऐनी कौतुक संतत बपाम । सुक नारद निगम बहे राम ॥
 निरनि नुमल बर भति हुसाम । यी कामल नैन रिठ सखी पाम ॥
 जैयी हित हरिबध बर कृपा पाइ । अति रक्षि बल बिभव महज पाइ ॥ २

उपर्युक्त पदों की तुलना कतिपय सांघीतिक निबन्धनाओं में की जाय तो दोनों में आश्चर्य साम्य पर्यन्त दृष्टिपथ होगा । ईश्वर्य नुं मति, हरि-नाम स्मरण प्रपका कुन्दाबन योक्तुस इत्यादि की महिमा को मांती का विषय बनाकर सांघीतिक निबन्धनाएँ भी बराबर रची जाती रहीं हैं । प्रत्यय-हेतु निम्नस्व रणाहरण इत्यस्य है

१ 'धो निम्बाक माधुरी, पृष्ठ ३१७

२ 'शुक्लार-रस-नामर' प्रथम अङ्क, पृष्ठ-१० प्रयागक घोर संपहर्तक
 नाम नूनलोदाय (बुन्दाबन)

राम मामझीम-त्रिताल (मध्यलय) †

म ग गम
(
दि म)
(

रघापी

| | | | |
|-----------|------------------|-----------|------------|
| प - सा - | सा नि सा नि ष नि | सा - म - | म य - - |
| मी ङ के ङ | भी ऐ ङ | बा ङ ऐ ङ | है ङ ङ ङ |
| • | ३ | × | २ |
| म म ग ग | म ष नि सा | सा - नि ष | - म म ग म |
| मु म र न | क र से | रा ङ म ना | ङ म दि न । |
| • | ३ | × | २ |

अक्षरा

| | | | |
|-------------|-----------|---------------|--------------|
| म म य य | म म ष - | सा नि - सा सा | - सा सा सा |
| स क स ज | ष त के | भी ङ सो का | ङ म ष ष |
| • | ३ | × | २ |
| नि | रु | ष | नि |
| सा - सा सा | सा - नि ष | म म ष ष नि - | ष - ष नि |
| छा ङ ङ ष | मी ङ ये ङ | ष र ङ मी ङ | षा ङ ष हि |
| • | ३ | × | २ |
| सा - सा म म | म - म - | म ष म ग म ग | - सा सा - |
| सी ङ ष ष | से ङ पा ङ | ए ङ क बा | ङ म जो ङ |
| • | ३ | × | २ |
| नि | ष | ष | म ग म |
| सा - सा - | नि ष म ष | नि ङ ष - | म ष म ग म |
| दे ङ ऐ ङ | है ङ सो ङ | पा ङ ते | है ङ, दि न । |

† आचार्य भातखण्डे द्वारा लिखित संगीत-यज्ञति नामिक पुस्तक मासिका तीसरा भाग (तृतीय संस्करण) पृष्ठ-७११, ७१२

राम साहूनी-बिठास (मध्यमय) १

| स्वायी | | | | सांनिष | पुरु |
|------------------|------------------|------------------|-------------------------|-------------|------|
| नि सां निष नि | म ^१ प | म ^१ ष | नि सां रें सां | नि सां - - | |
| रु र नऽ ष | र ण | क र | म पु षाऽ | ऽ ऽ ऽ ऽ | |
| • | १ | | × | २ | |
| सांनि सां रें नि | - सां | नि ष | म ^१ ष नि सां | नि ष नि ष | |
| बि फ स ब | ऽ य | ष ण | मोऽ स स | क म ब प | |
| • | १ | | × | २ | |
| सा सा म ग | म ^१ ष | नि मां | सां रें सां रें | नि मां नि ष | |
| ब रि प स | क ब | हु न | पाऽ छि छि | र त मु रु | |
| • | २ | | × | २ | |

अन्तरा

| | | | |
|-----------------------|-------------------------|-----------------|---------------|
| मग - म ^१ ष | सांनि - सां सां | सां रें सां रें | नि नि सां सां |
| नाऽ माऽ | सी ७ र य | ह र रं म | हु छि र त |
| • | १ | × | २ |
| सांनि रें गं रें | सां रें सां सां | नि ष नि सां | नि ष सांसां |
| एऽ क ना | ७ म म ब | बि ष न ह | र त मु रु |
| • | १ | × | २ |
| नि ष म ग | म ^१ ष नि सां | रें रें सां - | नि सां नि ष |
| ब र न ग | र न क र | म पु षाऽ | ऽ ऽ पु रु। |
| • | १ | × | २ |

राग बिजावली सारंग-निताभ (मध्यमय) १

स्वामी

| | | | |
|---------------|---------------|----------------|------------|
| मरे - सा सा | सा नि नि सा - | रे नि सा रे सा | रे - रे प |
| टा क र | र स ना ङ | रा ङ म कौ | ना ङ म र |
| • | १ | × | २ |
| मरे - म नि पम | मरे रे सा - | मरे म प पम | मरे - - रे |
| टा ङ क र | र स ना ङ | रा ङ म का | ना ङ ङ म |
| • | १ | × | २ |
| मरे - म म रे | - रे सा सा | सा नि ना रे सा | प नि - प प |
| रा ङ म रा | ङ म र पु | प ति र पु | ना ङ क क |
| • | | × | २ |
| रे म - म प | - प प प | प म - नि पम | मरे - रे प |
| के ङ ध्व के | ङ ध्व क क | ना ङ क ट | स्वा ङ म ट |
| • | १ | ✓ | २ |

धम्तरा

| | | | |
|-----------|---------------|---------------|----------------|
| पम - प - | प नि प नि - | सा - सा सा | सा नि ना सा सा |
| गो ङ पी ङ | प ति यो ङ | पा ङ म म | दा ङ म र |
| • | १ | × | २ |
| सर - सा - | प नि पम मरे - | मरे म म नि पम | मरे - रे पम |
| रा ङ सा ङ | ब र ङ सो ङ | ब म ध मि | रा ङ म र |
| • | १ | × | २ |

राग बिहारीनी सारण चौताल (त्रिकवित) १

| स्वाधी | | | | | | | | | |
|--------|-----|-----|-----|----|-----|-----|----|-----|-----|
| रे | सा | - | सा | सा | रे | सा | - | सा | सा |
| व | न | ५ | प | न | वि | शा | ५ | क | न |
| × | | ० | | २ | | | ३ | | ४ |
| रे | सा | - | मरे | प | म | रे | - | सरे | सा |
| व | न | ० | प | न | गो | ५ | ५ | कु | न |
| × | | | २ | | ० | | ३ | | ४ |
| सा | सा | - | मरे | म | म | प | प | पम | नि |
| व | म | ५ | गो | ५ | के | त | ट | ५ | ५ |
| × | | | २ | | ० | | ३ | | ४ |
| पनि | पनि | प | मप | म | रे | मरे | म | मप | म |
| पी | ५ | ५ | प | र | ५ | छा | ५ | री | ५ |
| × | | ० | | २ | | ० | | ३ | ४ |
| अन्तरा | | | | | | | | | |
| पम | म | प | पनि | सा | नि | सा | - | पनि | सा |
| व | न | ५ | पी | ५ | वि | शा | ५ | क | न |
| × | | ० | | २ | | ० | | ३ | ४ |
| सा | नि | सा | मरे | मं | रे | सा | - | मा | पनि |
| व | न | ५ | वा | हा | ५ | बू | ५ | व | ५ |
| × | | | २ | | | ० | | ३ | ४ |
| म | रे | - | म | प | निप | सनि | सा | - | रे |
| व | न | | मु | र | ५५ | मी | ५ | ५ | ५ |
| × | | | २ | | | ० | | ३ | ४ |
| पसा | - | पनि | प | म | रे | मरे | म | मप | म |
| व्या | ५ | ५ | म | ५ | ब | जा | ५ | री | ५ |
| × | | | २ | | | ० | | ३ | ४ |

इन धाक्षिण्यकार्यों के गीतों में बीसा कबित्व चाहे न हो जसा उपर्युक्त कवियों के पदों में परिमदित होता है, परन्तु दोनों की केन्द्रीय भावना एक ही है। यहाँ विचारणीय बात केवल इतनी ही है कि विभिन्न रागों के स्वरों से मन्थित होकर जब ऐसे गीत भी प्रभावपूर्ण हो जाते हैं जिनमें कबित्व प्रायः नहीं है तब उन पदों के स्वारस्य की वृद्धि में मत्ता क्या सम्बन्ध हो सकता है जो गीति काव्योपयोगी धाक्षिण्यपूर्ण कबित्व की जास्ता से पहले से ही सम्बन्ध है।

रीतिकामीन शिल्पक कवियों की वादी धारणा इष्टदेव की दिव्य रस-सीता में बड़ी सम्मयता से रही थी। राधा-कृष्ण के ऐकान्तिक विहार रस का आस्वादन ही उनका चरम लक्ष्य था। फलतः दिव्य शृङ्गार रस (माधुर्य-भाव) की उपासना में सबकीन होकर उन्होंने जिन पदों की रचना की उनमें भावोन्मेष की सचाई तो है ही सांगीतिक तत्त्वों का भी साधित्य समावेश है क्योंकि मन्दिरो में प्रतिष्ठित विग्रह के सम्मुख गाने के लिए ही इन पदों की रचना हुई थी।

विषय की दृष्टि से इन पदों में या तो मन्दिरो में होने वाले महोत्सवों का तथा राधा-कृष्ण की दिव्य शृङ्गार सीता का वर्णन है या फिर इनका सम्बन्ध अष्टयाम सेवा से है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित पद लिया जा सकता है, इसमें भोजनोपरान्त पान पिमाने का उल्लेख है

श्री भानन्दीबाई जी

पर

राग सोरठ

हो प्रिय बीरी बनाय लषाबै ।

कर में भीनी कंचन चारी रमक भमक दत धाव ।

निधीय मूरठ समै रस भोजन भर रव मै रण बड़ाई ॥

मैन कपोस बुधि मुसबाने मुकि धपर मुपा मगु प्याबै ।

चारी भानन्दी हित प्रिय परि हंसि मीठी ताज मुसाबै ॥१

इस पद के भाव को धीर भी समझसकती बनाने के लिए यहाँ सोरठ राग की सहायता ली गयी है। यमात्र ठाठ से उत्पन्न होने वाला यह राग धरने लम प्राकृतिक राव देस व बहुत मिलाता-जुसता है तथा उसी की तरह रात्रिनेय थी

है मठ पर की सुवीच पत्ति में धाने वाला राष्ट्र 'निवीच' राग-समय की दृष्टि से सार्बक हो जाता है। सोरठ राग का मादस्वरूप यह है

सा ५५५ ^{मरे} ^{मरे} ५५म प म प नि ५५ सा रें नि च प ५५५ प ५
म ५५रे, रे ५ प ५५म ५ रे ५५ सा ।

सोरठ के इन रागवाचक स्वरों के उच्चारण—विरोपठ मध्यम से रिपम तक की मीढ़—से एक ऐसा स्निग्ध बाठावरण उत्पन्न हो जाता है जो शृङ्गार रसात्मक पीठों के लिए घठीक समुहूल होता है। मठ उपर्युक्त शृङ्गारिक पर के लिए सोरठ जैसे राग का जपन सांघीतिक दृष्टि से सजया उचित है। निरूपण ही सोरठ के स्वरों में इस पर के भाव को भूतिमान कर देने की पूर्ण क्षमता है।

निम्नलिखित बरों में भी राग-जपन मावानुष्य हुआ है। इनमें से प्रथम पर में रागा-रूप्य को प्रात-काम के समय जगाने की उत्कण्ठ का वर्णन है, दूसरे में रागा-रूप्य सारंकासीन बन-भी देखते हुए दृष्टिपथ होय है तथा तीसरे और चौथे में वे रागन के लिए उद्यत हैं

राग भैरों

महा पी रूप सहैसिनु कल न परत है ठकठ छठ निधि संत ।
जगी विचयम तन पर भूपम सावति है मुपनत ॥
मन्धिर तसप जाइ जगी रणप्रति जुमल बबानन हिय हुनसंत ॥
बुधाननहित दुपम बोहनी छवि नौ करारति पीड़े सधि राधाकृत ॥१

राग धौरी

सौम पूनी उतहि इतहि कानन बिप्यी मनहु अनुगम रैनी रंवे बलि ठक ।
दिबावति प्रिया नौ मान काबिह महा धापन हिय जब होत धानन्य मरु ॥
तुम जु धापय धावौहीन-समयो जु यह प्रम पावन वियो सम्यो धोमा जु भरु ।
हंस कितकार कैयो सु कोकिलन है हमजा ठौर पंछी बसनु बरि इन ॥

पुमिन प्रति रम्य करै बकिन बित वृत्त की धीर उपमा नहि बनत कुजी बु बर
 वृन्दावनहितक्य मनत मुरसी भरन नित नये रंग बरनी महा मनोहर ॥१

राग धंभाच

संक्षिपां धीर पुमाई है ।
 सभी द्यवत ही सब ही पलकनि माहि समाई है ॥
 प्रीतम सी बतरान साइ भरि भूमि बु धाई हैं ॥
 वृन्दावन हित रूप बोट तुमि करन छिछाई हैं ॥२

सैन मन्दिर की बबनी है ।
 भूमति भुक्ति प्रिया प्रीतम के संघ गवबनी है ॥
 किशो सोमा की बटा धाबु इहि राजति प्रबनी है ॥
 वृन्दावन हित क्य रंग रघ बरपनि कमनी है ॥३

काव्य की दृष्टि से उपर्युक्त पद्यों के भावों में चाहे सभी को समान रूप से लभ्य कर देने की क्षमता न हो परन्तु सम्प्रदाय विशेष (राधा-वन्दन सम्प्रदाय) के भक्तों के लिए तो इन पद्यों में निश्चय ही आकर्षक बिद्यमान है।

यदि संगीत की दृष्टि से इन पद्यों को परखा जाय तो चारों ही पद्यों में राग का जयम युक्तियुक्त विद्यामी होगा। प्रथम पद 'भैरव राग में है तथा दूसरा 'मौरी' में। शास्त्रीय दृष्टि से ये दोनों ही सन्धि प्रकाश राग हैं। सन्धि प्रकाश राग प्रातःकाल एवं सायंकाल में चार बजे से सात बजे के बीच में गाये जाते हैं। प्रातःकाल और सायंकाल के समय दिन रात की उत्तम सन्धि होती है, किन्तु प्रातःकालीन आवावरण में यदि एत प्रकार का उन्माद्य बिद्यमान रहता है तो सायंकाल में उमकी अवह किञ्चित् भवसाह सा छा जाता है। इसी प्रकार प्रातःकालीन सन्धिप्रकाश रागों की प्रकृति भी सायंकालीन सन्धिप्रकाश रागों से भिन्न होती है। इस भेद को स्पष्ट करन के लिए प्रायः प्रातःकालीन सन्धिप्रकाश रागों में उत्तरांचल प्रबल रखते हुए कुछ मध्यम का प्रयोग किया जाता है और सायंकालीन रागों में प्रबल पूर्वांचल के साथ तीव्र मध्यम प्रयुक्त

१ 'धी सप्तयाम' पृष्ठ-४६

२ 'धी सप्तयाम' पृष्ठ-७४ ७५

३ 'धी सप्तयाम' पृष्ठ-७५

होता है। प्रातः क्रमशः प्रत्युप और प्रबोधकाम से सम्बन्धित उपर्युक्त प्रथम और द्वितीय पद के लिए प्रातःकालीन सन्धिप्रकाश राम 'नैरव' और सायंकालीन सन्धिप्रकाश राम 'गौरी' का चयन पूर्वोक्त शास्त्र-सम्मत है। नैरव के कुछ मध्यम के स्थान पर तीव्र मध्यम का प्रयोग करण ही पौरी-ठाठ बन जाता है। १ अस्तु प्रथम पद में निरिष्ट नरव राम का नादस्वरूप यह है

सा रे ऽऽ सा नि (सा) नि ऽऽ नि सा ष नि सा रे ऽऽ
 य म ऽऽ म (म) रे ऽऽ सा । नि सा ष म प म म प म म नि ष
 ऽऽ ऽऽ ष ष ष म प म म य म प ग म ष ऽऽ नि सा सा रे सा
 नि सा रे रे सा नि (सा) ष ऽऽ ष ष प म प म म
 म (म) रे ऽऽ सा ।

इस नादस्वरूप में मध्यम स कोमल रिषम तक्र की मीढ़ बड़ी मार्मिक है। मध्य स्वर समुदायों के साथ यह मीढ़ प्रातःकाल की मूचना ठो होती ही है साथ

१ पौरी का यह स्वरूप प्राचार्य मातङ्गजी की मत्त पर प्राप्त है। इसे पहूँनि पूर्वा ठाठ का सायंकालीन सन्धिप्रकाश राम माना है।

(इच्छय्य प्राचार्य मातङ्गजी द्वारा 'हिन्दुस्थानी संगीत-पद्धति क्रमिक पुस्तक-मालिका' चौथी भाग प्रथम संस्करण पृष्ठ-३६३) नैरव ठाठ के अन्तमल प्रातर्योप गौरी के एक अन्य प्रकार का भी जूहूँनि उल्लेख किया है जो पूर्वा ठाठ के इस प्रकार विरोध से भिन्न है। (इच्छय्य वही पृष्ठ-३६२)

श्री पटवर्धन जो ने पूर्वा ठाठ की गौरी को भी स्वीकार करते हुए इस राम के एक अन्य प्रकार की विवेचना की है जो नैरव अथ पर प्राप्त है। (इच्छय्य 'राम विज्ञान चौथी भाग, पृष्ठ-२३०)

श्री कृष्ण राव भी ने 'शास्त्र प्रवेष्ट' दूसरे भाग के पृष्ठ-३८ पर अत्रि गौरी राम की विवेचना की है वह बारी, संबाही स्वरों के भेद से 'राम विज्ञान' में वर्णित गौरी से पृथक है।

ही मीठ के भावानुसार कण्ठस्वर-मार्दन से मुक्त होकर कभी कतक तो कभी विह्वलता प्रकटा उत्कृष्टा को भी व्यक्त करने में समर्थ हो सकती है। पद भैरव के स्वरों से समवेत होकर पद की प्रथम पंक्ति में बाध सा गयी है। कम न परत' में जो बेबीनी है तथा 'तकत रहत निधि अन्त' में धीमे ही रात्रि क प्रवसान होने की जो सूचना है प्रकटा अर्थात् स्वतः बाध जाने का जो भाव प्रकट हो रहा है वह भी भैरव राग के मान-समय की दृष्टि से ठीक है। यदि पूरे पद पर विचार किया जाय तो उसका केन्द्रीय भाव यही है कि रात्रि-दृष्टि कब जागें और कब हम उनका दर्शन करें। रात्रि का अन्त निकट होने से सखियों को उनके धीमे ही जागने की आशा भी है। अतः प्रातःकालीन उत्साहपूर्वक आवाहन और भैरव राग की प्रकृति से उनकी मन-स्थिति का आवाह्य भी सहज ही स्थापित हो जाता है।

दूसरा पद गीरी राग में है। इस राग के तीन चार प्रकार उपलब्ध हैं अतः मूल पद की स्वरनिधि के समान में यह विविध रूप से नहीं कहा जा सकता है कि पद-रचयिता को गीरी का कौन सा प्रकार अभीष्ट है तथापि रिपम-धीमत्त कोमल तथा माग्यार मुद्र होने से इस राग के अधिकश प्रकारों का जो नावस्वरूप बनता है वह अपनी प्रकृति में कुछ अपनता और विविध सङ्गिता या प्रकृति का समाहित किसे रहता है। अतः अपनी विविध स्वर योजना के कारण यह राग एक ओर तो सन्धिप्रधान समय के अनुकूल बन जाता है दूसरी ओर कोमल भावनाओं की रचना को और भी तारक्य प्रदान करने में समर्थ हो जाता है। अस्तु सामंजस्य गीरी राग के स्वरों से मण्डित होने से उपर्युक्त पद की प्रथम पंक्ति 'सोम फूमी उतहि इतहि कानन दिप्यी' इत्यादि अतीव सजीव हो गयी है। १ इसके आगे पद में वर्णन भी प्रकृति को सामंजस्य सुपमा का ही है। यही नहीं पुनिगति अति रम्य करै

१ इस पद के रचयिता श्री हितबुम्हारन दास जी भी गीरी को सामंजस्य राग मानते हैं। प्रमाखस्वरूप उनके द्वारा रचित श्री अष्टवाम (प्रथम संस्करण पृष्ठ-३) से एक पद की निम्नलिखित वंशिका उद्धृत की जा सकती है जिसमें गीरी-नायक के समय (सामंजस्य) का वर्णन हुआ है :

'भीरी गाड रिभाबत सजनी तान अपुरब मुद कर उच्चरि ॥

अधिक स्वार बाबत रस भोगी इत भोजन उत सति गुण आवरि ॥

रजनी मुज मुज समधि हुंमत है परत बदन बिपु तें सु समी कर ॥'

बद्धि बिन बृत्तकीं जैसी राधाबली स प्रकृति के मायकामीन उस बातावरण का भी सलम ध्वनन हो जाता है जो प्रातःकालीन उस्तासूरित बातावरण की तुलना में क्रिचित्त धबसाधूर्ण होता है धत पर क मावानुबल राग का मह वयक भी इसाम्य है ।

ठीसरे धीर बीये पर में रक्षयिता न लमात्र (लमात्र) राग का प्रयोग क्रिया है । इस राग का नादस्वरूप यह है

सा न गमय सा ग म प ५ ५ म म नि सा ग म प म म ग म म
रे सा । नि सा ग म प म म म नि ध ५ ५ म प म ५ म ग म ग रे सा ।
सा न म प म ग ५ म नि ध ५ ५ म प म ५ म ग ध नि मा मा ५ नि ध
म प म म ग प ५ ५ ग म प रे सा । ग म ध नि सा ५ ५ नि सा
प नि सा रे (सा) नि ध सा नि ध म प म ५ म म ग रे सा ।

लमात्र राग के इन स्वरों में जिस नादमय बातावरण की सृष्टि होती है मधुमेन्द्रिय द्वारा उसे ध्यात्ममात्र करके मन कोमल भावानुभूति स इवित हो उठता है । इसी में जब शृङ्गारपरक या भक्तिपरक राध-बीजना भी मधुक्ल हा जाती है तब मायात्मक धमूर्ण सृष्टि धमिक मूढ धीर स्पष्ट होकर चित्त की धीर भी इवित कर देती है । यही कारण है कि तीसरे धीर बीये पर की कोमल भावनाओं के लिए भी हित कुम्दाबल बाध की में लमात्र राग को चुना है । इस राग के माने का समय भी राति का त्रितीय प्रहर है जो धयम क लिए बहुत उपयुक्त समय है धन एक धीर तो "वीजियां नीर घुमाई है" धयबा रायन मन्दिर की पक्षी है" जैसी पक्षियों की लमात्र राग की सृष्टि से धीनिय प्राप्त हो जाता है तथा दूसरी धीर 'कुम्दाबल हित रूप चोट सुनि करन नितापी है' जैसी शृङ्गारपरक मनोरम बक्ति का लमात्र राग का हृदयहारी नादात्मक धाधार भी प्राप्त हो जाता है ।

इन बल कवियों ने विभिन्न जगहों क धबयन पर माने क लिए जो पर मिने उनमें भी उठका भावुक हृदय बड़ी लम्पटा म रमा है । इस प्रकार के प संभना में भी कम नहीं है । 'होरी बमारी क पर' धयबा 'बमन के पर' ही यह एकदिन जिये जायें ता मी-पचान नहीं हजारीं मुग्ध परों का संघर्ष तैयार हो नकता है । 'होरी बमारी' न बरों में न कृप पर मही उपस्थित है

श्री सहचरि सुख श्री महाराज कृत

राग गौरी

लय बाधरो लंद महर की बहुरि बन्धी होरी को छैस ।
 रोसठ टोकठ भूषट खोसठ भरि पिबकारी तकठ
 उरोत्रनि मोकूम श्री माई बसठ न वैस ॥
 छस सो मसल पुसात मुधि भरि निरसिख रूठ
 पुनि लाख न धावठ हिये मरठ होरी कै छैस ।
 कहिने कहा धोर छहचरि सुख मरठ मबास रूठ
 इव पाके धग धग जु कटीसी छैस ॥ १

गोस्वामी श्री कमलनेम जो महाराज कृत

राग गौरी

खेसठ फल नागरो नागर गावठ मधुर सुर सरस बमारि ।
 मुनि मुनि प्रसिनी धनि कुस कोकिल रही मौन सोषठ निरवारि ॥
 धपने धपनी स्वरनि मिलामे धाडध पाडध मेद बिचारि ।
 बैसैइ मधुरे बाजे बाजे बैसीये भाति बेति करठारि ॥
 बोधा बदन कपरि बदन पुनिन केवरी धर बसठार ।
 छिरकठ रंपनि हो हो बोसठ प्रम मयन तन मन न सम्हार ॥
 मद्मुत पैस मध्मो बमुना ठठ रंनि मई पुनिन छहित्ठ ड्रुम बार ।
 तसेई मीन बतान तन सोई तैसइ छुटि रहे उर हार ॥
 रग सैम छाड्यी सब सतिमनि मई परस्पर कमलनि मार ।
 सपरी सत्री मई प्यारी तन हा हा करी तब नर कुमार ॥
 तब प्यारी पकरे मगमोहन बैनी भूषि सुक्षिपी सिगार ।
 पीतांबर सिवी खौष नागरी भमिता भमित उड़ाई तार ॥
 छिर प्यारी पगिया छिर पारी गिय की श्रीम्वी तिय को सिगार ।
 धाकी भरि मुठिकाइ साडिनी मुडित बदन छवि की नहिगार ॥
 बाड्यी रग कझी गहि मई छवि पर बारी कोटि रतिमार ।
 वै थी कमल नेम द्वित बिहरठ संतठ थी बुम्बाधन मुलद बिहार ॥ २

१ 'शृङ्गार-रस-सागर, प्रथम खण्ड पृष्ठ-१६३

प्रकाशक और संप्रहर्ता बाबा तुलसीदास (दुम्बाधन)

२ वही पृष्ठ-१७२

रीतिक्रमसीन भीतिक्रम्य घोर सगीत

गोस्वामी श्री रूपलाल जी महाराज कृत

राग कापी

ललत पद्म मुहाग नरे अनुराग सा ।
 रूपति नित्य किशोर रसिक बड़ माग सों ॥
 ताल मृदंग जपग पण्ड बड़ बावही ।
 गुरमो बुनि मुनि भजन मन मन सावही ॥
 मुक्ति मुक्ति मुहुनि मुहुनि सहस्ररि गावही ।
 नाम लवती की प्रेम छपी दुसरावही ॥
 अपने अपने मेनि मिये गूह घोर हैं ।
 बपे मूर सममुख कष्ट कहनि मरोर त ॥
 बपसासी बमकाति बहू रिस बामिनी ।
 बेरि लिय बतव्याम किये बिल बामिनी ॥
 रंग भरी पिबकारी छूटति है हेम की ।
 बुरि मुरि भरति लभावति गारी प्रेम की ॥
 सोंचें भरी कमोरी बोरी सावही ।
 कुमकुम मेनि फुलेस मुलै सपटावही ॥
 लियो करपूर परगम भोरी भरि भरि तबी ।
 उड़वत घबौर गुनाल कहत हो हो सबै ॥
 भूमक है है नाचत हंसति लाङ्गल ।
 नेह भरे बिलबाद छोके बिल बाङ्गल ॥
 नील पीत पट गांठि जोरि ससिदा बई ।
 निरखि हंसति मुख मोरि रूप हित बनि गई ॥ १

श्री प्रेमदास जी महाराज कृत

राग काहरी

हाथी राधा माहन मध निचुंन में लेलन द्रम रंजीत ।
 कंचन मट बुध भरे भैन रंज बिल कटास भार
 पिबकारी सावन परम छबीले ।

वलय किङ्किणी बाजत तान मृदम फँसि रही घोमा

हसन घबीर उड़त तन सङ्ख बसीम ।

प्रमदासि हित कोक कमलि गुन मिली वनि भुज

मडमी मंडम सेज पै निरत रतीने ॥ १

उपरोक्त चारों ही पद शृङ्गारपरक हैं। होली का त्योहार कुछ है ही ऐसा रंगीला कि होली से सम्बन्धित रचनाओं में शृङ्गारिक बातों को बचाना बड़ा कठिन हो जाता है। फिर उपरोक्त पदों के रचयिता तो ये ही माधुर्य भाव के उपासक, अतः होली के उत्सव के वर्णन में भी उन्होंने खूब रस लिया है। इन चारों पदों में वैयक्तिकता इतनी तीव्र नहीं है जितना वर्णन का प्रासङ्गिक प्रयत्न है। इसका कारण यही है कि उत्सव का सम्बन्ध पूरे समाज से होता है किसी एक व्यक्ति से नहीं। फलतः सामूहिक गान के लिए उपयुगी उत्सवों से सम्बन्धित पदों में वैयक्तिकता की कमी और वर्णनात्मकता का प्राधान्य हो जाना स्वाभाविक ही है।

संगीत की दृष्टि से देखा जाय तो उपरोक्त पदों में से प्रथम दो का सम्बन्ध गीत राग से तीसरे का काफी से धीर बीजे का कानड़ा [कान्हारी] से है। काफी राग होली के लिए रुचिकर हो गया है और अधिकतर होलियाँ इसी राग में गाती हैं। किन्तु होली सम्बन्धी वर्णनों का किसी राग से सीधा सम्बन्ध नहीं जोड़ा जा सकता। मूलतः संगीत एक भावार्थक एवं ध्वनि परक मूटि है, अतः इसमें वर्णन की समता नहीं होती। हाँ यह प्रत्यक्ष है कि विभिन्न रागों के स्वर-विस्तार द्वारा भोज इषयाधीलता अथवा उस्तास विषाद इत्यादि का ऐसा ध्वनिपरक आभाकरण प्रत्यक्ष निर्मित हो सकता है जो अपने प्रकृति के अनुकूल गीतों को मर्मस्पर्शी बनाने में सक्षम होता है। फलतः जिन गीतों में वैयक्तिक साधारण अनुभूति की तीव्रता होती है उन्हें अपने भाव के अनुकूल राग से अनुकूल तारण्य प्राप्त हो पाता है, किन्तु जिन गीतों में वर्णनात्मकता का प्राधान्य होता है उनके लिए अनुकूल राग के गायन समय पर ध्यान रखने से प्रायः काम चल जाता है। जहाँ तक होली के त्योहार का प्रश्न है इसमें होली गाने का कोई एक निश्चित समय नहीं है। सोम प्रायः पापुन के पूरे महीने होली गाते हैं। धीरे-धीरे रात में जब उर्मप उठती है तभी गाने लगते हैं। यही कारण है कि नाचक बीरी कान्हड़ा पनाभी इत्यादि विभिन्न

मिस्र समय के प्रायः सभी रावों में बमार पाते हैं। 'धसीस' 'गारी' काही 'बना' 'नीय' इत्यादि पदों के लिए भी यही कहा जा सकता है। ये भी जिस समय पर गाये जान के लिए वनाये जाते हैं उसी समय के किसी राय में बाँध लिए जाते हैं अथ सांगीतिक दृष्टि से उपर्युक्त 'होरी'बमारी के चार पदों में से गौरी में बँधे हुए प्रथम दो पद सार्यकाल में चार बजे से साठ बजे के मीतर किसी भी समय गाये जा सकते हैं। कान्हड़ा में बँधे हुए पद को मध्यरात्रि के समय माना उचित होमा तथा काफ़ी में बँधे हुए पद को किसी भी समय पाया जा सकता है, क्योंकि काफ़ी यद्यपि मध्य रात्रियेय राय है तथापि इस राय में होमी सम्बन्धी पीठ अधिक होने के कारण इसे दिन या रात में किसी भी समय गा सेने की प्रथा बस निकली है।

होसी के विषय को लेकर इन मन्त्र कवियों ने कतिपय 'रसिये' भी लिखे। ऐसे पदों को 'होरी रसिया के पद' कहा जाता है। 'रसिया' बस्तुतः लोकगीत के अन्तर्गत आता है जिसकी अपनी निजी शैली और धुन होती है। इस धुन में बृम्बावती सारंग के स्वरों का हफका सा पुट होता है। बज में होनी क बिनो में तो 'रसिये' गाये ही जाते हैं अन्य मन्त्रपदों पर भी अनसाराधरण 'रसियों' द्वारा अपना मनोरंजन करते रहते हैं। होमी के उत्सव पर रामाङ्गण को भूला सुमाते समय भी होमी से सम्बन्धित कुछ पद गाये जाते हैं। इन्हें 'होरी बज के पद' कहा जाता है। इन दोनों प्रकार के पदों के उदाहरण ये हैं

श्री दयासखी जी कृत

होरी की रसिया

मनमोहन गिम्बार री तेरे जिन मनोने री ।
 सौँह बिबाम कहूँ हौँ तोसों पव जिन घरहि धनोने री ॥
 तू धसवेसी धान पाँव की धबड़ी धाई है गौने री ।
 मन मोहन तेरे हारे ठाढ़े, तू धसि बीटी है कौने री ॥
 होरी के बज बाजल पाये तू पहि बीटी है मीने री ।
 दया सखी या बज में बसि कँ नेम निमापी है कौने री ॥ १

१ 'शृङ्गार-रस-सागर' प्रथम खण्ड, पृष्ठ ३३८

प्रकाशक और संपादकता बाबा तुलसीदास (बृम्बावत)

गोस्वामी श्री रूपसास जी महाराज कृत

होरी डोल की पद

राग सारंग

डोल झूमत बंधति होरी रंग रझी ।

फग सुहाय भरे धनुरागनि धम धनंग मझी ॥

सतनि सतनि प्रति भलकत तन दुठि बाठ न बैन कझी ॥

जै श्री रूपसास हित सहचरि भुलबत प्रेम प्रवाह बझी ॥ १

इस मण्डल में बसन्त धीर वर्षाऋतु में जो उत्सव होते हैं उनमें भी भक्तों का उत्साह प्रायेण क साध समझ पड़ता है। मन्दिरों में भगवान् का शृङ्गार करके 'झोंकी बनायी जाती है और दूर-दूर से घाये हुए भक्तों की भीड़ से मन्दिरोँ के प्रांमक भर उठते हैं। ऐसे अवसरों पर ऋतुकामीन रागों में बँधे हुए सगुण पदों से बाठावरण धीर भी धानम्बम हो जाता है। उदाहरणार्थ बसन्ती राग के अनेक मुन्तर पदों में यह दो-तीन यहाँ उपस्थित है

श्री रसिक महाराज जी के पद

राग बसंत

राधे ठेरे तन बन बसंत घायी ॥

धायम धम धनंग निरपि धमिमन धनुराय बनायी ॥

बस्नी मुजा फयी उरजदि फल सुमनै हाँघ-बिलास ॥

बहै बिबिपि मागुत मुलराई बचन प्रकाशित स्वास ॥

रसिक बिहारी कहै प्यारी पू गितु बिमसै सधु पाइ ॥

जिमि भिमि भिम समत भत्र पर धामन्द कझी न बाइ ॥ २

श्री ललित मोहनो देव जी का पद

राग बसंत

बिहारी ठेरे बीना रूप भरे ।

निरपि निगपि प्यारी राधे को धनठ न बहूव टरे ॥

मुप की सार समूह किचोरी उर्मणि उर्मणि धकी भरे ।

ललित मोहनो की निज जीवन उर सौँ उरज घरे ॥ ३

१ वही पृष्ठ-१३२

२ शृङ्गार-रस-सागर पृष्ठ-१२

३ वही पृष्ठ-७०

श्री भगवत रसिक जो का पद

राय बसंत

नबस होऊ प्राय बसंत से फूले ।
 मोरी किछोरी के अंत विये भुज क्याम छिपे भुज भूसे ।
 सहज श्रृङ्गार मनय के अगनि सोहत पीत दुकूसे ।
 रय में रंय बढ़ावति नाइली नाम द्विबोले से भूसे ॥
 यह भुज निरय विखावत नागरी नाहु मये अतुकूसे ।
 भगवत रसिक विमोक्त यह छवि नैन कुरग से भूसे ॥ १

उपर्युक्त पदों की अर्थ-बोधना निश्चय ही सवीतोपयोगी है। प्रथम पद में अद्यपि सांस्कृतिक का भी समावेश है परन्तु प्रसाद भुज की कमी किसी भी पद में न होने से पदों के भाव समझने में कहीं व्याघात उपस्थित नहीं होता। पदों में श्रृङ्गारिक भावना को भी सामोमता है अतः इनमें गीतिकाव्यानुकूल भाव-सारस्य और भाषा का सारस्य आद्यन्त अनुस्यूत होने के कारण गीत रचना की दृष्टि से पद सुन्दर बन पड़े हैं।

उपर्युक्त तीनों ही पदों का राग-धीर्यक बसन्त है। शास्त्रीय सूक्ति से इससे याने का समय रात्रि का अन्तिम प्रहर है किन्तु ऋतुकालीन राग होने के कारण यह बसन्त ऋतु में किसी भी समय बाया जा सकता है। बसन्त राग के सम्बन्ध में वायकों में मतभेद भी है। कुछ लोग इसमें पञ्चम बजित करके तीस मध्यम और दोहों में बजत लगाकर पाते हैं तो कुछ लोग इसे पूर्वी अठ-अव्यंठार पञ्चम बारी और पञ्चम सबासीयुक्त सम्पूर्ण राग मानते हैं। समितांग इसकी एक सामिक विशेषता है। बसन्त का यही प्रकार प्रचलित भी प्रचलित है किन्तु जब शास्त्रीय संगीत के ज्ञाताओं में ही राग-स्वरूप के सम्बन्ध में मतभेद है तब इन भक्त संगीतजनों के राग-स्वरूप में यदि शास्त्रीय बुगबिन्दु का अभाव परिलक्षित हो तो आश्चर्य ही क्या? शास्त्रीय संगीत से भसीमूर्ति परिचित बिन लोगों के अन्तर्गत अन्वयन के अन्वयनों में होने वाले संगीत को अन्तः है, जगत् यह स्थिति नहीं है कि वहाँ के वायकों द्वारा व्यवहार होने वाले रागों का स्वरूप यथा-यथा उनके शास्त्र निर्दिष्ट मादस्वरूप से जोड़ा बहुत मिथ भी होता है। वहाँ के वायक यदि बसन्त राग के किसी शास्त्रीय प्रकार का व्यवहार करते हैं तो कभी उससे भिन्न स्वरूप भी अपना सते हैं। ऐसी स्थिति में पदों का अधिष्ठान 'बसन्त

के पद' इसी कारण होता है कि उनमें बसन्त ऋतु या बसन्त के उत्सव का वर्णन उपस्थित रहता है। वर्षा ऋतु में राधा-कृष्ण के भूमा भूमने से सम्बन्धित मन्हार राग में जो पद गाये जाते हैं उनके विषय में भी यही बात बही जा सकती है। मन्हार के भी अलग-अलग घाठ-रस प्रकार गायकों में प्रचलित हैं जिनमें से गौड़ मन्हार, मियाँ मन्हार और मूर मन्हार विशेष लोकप्रिय हैं। मन्हार के प्रकारों के अतिरिक्त सोरठ रस अययययन्ती जैसे रागों में भी धनक प्राप्ति प्तिकाएँ ऐसी मिल जाती हैं जिनके भीतर वर्षाऋतु सम्बन्धी हैं। ब्रज के भक्त गायक भी वर्षाऋतु अथवा हिङ्गोले के पदों को प्रायः मन्हार सोरठ रस जैसे रागों में ही गाते हैं परन्तु कभी-कभी वर्षा-वर्षण से सम्बन्धित किसी पद को सामान्यतः भी मन्हार का पद कह दिया जाता है और उसे किसी ऐसे गायक से मण्डित कर दिया जाता है जिसे मन्हार के किसी शास्त्रीय प्रकार में अथवा अययययन्ती रस सोरठ प्रभृति रागों के अन्तर्गत अस्मिन्नाय रूप से स्थान देने में सक्षम हो सकता है। वस्तुतः संगीत के सम्बन्ध में गायकों का जो दृष्टिकोण होता है उससे अर्थात् अलग दृष्टिकोण भक्त गायकों का होता है। संगीत गायक का साम्य है किन्तु भक्त के लिए वह उसकी साधना का अंग मात्र है। भक्त अपने पद के लिए सगीत से भावानुकूल अतिपरक वातावरण प्राप्त करके उत्पुष्ट हो सकता है किन्तु गायक अपने राग की सूक्ष्म भावार्थकता को कमारमक प्रभविष्णुता से मूर्तिमत्ता प्रदान करने के लिए ही पद या गीत का आचार कोचता है। वस्तुतः 'स्वर' और 'वर्ण' से विभूषित जो अति अन-मानस का मनोरंजन ही नहीं मनोरंजन करने में भी समर्थ है उसी का नाम संगीत है, यतः भक्त गायकों के पदों को यदि ऐसी अति अति अति आचार मिल जाता है तो उनके भावों के आरम्भ की अति अति निरर्थक ही हो जाती है। काम्य तथा सगीत का अति अति भी यही है।

वर्षाऋतु के उत्सव से सम्बन्धित कुछ पद ये हैं

श्री अनीठमी श्री (बलीठली श्री)

(राग-सोरठ)

हिङ्गोरे रंग रह्यो सरसाय ।

भूलनि मे भुक्ति भूमि रह्यो पिय प्यारी रूप सुमाय ।

भोजी तन तरवर बुरी माया यमबाही लपटाय

'रसिकविहारी' से भूलको मारा मन मा भोज्य ताय ॥१

श्री भगवतरसिक जो

(राग-मत्तार)

ललना साध हिंडोरे मूर्ख ।

भावन में मनभावन मन की मन भावन करि भूल ॥

बीरद नबल नाहु उर ऊपर बामिनि मामिनि मूर्ख ।

भगवतरसिक मुत्तावत गावत यहि डाडी मुजमूर्ख ॥१

रीतिकाल में जो भक्त-नायक हुए उमम से कुछ तो ऐसे हैं जिनमें कबित्व प्रबिक है और कुछ ऐसे जिनकी रचनाओं में संगीतात्मकता प्रबिक है। कबित्व के उत्कर्ष के साथ वहाँ भाषा भी विकसित होने लगती हो वहाँ संगीतात्मकता कम होने लगती है क्योंकि भाषा के काठिन्य के परिणामस्वरूप रचना में जो बुरकूटा या बाती है उसके कारण पदों या पौठों की बाधगम्यता में बुरापात उपस्थित होने लगता है। उदाहरणार्थ श्री कियोर राम जी का यह पद दिया जा सकता है

(राग-केवारी । शीपक बिहार)

निरखि सम्पति परम प्रेम की मामिनी ।

सकल सम्पति मई उचित प्रह्लाद भगिनीप रचना करत कज बन मामिनी ॥

जगत रस उचित लजलजित प्रति भ्रमरत लकलजित बस्ती कुमुमकलित अभिरामिनी

तरुपतनु तूल बल ठील धानुरप्रमित प्रनन मनमदन लज बदन मिलि मामिनी ॥

कन मनमदन मिलि निरख हुरपि हुरत जसो मिमी रसरत मनोमल पत्रमामिनी

राय रागिनि रंकी बरसि दुग जगमनी बासकैचोर सब सुयग मुनि स्वामिनी ॥२

यह पद राधा-कृष्ण के शीपक-बिहार से सम्बन्धित है। इस पद के लिए 'केवारी' राग का चयन भी पदावलीय है क्योंकि एक ही कदर के पाल का समय रात्रि का प्रथम प्रहर है इससे 'नगीत-वर्षम' में इस शीपक राय की रागिनी भी माना गया है ३ पद राधा-कृष्ण के शीपक-बिहार से सम्बन्धित पद के

१ वही पृष्ठ-११२

२ वही, पृष्ठ-११०

३ 'केवारीका शीपकरागिनीयम्' ॥

लिए केदार के निर्देश को और भी बल मिल जाता है। कबित्व की दृष्टि से भी यह पद प्रसन्ननीय है। अनुप्राससहित कोमलकान्त पदावली तथा संस्कृतनिष्ठ ब्रजभाषा से यह रचयिता का भाषा पर पूर्ण अधिकार प्रमाणित हो जाता है। फिर भी इस पद में भाषागत यह शारङ्गता ही है जिसकी गीतिकाव्य में अनिर्वाय घामरसकता हुआ करती है। केदार राग में गाये जाने पर भी सामान्य श्रोताओं के लिए इसका अर्थ समझना कुछ कठिन ही होगा और जिस पद का अर्थ ही श्रोताओं को सरलता से समझ में नहीं आ सकता उसके गाये जाने पर वे एक सीमा तक ही उसमें रस ले सकते हैं। श्री रसिकगोविन्द भी ने जो स्तुतियाँ लिखी हैं उनमें भी उष्ण कौटिक के कबित्व और भाषा पर उनके प्रसाधारण अधिकार के दर्शन होते हैं परन्तु भाषा की क्लिष्टता के कारण उनकी रचनाओं में संदीप्तारसकता कुछ कम भी हो गयी है। उदाहरणार्थ यह स्तुति द्रष्टव्य है

श्री रसिक गोविन्द जी

श्री राधारमल-अपति

अपति राधारमल मुञ्जमवन तुलरमन घमम ऐस्वर्य सक्लेष बाभी
 अपति ब्रजराज सुत महाधर्ममुतयते अपति परब्रह्म सब संतर्पणामी।
 अपति घममार जय बकीसंहार जय कंसमलहसन मुबमार-हारी,
 जय मधोबाभुवन सञ्जिवानरचन कोप योनेष नमराजघारी।
 अपति सुरराज-मद-नूर बंधीबर अपति योविन्द धानवकन्द
 अपति जय मोहितान महाराजराज मङ्गलगुण-निकर अस्तबर्ह।
 अपति बनस्पाम धनिराम छविनाम मोहित समित काम जय महोदार
 अपति पदपीनवर मुकटपर मासपर अपति कटि किङ्किणी कटनघारं।
 अपति कैमूरपर मुखिकाकल्पसब अपति जय मकर कुण्डलचरन जय
 अपति मोत्रीपरन दिम्पयोठीपरन हरन-नन नवत-नूपुर-चरन जय। १

इस स्तुति की संस्कृतनिष्ठ शब्द-योजना से 'वित्तम पत्रिका' में भी हुई

सकम्प स्तुति १ थी राम स्तुति २ इत्यादि का स्मरण हो जाता है किन्तु जैसे तुलसी के सरस पदों को ही कोम अथिक गाते हैं उसी प्रकार रीतिकामीन पर साहित्य की भी ऐसी ही रचनाएँ अथिक संवीतोपयोगी हैं जो अनेकाकृत सरस हैं तथापि इस सम्बन्ध में यदि रचयिता को दृष्टि से विचार किया जाय तो पदों में जसक व्यतिरिक्त की छाप पड़ना सर्वथा स्वाभाविक है। बिन सेबका का साहित्यिक ज्ञान समुपगत होता है जमकी रचनाओं में कबित्व का उत्कर्ष सहज ही हो जाता है। रीतिकामीन कवियों में माया के परिष्कार और अलंकरण की जो प्रवृत्ति जाय उठी थी उसने पद-लेखकों को भी न्यूनाधिक रूप में प्रभावित किया ही था। प्रत्यय-हेतु निम्नस्य उदाहरण इष्टव्य है।

श्री भगवत रसिक

(राम रामकली)

मेरे प्राग्गत स्वामिनि क्याम राधे ।

एक-रस-रूप सम-सँस कारिज-अरुम छक रहें प्रेम यह भैम छाबै ॥

कण्ठ कनि बिपरीत परस्पर दिङ्कर महि जात कहूँ पतक भाषै ।

नैन की सैनवर बँन 'अ-वसरसिक' बैत मुख सेत सहचरि धमाबै ॥३॥

१ इष्टव्य

राम पनाधी

जयति लक्ष्मणनारुत भयबंत भूमर भुजगराज भुजनेस भुमारहायी ।

प्रसै-बाबक-महाश्यालमाला-बभन, समन-संताप, लोलावतारी ।

श्री विद्योगी हरि कृत 'बिनय-वचिका' की टीका

(तृतीय संगोपित संस्करण) पृष्ठ-१३२

२ इष्टव्य

श्री राम-स्तुति

जयति लक्ष्मणभ्यापकाजन्म यद्, बहू विपह-व्यक्त लोलावतारी ।

बिबल बह्यादि मुर निद्र संकोचवत बिबल गुन-नेहू नर-नेहूमाती ।

श्री विद्योगी हरि कृत 'बिनय-वचिका' की टीका

(तृतीय संगोपित संस्करण) पृष्ठ-१४२

३ 'श्री निम्बार्क नाट्यो', पृष्ठ-३६१

(राग बिलावल)

है वामिनि के बीच में बन एक बिराई
 रूप धनुषम धनुषुत भावुरी छविछाई ।
 इन्द्रधनुष नहीं देखिये बनपातिन भाई
 मंद-मंद भुवुधोर सों मुर छम्बन माई ॥
 उमड़ि बुमड़िबरपाकरैमिलि स्थाठिसमाई
 मयवत' प्राणपपीहरा पोपत मुख छाई ॥१

श्री मरहुरि बेष जी

(राग वैशर्गाधार)

प्रिया पिय मुरति-सेज उठि जागे ।
 भूमत नैन धरुन धमसाने मनहु लपर सर भागे ॥
 छिबिरे धंग छूटी तिर धमकें बदन स्नेह कन लागे ।
 मानहु बिधि कृमुमन कर पुम्बी धंग धंग धनुरागे ॥
 किनी परस्पर ब्रीड़त बोऊ प्रेमकेलि रन पागे ।
 'मरहुरिबास धंग छवि निरन्त धंग वीर सौं दागे ॥ २

उपर्युक्त पदों का साहित्यिक मूल्य निश्चय ही अधिक है। इनमें बनती हुई ब्रजभाषा नहीं साहित्यिक ब्रजभाषा प्रयुक्त हुई है। कवित्व की दृष्टि से भी यह सुन्दर है किन्तु काव्य के कलापरक उत्कर्ष को कविता में भेसा महत्त्व प्राप्त है वैसे गीतिकाव्य में नहीं। गीतिकाव्य की दृष्टि से पर-रचना में काव्य और संगीत का सुन्दर सम्बन्ध ही बांछनीय होता है। कवि और नायक दोनों ही का उद्देश्य व्यक्तिनिष्ठ भावनाओं को प्रास्तावनीय और सहृदय-संवेद्य बनाना है, यद्यपि गीतिकाव्य में यदि कवित्व का उत्कृष्ट भावव्यक्तता से अधिक हो जाता है तो गीतों की उस काव्य सरलता को धावात पहुँचने लगता है जिस पर उनकी सहज धारणीयता धावुत रहती है। इसी प्रकार गीतों में यदि सांगीतिक सम्बन्ध कवित्व का प्रतिबन्धन कर जाता है तब भी उनकी धारणा को उद्देश्य पहुँचने लगती है। श्रीमाम्बका गीतिकाव्य के अनेक पर-रचयिता ऐसे ही हैं जिनकी अधिकतर

रचनाओं में कवित्व की खासता गीतिकाम्याभित्त मर्यादा तक ही सीमित रहे हैं। इस कथन की पुष्टि के लिए निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य हैं

श्री भगवत रसिक श्री

(राज तोरड)

प्यारी पू ! की सहज प्रकृत्य बोलनि ।
 हो पिय ! तुम उर बसी कौन तिय ? पहिरे नीम-निबोलनि ॥
 हमहुँ ते गुन-रूप-प्रागरी पाई कहीं बिन मोलनि ?
 बड़े-बड़े नैन धरन कजरारे बिधुरी धनक कपोलनि ॥
 यम-जल-बूँद मनोहर मुखपर मसत उरज नखछोलनि ।
 उमंगि-उमंगि सम्मुख प्रारत मन भावत करत कलोलनि ॥
 रति क बिन्दू देखियत धन-धन रजित धरत तमोलनि ।
 'भगवतरसिक' कही तुम बाँची नाहि करी धनबोलनि ॥ १

श्री बालवेलि धलि २

धरत

सीन्हें कर बीन समित साझिनी बपारै ।
 प्रेम पुमकि धय-धय दरस करन धति उमंग
 मधुर-मधुर ठान सगी कान सौं मुनारै ॥
 भीने पन बहन बोल कौनि बंद मंद होत
 भूपम बुधि धति उबोत उड़मन बमकारै ।
 धारस रस-मरे मयन छाई धनु मयन-मयन
 रैन की उनीर पमक भयकि-भयकि पाव ।
 'धनबेलि धलि उरति नाम मयी मनीरुप भास
 धर-धर हास बहन बासि में दुराग ॥ ३

१ 'श्री निम्बाक मापुरी', पृष्ठ-१६४

२ धनबेलि धलि विष्णु स्वामी संप्रदाय के धनुषादी श्री 'बंशी धलि' श्री के शिष्य थे। इनका कविता-काल विजय की अठारहवीं शताब्दी माना जाता है।

३ द्रष्टव्य श्री बियोपी हरि द्वारा सम्पादित 'ब्रजमापुरीशार' पृष्ठ-२०५ तथा प्राचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा 'द्वितीय-साहित्य का इतिहास' पृष्ठ-३२२ संस्करण संवत् १९९९

४ श्री बियोपीहरि द्वारा सम्पादित 'ब्रजमापुरीशार' (द्वितीय संस्करण) पृष्ठ-२११

श्री बनीठनी जी (बलीठली जी)

(सौरठ)

भाव बरहाने मंगल माई ।

कुंवरि लली को बनम भयो है बर-बर बजत बघाई ।

मोहित थीक पुचबो गाबो बैहु घधीघ मुझाई

'रसिकबिहारी' की बहु जीवनि प्रकट भई मुकराई । १

श्री नागरोदास जी

(राग-भासावरी)

सयन की पीर न जात भयी ।

राति सौत तनपठ ही कीरै पैन नहीं विष एकबरी ।

बिना मिलै बनरयाम बरम तन सपति बुझै ना जात सरी

गुनरिवा म्पाकुन बन-बीपिन टैण्ड डोलत हरी-हरी । २

श्री धामम्दघन^१ की कृत

होरी घमारि की बर

रसिक सैत नर को री नमनि में होरी खेसै ।

परि धनुराग कृष्टि विचकारी धानि घचानक मेसै ॥

सौर कहीं सौं बहो लली री सब बिधि करत भाबरी केसै ।

कसि भूमि रसिया धामंघ मन रिन्दे निजे रस भसै ॥ ४

ज्यपर्युक्त उद्धरणों में संनीत की कृष्टि से विशेष विचारणीय बात यह है कि श्री घमबत रसिक जो के पर में यदि मान की धमिम्बसित है तो श्री बनीठनी जी के पर का विषय 'कुंवरि लली के शय्य की बघाई है परन्तु विषय की कृष्टि से अन्तर होते हुए भी दोनों ही बरों में एक ही राग 'सौरठ' प्रयुक्त है । वहाँ

१ 'श्री निम्बार्क मापुरी' पृष्ठ-६०१

२ वही पृष्ठ-६२३

३ श्री विद्योपी हरि ने 'ब्रह्ममापुरीसार' (द्वितीय संस्करण) पृष्ठ-१७४ पर तथा आचार्य दुबल ने 'द्वितीय-साहित्य का इतिहास पृष्ठ-१६८ पर धामंघन जी को निम्बार्क सम्प्रदाय का अनुयायी माना है ।

४ 'शुक्लार-रस-सागर' पृष्ठ-२४६

यह प्रश्न स्वाभाविक ही है कि क्या 'सोरठ' ऐसा राम नहीं है जो किसी भावना विशेष या रस विशेष के लिए अधिक अनुकूल माना जा सके ? इस प्रश्न का उत्तर यही है कि मित्र-मित्र अभिव्यक्तियों के लिए एक ही राग का प्रयोग कुछतः मायक की अपेक्षा रक्षता है। गीत के भावानुसार राम के स्वरों में बिह्वलता भोज उत्साह मार्दव इत्यादि का समावेश मायक की कष्ट-साधना पर निर्भर होता है। संगीत की पारिभाषिक शब्दावली में इसी का नाम काकु प्रयोग है। उदात्त धम्यास द्वारा ही गायक ऐसे प्रयोगों में रक्ष हो पाता है। रीति कालीन यह रचयिताओं का मानस माधुर्य-भाव के ध्यान में निमग्न या तथा उनके हृदय का यही ध्यान उनके पदों में सर्वात्म्य अभिव्यक्ति बनकर फूट पड़ा था। धारणा का बीजा सम्बन्ध सरीर से है संगीत का बहुत कुछ बीजा ही सम्बन्ध इन मन्त्र कवियों की रचनाओं से है। यही कारण है कि इन रचनाओं में प्राणों की चेतना की बीजिता समिद्ध है। संगीत के अपने स्वर ध्वनि धर्म की मायिकता स्वयमेव ही स्पष्ट कर देते हैं। धर्म-बोध कराने के लिए उन्हें काव्य-कला के समान शब्दों की अभिव्यक्ति आवश्यकता नहीं होती घोर जब उन्हें कविता का धारणा भी प्राप्त हो जाता है तब तो स्वरों की सुकुमार अभिव्यक्ति भावनाओं को घोर भी अधिक प्रबलता प्रदान कर उठती है।

अन्तु, धमी एक प्रभावशाली रीतिकालीन कृष्णमन्त्र कवियों का ही उल्लेख हुआ है। किन्तु राम-मन्त्र कवियों का भी इस युग में एकान्त प्रभाव न था फिर भी रचना-परिमाण की दृष्टि से रीतिकाल में कृष्ण भक्ति-परक पद-साहित्य जितना सिखा गया उतना राम भक्ति सम्बन्धी नहीं। इसका कारण रीति कालीन मायिकता घोर भक्ति का विशिष्ट स्वरूप है। धारमन्त्र का सम्बन्ध प्रदान करने वाला धर्म का वह स्वरूप जो स्वल्प नैतिक धारणा पर धर्ममन्त्रित रहा करता है। इस युग में तिरोहित हो गया था। रीतिकालीन युग-धर्म न जिस शृङ्गारिकता का धारणा लिया था उसी का एक धर्म भक्ति भी बन गयी थी अतः यह युग कृष्ण भक्ति के प्रचार के लिए जितना अनुकूल था उतना राम भक्ति के लिए नहीं। रीतिकाल के पूर्व भक्तिकाल में मूर गन्धर्व्य धारि कृष्ण भक्त कवियों ने जो पर लिखे उनमें किसी सीमा तक शृङ्गारिकता भी समाहित थी किन्तु तुलसी ने मर्यादा पुरुषोत्तम राम की जिस भक्ति को जनता के समक्ष उपस्थित किया उसमें भक्तान् का लोकमार्गसंकायी स्वरूप ही विप्लव था अतः भक्तिकाल के धर्मज्ञान के परवान् पर्याप्त समय तक राम भक्ति के इस स्वरूप में परिवर्तन उपस्थित करने का किसी को साहस न हुआ। यद्यपि

तुलसी की 'गीतावली' में भी बसन्तोत्सव जैसे प्रसंगों में बोड़ी की श्रृङ्गारिकता पा गयी थी । परन्तु सीता राम की तुलना में राधा-कृष्ण की मन्त्रि का स्वस्व ही कुछ ऐसा है जिसमें रसिकता सहज ही समाविष्ट हो जाती है, यद्यपि कालीन मन्त्रों को कृष्ण मन्त्र के रूप में एक ऐसा मनोवैज्ञानिक आधार उपलब्ध हो गया जिसका व्यवसाय ग्रहण करके वे धर्मिकता से बचे रहने का बहाना ढूँढते हुए सहज ही अपनी मनोवृत्ति के अनुकूल वाचिकता का प्रयोग करते थे । यही कारण है कि इस युग में कृष्ण मन्त्र का ही अधिक प्रचार रहा तथापि महाराजा विश्वनाथ सिंह, प्रताप कुंवर, तुलसीदास विनोद राम व्यास त्रिपाठी स्वयं सबे इत्यादि के पर इस उद्यम के साक्षी हैं कि रीति काल में राम-भक्ति-द्वारा संकुचित भवे ही हो गयी हो सूची न थी । जवाहरलाल के पर इष्टम्भ है

महाराजा विश्वनाथ सिंह

उठी कुंवर होइ प्राज्ञ विद्यारे ।

हिमरितु प्रातः पाय सब मिटिने नमसर पसरे पुहकर तारे ॥

जयजग मंह निकस्यो हरपित हिम बिचरण हेतु बिबस मनिवारे ।

विश्वनाथ यह कीतुक निरखहु रविमनि बसहु बिसिनि उजियारे ॥ २

प्रताप कुंवर

होरी खेलन की सतभारी ।

नर ठन पाय घरे भवि हरि को मास एक दिन चारी

घरे धन चत घनारी ।

ज्ञान गुणान धबीर प्रम करि प्रीत तपी विचकारी ।

मास जनास राम रंज भर घर सुरत सरी री नारी ॥

खेल इन संम रवा री

१

१ इष्टम्भ—तुलसी द्वारा गीतावली उत्तर काण्ड पर-संख्या, ०२

पृष्ठ—४२३, ४२६ प्रथम संस्करण (गीतावेस, गौरखपुर)

२ इष्टम्भ—शास्त्री रामचन्द्र भुक्त द्वारा 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास'

पृष्ठ ३७६ संस्करण सन् १९२६

३ डा. साहिबी सिन्हा द्वारा 'मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रीयां'

(प्रथम संस्करण) पृष्ठ—२१०

तुलछराम

सीताराम भी से बेमू मैं होरी । भर भूँ गुनाम की भारी ॥
 सबकर भाई बनक किहोरी । बहु बंभुन की बोरी ॥
 भीठे बोल सिपावर बोसत । सब सखियन की ठोरी ॥
 हंसि हर सु कर बोरी ॥१

× × ×

सिपावर दयाम लये मोय प्यारे हैं ।

श्रीष्ट मुहुष्ट मकराङ्गुल कृष्ण भाल ठिगक मुसकारी है ।
 मुस की घोमा कहा बहु उम्फी कोटि बर उम्पारी है ।
 गल बिच कंठी है रतनारो बनमामा उरवारी है ।
 केसरियो जानो बरकस को रुपयो सात सप्यारी है ।
 पीठाम्बर पट कटि पर सोहे, पायल मन्डर स्यारी है ।
 तुलछराम कहे मो हिरदब बिच धाप बसो बनुवारी है ॥ २

बिनकर

पद

बुरि करो गुमराई, बाबा

देही बाव स कछ नाहि काम पण्डी है गरिबाई ।
 बुरे फेन से फोउ न थोये बम की बुरी बखसाई ।
 कह बिनकर पक राम मजन बिन मूठ्री सब बनुराई । ३

राम बयाल तिवारी

कजु राम नाम राम नाम राधा ।

राम-नाम बैर-मूल इनक नाहि और तुम
 मजत नसत विविध मूल छूटत मब प्रामा ॥१॥
 राम-नाम विमल नीर, संयम सत्सग ठीर,
 मज्जत निमल घरीर पावन तिव बामा ॥२॥

१ बहूँ, पृष्ठ-२१२

२ बहूँ पृष्ठ-२३०

३ 'मिथबन्धु-विनोद' (लेखक मिथबन्धु) अनुर्य भाग (अधम संस्करण)
 पृष्ठ-१०

राम-नाम क्यम-दूत संतन-मम प्रमर-बूल
 पीवत रस भूमि-भूमि समुत्त मनुपामा ॥३॥
 राम-नाम निराकार, राम धाम नमस्कार,
 बीबी हरि भक्ति सार, पय पल मर रामा ॥४॥ १

दयाम सखे

संक्षिप्त मारें छवि काम ।

बिभिकट बुबुकट मूर्ख बचानत कोई सारिपम मति ठान
 कोई पद बचत सेत बिबावत कोई कर रति उत्पाम कोई धम पछि ठग माय ।
 रसिकन हित पिय करत रहस रस पूरन रस सिगार ।

यह रस जान धंनु सनकादिक छिन्न पिय राम बिहार । २

× × ×

पनिपट पर हुमको मोहि मई बखरप के प्यारे साबरिया ।
 जल मरत मरत कटि करकि मई सरैखत सारी सारकि गई निरखत छवि ।
 बूबट बबरि मई चित बचल प्यो मई बाबरिया ।

किर संमरत भीर धरि छोड़ बड़ा मन मोहन बालन नबर पड़ा ।

दूग सामत बौगुल बाह बड़ा मुनि भूमि मई नर गाबरिया ।

धरि बीब मई पिय पीठ पटा मामो बामिमि के संग मेव बटा ।

बिनु मोस बिकी हुम दयाम सखे पिय के संग बीमहीं भाबरिया । ३

अपर्युक्त पदों में भी सामान्यतः वही ही जाबलाधों की अभिव्यक्ति हुई है
 वैसे रीतिकामीन कृष्ण भक्ति-शाखा के कवियों में परिमलित होती है । दयाम
 सखे की पदावली में तो माधुर्योपासना का स्वर ही रीतियुगीन रसिक भक्तों
 जैसा ही है । वस्तुतः रीतिकाल के समाप्त होते-न-होते राम भक्ति पर भी कृष्ण
 भक्ति-शाखा का पर्याप्त प्रभाव पड़ गया था । धनै-धनै यह मनोवृत्ति इतनी
 बढ़ गयी कि राम भक्त कवि राम को कृष्ण से भी कहीं अधिक बिसाह-झीड़ा
 प्रवीण सिद्ध करने में प्रयत्नशील हो उठे । ४ वस्तुतः अपने समग्र रूप में रीति

१ वही पृष्ठ-८२

२ श्री मुबनेजर नाथ मिश्र 'माधव' कृत 'राम-भक्ति-साहित्य में मधुर
 उपासना' (प्रथम संस्करण बिहार-राष्ट्रभाषा बरिषर परना) पृष्ठ-३७१

३ वही पृष्ठ-३७०

दृष्टव्य-शाधर्म रामचन्द्र मुनल कृत 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास'
 पृष्ठ १७१ १७३ संस्करण संवत् १९६६

शास्त्रीय पद-साहित्य भयवत् प्रेम की भोकोत्तर शृङ्गारिक छटा से समुप्राणित और युद्ध तथा युद्ध भक्ति का व्यंग्यक है। ये कवि अपने ही भाव में ऐसे निमग्न थे कि सामान्य लोगों पर उनकी शृङ्गारिक रक्तियों का क्या प्रभाव पड़ेगा इसकी उन्हें चिन्ता न होती थी। तथापि इसमें सर्व्वेह नहीं कि इन कवियों के काव्य की आत्मा संगीत रही है। संगीत में निमग्न होकर ही वे भाव-व्यञ्जना करते थे, घट उन्हें काव्य करना नहीं पड़ता था वह स्वतः उद्भूत होता था। वस्तुतः मही वह स्वस है जहाँ काव्य संगीत के साथ एकाकार हो जाता है। अपने मन्त्र हृत्प को और भी तन्मयता प्रदान करने के लिए ही ये कवि संगीत के स्वरों में तल्लीन हुए थे। वस्तुतः संगीत के प्रत्येक स्वर का एक निश्चित भाव रूप धारण करनेवाला होता है। उदाहरणार्थ रिपम की प्रकृति यदि पठकम से युक्त है तो गान्धार और निषाद की प्रकृति शृङ्गारिक एक रूपक है। मध्यम की प्रकृति शान्त-यन्मीर है तो पञ्चम अपने भाव में उन्मत्त को प्रभावित करेगा है। शैवत मय और उद्यता का उन्मत्त करता है। किन्तु स्वरों की इन आत्मा के बर्तन किसी विरसे उपलब्धी को ही होते हैं। स्वर्गीय पश्चित बिप्लु विगम्बर पसुस्कर की संगीत-साधना ऐसी ही थी। यही कारण था कि जब वे 'रघुपति राजव राजा राम को ही आकाश में बुलाना उद्यत थे तब स्त्री-पुत्र्य बालक-बृद्ध की भीड़ उनके स्वरों के प्रभाव से बिह्वल होकर उनकी पंक्ति को आवाज से बुझा उठती थी।

पद्य, ऐतिहासिक धरतों में भी स्वर की चोट का अनुभव किया था। उनकी प्रधान मन्त्र बाड़े संगीत-साधना में रखा हो परन्तु प्राचा हित कृत्यावन बाध धनबेनी प्रति भयवत् रसिक बनीठनी जो किछोरी बाध भी इत्यादि मन्त्र कवियों ने अपनी भक्तिपरक धर्मिभक्ति के लिए संगीत को प्रमुख साधन के रूप में प्रवर्धन करके किया था।

इन मन्त्र गायकों के प्रतिश्रित बनानन्द की रचनाएँ तो ऐतिहासिक गीतिकाव्य का शृङ्गार ही हैं। बनानन्द स्वतः उत्कृष्ट गायक भी थे और एक और तो उनकी मुक्तक रचनाओं में धार्तरिक संगीत काव्योचित प्रेमानुभूति और गेयत्व का समावेश हो गया था तथा दूसरी ओर पदों में भी संगीत से सम्बन्धित होकर उनका हृदय लिपटा हुआ जाता था। उनके धनेक पद ऐसे हैं जो प्रायः भी गाने जाते हैं। संगीत के विद्यालयों के विभिन्न पाठ्यक्रमों में भी पुस्तकें स्वीकृत हैं उनमें भी बनानन्द की रचनाएँ विद्यमान हैं। उदाहरणार्थ बनानन्द का यह पद दिया जा सकता है

(पद संख्या १०१६)

'तामि रझो मन राबाबर सों धोर कहीं कछु धीर उपर सों ।
बिन रहियाँ अतिवा साये मेरी ठाढ़े रहैं कछु रूप सुपर सों ।
आनदबन प्रनु साये तेहा प्रेम रवोदी मैं गिरवर सों ॥' १

यही पद 'हिन्दुस्थानी संगीत-व्यक्ति कर्मिक पुस्तक मालिका' के प्रथम भाग
पृष्ठ-२५ पर अभाव राग में उद्धृत है।

अनामक मुहम्मद शाह रंगीसे के मीर सूजी के। जैसा कि प्रस्तुत प्रबन्ध
में प्रमथन कहा जा चुका है मुहम्मद शाह रंगीसे स्वतः छन्द कोटि के संगीतज्ञ
के। उनके रचे हुए अनेक अष्टाक्षर भी नायक बड़े आदर से गाते हैं। ऐसे
संगीतज्ञ-अष्टाक्षर के बरबाद में संगीत-कला को अत्यधिक आदर मिलना स्वाभाविक
था। अनामक की संगीताभिप्रेति धीर प्रतिभा को इस आतावरण से निश्चय
ही पर्यप्त बरबाद मिली होगी। साथ ही उनके जीवन की 'मुजान' वाली बटना
भी अतीव महत्वपूर्ण है।

संगीत का आषड ही कोई ऐसा कलाकार मिलेगा जिसका हृदय वास्तविक
प्रमानुभूति से सूझ हो। साधना द्वारा संगीत में परिश्रम का सम्पादन हो सकता
है परन्तु स्वरो में हृदय की क्षितिज धीर अक्षी पुकार का मार्ग पर
निर्भर नहीं हुआ करता। अनुभूति की दृष्टि से रीतिकाम में सबसे प्रमुख कवि
अनामक ही हैं। अतिशय को निरलसता ही उनका वैशिष्ट्य है। उनके पदों
में अल्प-शक्ति का जो रंग दिखता है वह लौकिक प्रेम का ही सहज उदयन है।
उनकी प्रेमनिष्पन्नि भाषा का विकास नहीं 'नेहू की पीर' है। हृदय-तन्त्र के
प्राचण्य के कारण उनके पद अन्तर्गत हैं तथा उनकी काम्यानुभूति में उनका
संगीत-ज्ञान भी समाहित ही गया है। इसी कारण उनके पद नायकों के कण्ठहार
बने हुए हैं। उनके पदों में पारस्परिक धीर काह्य संगीत का सुन्दर सम्बन्ध
बहुत ही हृदयहारी है। उदाहरणार्थ टोड़ी (चौताम) में उनका एक पद यह है

'उमंदि उमंदि धुमदि धुमंदि डुरि डुरि डुरि डुरि ऐसत

राबा-मोहन रस-अंगु डानी ।

त्रिकनि बिकसि निरुति अपने अपने सु डनि येँ धुमत मुफ्त

आदि लपटि बातनि बातनि कहत मूठ बनक बनी मजमानी ।

१ 'अनामक अष्टाक्षरी' (सम्पादक बन्धित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र)

मचत रचत पचत बचत मचत सचत चिरत मिरत मोछ
भकभोरत करि ऐंठाठानो ।

घानदपन मिबवत रिभ्वत बीवत रीभ्वत रस सेठ देठ मन-
सैकनि सुखदानी । १

प्रात कालीन सन्धि प्रकाश राग मीरव में बँबा हुआ निर्माकित पर मी
उनके संगीत-समन्वित काव्य-कीर्तन का अष्टा प्रमाण है

‘सैरों] (पद संख्या-१२४) [मूसठाम]

रसमसे साम तिहारे मँग कहुत ये निठि बपिबे के सँग ।

यमी करी भोरहीं भाप राप भरी हूमें प्राए सुख देम ।

सौहँ बैकि न सकत होठि-अर नससिअ बने नबन सभिएन ।

घानदपन प्रागनि सौंभवत हौं बोलि घमोपि सँग । २

रामकली के इस पद में भी वही बात कृष्टिगोचर होती है

(पद संख्या-४२२)

‘ननि उमीरे नैन तिहारे हो साम गुहाबने मये ।

मोठस कियो हियो बु बरम बिबी भावत भाप बगे हो ।

मरियै होठि घोर भई सँ तुम घाम घनूपम रूप पगे ।

संग सँग रम बरसत घानदपन प्रागनि घानि लगे ॥ ३

बनामन्द की बजमाया के कुछ टकसाली स्वरूप में यथास्थान संगीत-मुक्तों
के समावेश के कारण उनके पदों का माधुर्य और भी बढ़ गया है । उन्हीं
घपनी कल्पियों को रमणीय उपकरणों से सजाकर रम्योक्ति का कहीं प्रयास नहीं
किया । इन्हीं की टीम के कारण उनकी कल्पियों में संगीतोपयोगी बचता का
स्वाभाविक समावेश हो गया है । बनामन्द के संगीत-कीर्तन और प्रेम की
वास्तविक विह्वलता से उनके पद रीतिकामीन गीतिकाव्य में निर्विवाद रूप से
वीर्य स्थान प्राप्त कर लेते हैं ।

१ ‘घनाकाह घन्याबली’ (सम्पादक पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र) पृष्ठ-४६३

प्रथम संस्करण

२ वही पृष्ठ-४२६

३ वही पृष्ठ-४२६

निष्कर्ष

- १ रीतिकाल में भी मस्त्रों द्वारा प्रचुर पद-साहित्य निर्मित हुआ जिसका सम्बन्ध परम्परागत पद-रीती से सरसतापूर्वक स्थापित हो जाता है।
- २ इस युग में निर्गुणोपासक मस्त्रों में भी जब लिले धीर अनुभोपासकों में भी किन्तु कृष्ण भक्ति-साखा के कवियों में मानुषोपासना की जो प्रवृत्ति बाग चली थी उसकी अतिशय शृङ्गारिकता के कारण उन्होंने अपने पदों को अपने सम्प्रदाय तक ही सीमित रखना उचित समझ फसत यह पद-साहित्य अभी तक सम्यक रूप से प्रकाश में नहीं आ सका है।
- ३ राम-भक्ति की अपेक्षा कृष्ण-भक्ति रीतिकालीन मनोवृत्ति के अधिक अनुकूल थी अतः उस युग में कृष्ण भक्ति का प्रचार अपेक्षाकृत अधिक हुआ। यही कारण है कि रीतिकालीन पद-साहित्य में कृष्ण भक्तिपरक पदों का अितना आधिक्य है जतना रामभक्तिपरक पदों का नहीं। कृष्ण-भक्तों की मानुषोपासना का धर्म-धर्म राम भक्तों पर भी प्रभाव पड़ा फसत मर्यादा पुस्तोत्तम राम को भी भयवान् कृष्ण के समान रमिक बन जाना पड़ा अतः राम-भक्ति भी कृष्ण-भक्ति के समान ही संघीत को अपनाकर अग्रसर हुई।
- ४ रीतिकालीन पद-रचयिताओं ने अपने पदों के लिए त्रिभ रागों का अयन किया है वे निश्चयारमक रूप से उनके पदों के भावोत्कर्षाधिकारक हैं।
- ५ स्वरलिपि अथवा इसी प्रकार के किसी अन्य साधन के अभाव में यद्यपि यह कहना कठिन है कि इन पदों के रचयिता उन्हें कैसे गाते थे परन्तु उनके पदों पर राग-नाम का अस्तेस इस तथ्य का अतम प्रमाण है कि मूमत जतनी रचनाएँ संघीत के आचार को लेकर अनी थीं।
- ६ संघीत इन मस्त्रों की साधना का अपरिहार्य अंग बन गया था। संघीत में नियम होकर ही उन्होंने अपने भावों को अ्यंजना प्रदान की। वे त्रिभ भाव का परिचोप करना चाहते थे तभी कि अनुभव स्वर-योजना में तमम होकर संघीतमय रचना कर सकते थे। अस्तुतः उनकी हृदय रायिनी में ही काव्य कुछ ऐसा अम्पूक था कि उनकी अमिष्यक्ति में स्वयमेव काव्य धीर संघीत एकाकार हो उठे थे।
- ७ संघीत के स्वरों द्वारा जो बुद्ध आहारमक आठावरण निर्मित होता है यद्यपि उसकी आकारणता अतीव सूक्ष्म होती है फिर भी कविता से

संयुक्त होकर वह सूक्ष्मता सर्वथा बिस्पष्ट हा उठती है। समीत के बग
धर्मकाट, काकु इत्यादि की रस-दृष्टि से धरती मित्री सत्ता है। इनके
सम्प्रयोग में रीतिकामीन भक्तों को धरती समीतमय धक्ति-साधना में
प्रबुद्ध सहायता प्रदान की थी।

- ८ रीतिकाम्य में प्रचलित विभिन्न काव्य-रूपों में से रीतिकाम्य का संगीत
— से सर्वाधिक सम्बन्ध होना एक तो जैसे ही स्वामाधिक है फिर वहीं
संकीर्ण भक्तों की उपासना का आवश्यक अंग हो बन गया हो वहीं
संकीर्ण-वर्णों का प्रबुद्ध समावेश हो जाना कौन बड़ी बात है ?
- ९ रीतिकामीन सम्पूर्ण पर-साहित्य में धनात्मक के पदों का स्थान बहुत
ठोका है।

रीतिकालीन मुक्तक काव्य और संगीत

(क)

रीतिकालीन कवि और संगीतज्ञ दोनों ही दरबार की घोमा से शृङ्गार थे। दोनों एक ही स्थान पर रहकर अपनी-अपनी कला द्वारा दरबार के एक ही उद्देश्य—कलात्मक मनोरंजन—में रत थे। काव्य और संगीत की पारस्परिक अनिच्छता ने भी दोनों को एक दूसरे की ओर स्वभावतः घाङ्कट किया। फलतः तत्कालीन अनेक कवियों की रचनाओं को उस युग के संगीतज्ञों ने अपना लिया। ऐसी अनेक रचनाओं का संग्रह कृष्णानन्द व्यास कृत 'राम कल्पद्रुम' में सरलतापूर्वक मिल जाता है। इधर उस युग के कवियों ने भी उच्च धम्मालंकार इत्यादि शास्त्रिक संगीत के विधायक तत्त्वों से अपनी कविता का मनोनीत शृङ्गार किया।

रीतिकाल में परम्परागत शैली में जो नियम पद लिखे गये उनमें रान-लीपक का उल्लेख हो जाने के कारण संगीत का स्पष्ट समावेश हो ही गया था—यही नहीं थे पद उनके रचयिताओं अथवा सिष्य-वर्य द्वारा गाये भी जाते रहे किन्तु जिन्हें सामान्यतः पाठ्य मुक्तक कहा जाता है उनमें संगीत का समावेश कुछ प्रचलित रूप में हुआ। इस प्रकार की रचनाओं में बोधा कवित्त सर्वथा प्रभृति छन्दों के माध्यम से संगीतात्मक भव का समावेश हुआ और अनुप्रास, यमक विभिन्न प्रकार की बीप्साओं अथवा अनुकरणमूलक छन्दों के विन्यास से शास्त्रिक संगीत भी घा गया। 'राम कल्पद्रुम' में ऐसी अनेक रचनाएँ संबुद्धित हैं जिन्हें सामान्यतः पाठ्य मुक्तक माना जाता है ये पद मुक्तक नहीं, किन्तु उन रचनाओं में बीति-तत्त्वों के मुक्त होने के कारण उन्हें भी तत्कालीन गीतज्ञों द्वारा शिवात्मक संगीत के लिए उपयोगी मान लिया गया था। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि ये पदों के सम्बन्ध में उनके निर्मात्रकर्ता द्वारा उपलब्ध इत्यादि का प्राब-उल्लेख कर दिया जाता है, अतः पाठक के लिए इनके माने में कोई भी सुविधा हो जाती है किन्तु कवित्त सर्वथा बोधा इत्यादि में जहाँ प्रायः रान-ताम इत्यादि का उल्लेख नहीं होता वहाँ भी कुछल पाठक के लिए उन रचनाओं को मनोबोधित सांकेतिक रूप प्रदान कर देना कोई बड़ी बात नहीं है।

ऐतिहासिक पाठ्य मुक्तकों की रचना सांघीतिक यीत रचना के नियमों के अनुसार नहीं हुई। ये मुक्तकों तथा इनर मुक्तकों के पारस्परिक मेल को प्रस्तुत प्रबन्ध में ध्यान स्पष्ट किया जा चुका है। यत यहाँ जना ही कहना प्रसक्त होगा कि यनों के रचयिता के प्रसक्त म राग उमरु नियम ताम पर और राग के पारस्परिक सम्बन्ध पर के धर्मों का मय व अनुष्ठान स्वरपरक विम्यास इत्यादि बातों का मीठ के साथ ही स्फुरण होगा है यत पर अब बनकर लियार होता है तब उसी के साथ उसका क्रियात्मक-संघीतपरक रूप भी प्रस्तुत हो जाता है। यही कारण है कि मूर, तुसती मीरा बतारन हरिरचन्द्र प्रभृति पन् रचयिताओं के संगीतज्ञ या मायक होने के प्रमाण भी माय ही साथ उपलब्ध हो जात हैं। इसमें सन्देह नहीं कि किन्ही पन् को देख कर कोई कृतज्ञ कवि क्रियात्मक संगीत में कृपण म होने पर भी उसी के अनुकरण पर कीई कृपण पर रच सकता है परन्तु इसमें भ्रमा क्या सन्देह हो सकता है कि संघीत-संशोध कवि को पर रचना में यैधी सफलता प्राप्त हो सकती है बनी किसी धर्म के लिए असम्भव नहीं तो कठिन तो निरसन्देह है।

ऐतिहास में जो पाठ्य मुक्तक सिखे गये उनमें ये मुक्तकों की विधेयताओं की अपेक्षा नाम्य-राग धार्मिक लक्षण व किन्तु उनमें मायागत सांघीतता और मुक्तमागता तथा भावगत प्रोत्सवता विद्यमान की थीं जिन रचनाओं में ये विधेयताएँ धार्मिक थीं उन्हें उम युग के संघीतज्ञों से राग-ताम से मुक्त करके अपने काम का बना लिया था। ये मायक अपनी कला में तो इस व किन्तु कवि नहीं वे प्रसक्त अब उन्हें अपने राग-ताम के अनुकूल कोई सुन्दर कविता बनी बलामी विभ जाती थी तो उठते साम उठा लने म उन्हें भला क्या संशोध हो सकता था।

ऐतिहास में बायती भाग जो पर रच गये उनके बन्ध-विषय के सम्बन्ध में प्रस्तुत प्रबन्ध के ६० परिच्छेदों में प्रकाश जामा जा चुका है। उनके यीतों की तरह ही ऐतिहासिक पाठ्य मुक्तकों के विषय भी प्रायः तत्समिन्-निष्पन्न, मायिक मेल पदकृतु अपका प्रम या गृह्यार थे। इस कारण भी पाठ्य मुक्तक गायकों के हाथों में पढ़कर ये स्वरुप पारण कर लेते थे। किन्तु जिन पाठ्य मुक्तकों में बलम पाठित्य प्रदत्त और भावा सम्बन्धी बाधित्य प्रमवा मात वर्णनात्मकता थी वे पाठकों द्वारा गृहीत म हो पाए। क्योंकि उनके माय जान

पर थोटासों के लिए उनके भावों को समझना सरल न था। यद्यपि ऐसे मुक्तक कवचम धरने साहित्यिक रूप में ही बने रहे।

यदि रीतिकालीन मुक्तकों में निहित घान्तरिक संगीत के कारण पर विचार किया जाय तो उसके लिए भी अधिक भटकना न पड़ेगा। दरबारी कवि को दरबारी संगीतज्ञों को सुनने बाधना उनसे सम्बन्ध रखने में कोई कठिनाई न थी। यही कारण है कि जाने-भगजाने बनेक कवियों ने संगीत के प्रभाव का अपनी कविताओं में प्रसंचारक उल्लेख किया। बनेक स्थलों पर तो संगीत के पारिभाषिक शब्द भी उनकी रचनाओं में बड़ी कलात्मकता से समाहित हो गये। कवियों की सयात्मकता और शब्द-संगठन की नादात्मकता पर भी उनका पूरा ध्यान था। यही कारण है कि रीतिकालीन प्राम् समस्त कविता में अनुप्रास का मादह इतना प्रबल हो गया है कि उसे देखते हुए ब्रजभाषा की प्रकृति की ही अनुप्रासमय स्वीकार करने का मोह जाड़त हो जाता है। इन्हीं विशेषताओं के साथ इन पाठ्य मुक्तकों में बहाँ वैयक्तिक स्यात्मकता भी समाहित हो गयी है बहाँ निस्सन्देह पाठ्य मुक्तक मान कहना भर के लिए पाठ्य है धन्यवा उनमें शीतिकार्य की विशेषताएँ कम नहीं हैं। उस युग के बनेक कवियों का संगीत-प्रम और ज्ञान उनकी रचनाओं में भी स्पष्ट है। देव ने तो संगीत पर 'राम रत्नाकर' जैसी एक पुस्तक ही लिख डाली थी। जनामय कवि से तो वायक भी थे। इसी प्रकार बिहारी की प्रसिद्ध उक्ति

‘संगीत-नार कवित्त-रस सरस-रान रति-रंय

धनदूडे-दूडे तरे से दूडे सब धंय।

(बिहारी-रत्नाकर, बोहा संख्या-२४)

में मान विरोधाभास धर्नकार का जमलकार नहीं। महरे अनुभव के आधार पर उद्घोषित एक ऐसा चिरम्तन सत्य है जिसकी अनुभूति संगीत के गन्धे पुञ्जी की एक न एक दिन धबधप होती है।

कैलाश भी इन्द्रजीतसिंह की प्रधंया करते समय उनके संगीत प्रम को नहीं भूले। १ यही नहीं यदि वे स्वयं भी संगीत-प्रमी न हाने तो नवरंज राय की

१ 'बर्ध्मो प्रञ्जारी राज के शासन सब संगीत।

ताकी देवत इन्द्र ज्यों इन्द्रजीत रणजीत ॥'

माब—'इन्द्रजीत न समस्त राज्य पर सुन्दर शासन बसाकर संगीत का प्रसादा बसाया और [क] इन्द्र की तरह संगीत में भी मरत रहा करते थे।

नाता जमवान शीत द्वारा लिखित 'कवि प्रिया' की टीका 'प्रिया-प्रकाश', पृष्ठ-२, प्रथम संस्करण

मूल्य-चातुरी १ और तानतरंग के तान-कीचम २ में रस कैसे ले सकने व ?

सेनापति अपनी सदा स्नाता नादिका की अमलंहुत घोमा को तान धीर कीत से रहित प्रबीय भायक की असापचायी के समान अपने संगीत ज्ञान के बल पर ही बता सके व । ३ यही नहीं मुखरई, सनिठ गोरी रामकनी भूजा कस्याप मुखरी मांभ इत्यादि रागों के स्तिष्ट प्रयोग द्वारा बाला को रागभामा के समान सिद्ध करने में भी उनका संगीत-ज्ञान ही सहायक हुआ है

१ "हृदभाब संभाबमा, बीता सम मुखराय ।

पियमन हैति मुनाय गति नबरंग नबरंगराय ॥"

भाषा— 'नबरंगराय चातुरी शून्य कता में ऐसी चतुरा है कि हाथों तथा भावों की दृष्टिम बेष्टाओं को करके अपने प्रियतम (इन्द्रजीत) के मन को अकरोधित कर देती है अतः वह भूता के समान मुखरायक है । रिस तर्जना वा मर्तना के हाथ प्रयुक्त करके प्रियतम के मन को दूर हटाती है फिर पुरस्त ही प्रेम प्रोत्त धीर बिजवास के भावों को प्रगट करके पुन उसके मन को अपनी धीर अकरोधित करती है यही काम भूमा वा है ।"

वही पृष्ठ-१३

२ "ताने तानतरंग की तनु तनु वैपत प्राण ।

बना कुमुतर-सरन की प्रति अज्ञान तनमान ॥"

भाषा— 'तानतरंग की तानें प्राणियों के प्राणों के सुस्मादिसुधम प्राणों में घुस जाती हैं । उन तानों में काम के बाधों की प्रति है उनसे बचने के लिये केवल प्रति अज्ञान ही बचतर हो सकता है अर्थात् अज्ञानी ही उन तानों के प्रभाव से बच सकता है अथवा उनसे बचाव नहीं ।

वही पृष्ठ-१३

३ "सेनापति सदा ही तन को निरवाई तापी

हेति की दुपन जिय जवमा बिचारी है ।

तान कीत बिन एक रूप की हरति मन

परबीन गान की क्यौ असापचायी है ॥"

सेनापति हुन 'दिल्ल रत्नाकर' (सम्बारक की उमासंकर पुरल)

भूतरी तरंग धार संख्या-२४, पृष्ठ ६१ प्रथम संस्करण

'भीमे सुवराई संग सोहत ससित धंग
 सूरत के काम के सुपर हो बसति है ।
 गौरी नव रस राम करी है सरस सोही
 सूहे के परस कमियान सरसति है ॥
 सेनापति जाके बाके रूप उरमन मन
 बीना में मधुर नार मुषा बरसति है ।
 गुजरी मन्क मांस सुमग ठमक हम
 देखी एक बाला राग मासा सी लसति है ॥ १

अस्तु रीतिकालीन कवियों की अभिव्यक्ति संघर्ष की धोर होने में कोई शन्देह नहीं है। शोक भाभुर्य इत्यादि गुणों से युक्त रीतिबालुरी के कारण ही उनकी रचनाओं में संगीतात्मकता पा गयी थी किन्तु प्रसाद गुण का प्रभाव हो जाने के कारण उनकी कविताओं का धान्तरिक संगीत ब्यावहारिक संगीत में धोप न दे पाता था। उदाहरणार्थ कैलव का यह सबैया सिमा जा सकता है

‘अवप्रवृत्त-संयोग-शुद्धार (सर्बिया)

बन में शृगमानु कुमारि मुचरि रमै कधि री रस-रूप पिये ।
 कम कूबत पुनत काम-कसा बिपरीत रची रति केति किये ॥
 मन सोभित स्वाम बराह जरी मति बीकी बसै बस जाह हिये ।
 मगगुन कं भूम सुभाबत केसब मानु मनो सति अंक भिये ॥ २

सर्बिये की समात्मकता और शक्तिमन्कारो के मीच्छक के कारण धान्तरिक संगीत यहाँ भी बिद्यमान है, किन्तु धान्तरिक गति में जो उत्प्रेक्षा है वह बाह्य शेषक के पाण्डित्य की परिचायिका भवे ही हो, जगमें प्रसाद गुण का प्रभाव है। अतः सम्भवतः गायक इमे क्रिमी राग-ताम में बाप कर गाने की इच्छा नहीं करेगा। पाता मुनत समय यदि मन्दासं गुणबोध न हो तो गीत का धारण्य कम होने सकता है। अतः उगर्वुक्त उदाहरण एक धोर तो धान्तरिक संगीत की दृष्टि से संभवनीय है, गुजरी धोर इस बात का भी प्रमाण है कि धान्तरिक संगीत से युक्त होने पर भी यदि कविता में प्रसाद गुण न हो तो वह प्रत्यक्ष धोप जाने के लिए बिधेय उपयोगी नहीं होती। इसक बिपरीत यह उदाहरण भीजिए

१ वही पहली तरंग एम्ब संख्या-१८ पृष्ठ-७८

२ केन्द्र-प्रस्तावनी पद्य-१ (सम्पादक पण्डित बिजयनाथ प्रसाद मिश्र)
पृष्ठ-१

‘श्रीकृष्णसूक्त को प्रसंग-विषयं

यथा-(कवित्त)

‘जननि की बोर सुनि मोरनि को सोर सुनि
 सुनि सुनि ‘केसव’ प्रसाप प्रभीवन को ।
 शमिनी दमक देखि दह की दिपति देखि
 देखि सुम-सेव देखि सरन सु बन को ।
 कृष्ण की बास बनसार की मुकास भयो
 पूजन की बास मन पूजि के मिसम का ।
 हंसि हंसि बोले दोऊ अनहीं मनाए मान
 छुटि गयो एक बार राबिकारमन को । १

यही शब्दों की जारीपद्य से प्रान्तरिक संगीत ब्रह्म उभय है। प्रथम-आठव्य भी नहीं है, प्रथम यह कवित्त स्वर-ताल की बन्धन में बन्धा प्रतीत होया। फिर भी सांगीतिक निबन्धना में उपारमक अनुभूति की जो तीव्रता काव्य है, वह इतनी ही नहीं है। उपात्मक अनुभूति भी उस की दृष्टि से प्रनेक प्रकार की हो सकती है, किन्तु हास्य भवानक भोगस्थ इत्यादि उद्योगों की अभिव्यक्ति अधिक संगीतोपयोगी नहीं बन पाती। केसव का शबोमिलित कवित्त इस कवन के प्रभावस्वरूप उपस्थित किया जा सकता है

‘राबिकारु को भीमस्त रस’

यथा (कवित्त)

‘माता ही को माय तोहि सायतु है सीरो मुल
 पियठ पिता को सीहू नेक ना पिनाति है ।
 भीयति के कठनि को काटति न कसकति
 तेरो हियो कंसो है नु कहुति सिहाति है ।
 जब जब होय भेंट तब तब मेरी नहु
 ऐसी सोई दिन बठि जाति न लजाति है ।
 भेतिनी पिछाभिनी गिछाचरी की बाई है तु
 बेसोबास की मौं कहि तेरी कीन जाति है । २

१ ‘केसव प्रभावली’ (सम्पादक पण्डित बिम्बनाथ प्रसाद मिश्र) पृष्ठ-६३

२ ‘केसव प्रभावली’ (सम्पादक पण्डित बिम्बनाथ प्रसाद मिश्र) पृष्ठ-८६

यही कवित्त में समारम्भक प्रवाह भी है तथा धनुप्राय की नादात्मकता भी, क्लिष्टरस वाप भी इस रचना में नहीं है फिर भी गायक इसे पाने की आकांक्षा कदापि नहीं करेगा। ठाम-स्वर की उत्तम से उत्तम बन्धित में बंधने पर भी जैसे ही श्रोता गायक के मुख से इस कवित्त की प्रथम पंक्ति सुनिये वैसे ही उसका मन उस पाठक और उसके संगीत से विरक्त हो जायगा और कौन नामक मत्ता यह कामना करेगा कि जैसे ही वह अपना गाना प्रारम्भ करे वैसे ही महकिल जलक काय श्रोता नाम कहे हों और छात्रिये भी उसका साथ देना छोड़कर धारण्य और हास्यमिधित मुद्रा से उसकी धोर मुँह बनाकर देखने लगें।

तात्पर्य यह कि संगीत के लिए जो मुक्तक रचनाएँ उपयोगी होती हैं उनमें धात्विक संगीत के ऐश्वर्य के प्रतिरिक्त भाषा की सरसता भावों की तरसता, वैयक्तिक रागात्मक धनुभूति की कोमलता इत्यादि का समावेश हो जाने पर वे क्रियात्मक संगीत के लिए भी असन्दिग्ध रूप से उपारेय हो जाती हैं, धम्मना उनमें छन्द-संज्ञक और अर्थ-ध्वनन-समृद्ध शब्द-योजना से धात्विक संगीत तो परिष्काय हो जाता है किन्तु वे क्रियात्मक संगीत के लिए उपयोगी नहीं होतीं। यह धन्तर बहुत कुछ वैसा ही है जैसा पाठ्य नाटकों और अभिनेय नाटकों में हुआ करता है। पाठ्य नाटक पढ़ते समय पाठक के मन में उसका मूक अभिनय तो होता रहता है परन्तु उसका प्रत्यक्ष अभिनय सम्भाव्य नहीं होता। इसी प्रकार जो मुक्तक रचनाएँ भावविरत अन्व-योजना से रहित और मात्र धात्विक संगीत से समृद्ध होती हैं वे संगीत के वातावरण का सुजन करके पाठक या श्रोता में तन्मयता का उद्रेक तो करती हैं परन्तु प्रायः व्यावहारिक संगीत के लिए उपयोगी नहीं होतीं। इसके प्रत्युदाहरण स्वरूप शेषक का ही यह कवित्त लिया जा सकता है जिसमें धात्विक संगीत के प्रतिरिक्त नीतिकाम्य-मुत्तम यह सरसता भी विद्यमान है जिसका उस्तव ऊपर किया जा चुका है।

अथ धनाय-हेतु बर्लम (सर्बेया)

‘जाग्यो न मी मरु ओन्नत को उत्तरो क्व काम को नाम गवी ई।
छाद्यो न चाहत जीव क्लेवर जीव क्लेवर छादि हवी ई।
धावति वाति वरु विन सीसति रूप वरा सब सीसि सवी ई।
‘क्रियेव राम ररो न ररो धनसाधे ही साधन सिद्ध भवो ई। ?

अपर्युक्त विवेचना से यह स्पष्ट हो गया है कि रीतिकामीन कवियों को काव्य-शास्त्री में प्रकाशान्तर से समीत के तत्त्व समाहित हो पय थे । अब यदि उस युग के संगीतज्ञों की रचनाओं पर विचार किया जाय तो उन पर रीतिकामीन काव्य मनोवृत्ति की छाप स्पष्टतः परिलक्षित होती है । काव्य-शास्त्री में प्रवीण न होने के कारण तत्कालीन संगीतज्ञ स्वर्चित गीतों में भाव और शब्द-योजना की दृष्टि से अपने युग के कवियों का अनुकरण करते हुए अपने गीतों के बोल बना लेते थे । रीतिकाम में तत्त्वज्ञान भक्ति नीति और प्रेम सम्बन्धी जो भाव-धारणें मुक्तकों में आ गयी थीं उन्हीं के अनुरूप सांगीतिक निबन्धनाओं का भी निर्माण होने लगा । छन्द छन्द चर रचना और भावभारा में कृत्रिमूलक शकता समाहित हो गयी फलतः रीतिकामीन सांगीतिक निबन्धनाओं से लेकर प्राबुतिक काम तक की सांगीतिक निबन्धनाओं में रीतिकामीन भावधारण और शब्द-योजना का प्रभाव्य विद्यमान होता है । इस दृष्टि से वर्तमानकामीन सपीठ की परम्परा रीतिकामीन संपीठ से अधिकोद्य में अपरिच्छिन्न है । उदाहरणार्थ तत्त्वज्ञान, भक्ति और नीतिपरक भावधारणों से युक्त दिग्गजलिखित छन्दों के समानान्तर अनेक सांगीतिक निबन्धनाएँ सहज ही उपसम्पन्न हो जाती हैं

सेनापति

सीनी बासायन बासकेलि में मयन मन
 सीनी तबमापी तग्नी के रख सीर को ।
 अब तू अरु मैं पर्यो माह पीमरा मैं सेना
 पति मनु रामी जो हरया बुख पीर को ॥
 पिठहि पिठार भूति काहू न सठार धार
 भाहे कंधी ठार न बचार है सरीर की ।
 सेह देह करि मैं पुनीत करि सह देह,
 जीमै 'अबलह देह सुरसरि-नीर की ॥ १
 × × ×
 गुम करतार जन रचठा के करन हार,
 पुत्रजन हार मनोरथ चित बाहे के ।
 यह जिय जानि सेनापति है सरन धायी
 इजियै सरन महा पाप-ताप राहे के ॥

१ सेनापति इत 'कवित-रत्नाकर' पाँचवीं तरंग, ब्राह्मण कवित

की कीहु कही कि तेरे करम न संघ हूँ
 गाहक है मुक़्ति भगति रस माहे क ।
 प्रापने करम करि ही ही निबहीनी लौब
 ही ही करतार करतार तुम काहे के ? १

× × ×

मोहि महापन्न प्राप नीके पहिचानी रानी
 जानकीमी जानै हेतु लछन कुमार को ।
 बिभीषन हनुमान तबि अभिमान मेरी
 करै सनमान जानि बड़ी सरदार को ॥
 एरे कलिकाल ! मोहि कासो न निबरि सकै
 तू ली मति मुड़ भति कायर गंवार को ।
 सनातनि निरधार, पाइपोस-बरवार
 हौं ली राजा रामचर बू के दरवार को । २

देख

ऐसो जा ही जानतो कि जेहूँ तू बिपै के संघ एरे मन मरे हाथ पाब तेरे सोरखो ।
 धानु लीं हौं कत मरनाहून की नाहीं मुनि मेह छो निहारि हारि बदन निहारतो ॥
 बसन न देवा 'बैब' बचन बचन करि, जाबुक चिठाबनीम मारि मुह मोरतो ।
 मारी प्रेम पावर नयारा है मरे सो बाबि राधावर बिन्द के बारिधि में बोरखो ॥ ३

राय ईश्वरी प्रताप नारायण राय

मोह को बाल पवार बहु बिनि छतल बेसत काल घड़ेरो ।
 भाग तू मोह मया तबि मूरख काहू का तू न कीऊ बहु ठरो ॥
 नदबर या तन को समबन्ध प्रताप छटे छिन साम सबरो ।
 छोड़ि सबै भ्रमबास निरंतर भीबन में बस हे मन मेरो ॥ ४

१ सेनापति कृत 'अबिल रत्नाकर' पाँचवीं तरंग, जनसीसर्वा कवित्त

२ सेनापति कृत 'अबिल-रत्नाकर' पाँचवीं तरंग तैईसवाँ कवित्त

३ 'अबिला-कीमुबी' भाष पहला सम्पादक श्री राम नरेश त्रिपाठी
 पृष्ठ-४०९, पाँचवाँ संस्करण

४ 'अबिला-कीमुबी' भाष पहला सम्पादक श्री राम नरेश त्रिपाठी
 पृष्ठ-५१०, पाँचवाँ संस्करण

ग्यास

ठाठ माठ बाहन सुठा धो सुठ बनियाह
 मानजे मतीब साब जसे हूँ न खेबा प ।
 हापी हबियार ह्य गग घाम बाम
 बोरे भूपन बसन छुटि बंही नैक टेबा वं ॥
 'ग्यास कबि कीजे सतमगत जो फूसै प्रय
 राखि निब घत एक सामरे की सेवा वं ॥
 कोळ हूँ न हित सच बित्त क सिवैया भरे,
 भूजे मति बित्त बित्त काम के कसेबा वं ॥ १

राम बनरयाम के न नाम लें उचारे कम्
 काम बग हूँ कै बाम गरे बाहू डाली हूँ ।
 एक एक स्वांस पे प्रमोस कड़े जाठ हाय
 सोम बित्त पवै बोल जोरठ उठामी हूँ ।
 ग्यास कबि कहै तू बिचारे बप बड़े मर
 एरे । बन्धिनि छिन धायु की बहामी हूँ ।
 जैसे बार बीजत फुहारे की बड़त घासे
 पाध बन घटे हीब होत घाने खामी हूँ ॥ २

उपर्युक्त रचनाओं में संसार के विरक्ति तथा ईदबर में आस्था की भावनाएँ प्रतीक सबल हैं । उत्तम पुरुष के सचनानों का प्रयोग कबि की वैयक्तिकता को भी स्पष्ट कर देता है । अपने जीवन काम में एक न एक दिन मनुष्य ऐसी वैराग्य परक भावनाओं में प्रवश्य निमग्न होता है घत ये भावनाएँ मानव-हृदय क चिरन्तन सत्य को ही अभिव्यक्त करती हैं । इन रचनाओं की 'मत्र हरि नाम तू १

१ 'ग्यास-रत्नावली' सम्पादक कबि 'किऊर' संस्करण सम् १९४३,

पृष्ठ-२४ २३

२ 'कविता कीमुही भाष पहला सम्पादन श्री राम नरेश त्रिपाठी

पृष्ठ-४११ ४१२ पश्चिमी संस्करण

३ दृष्टव्य राग यमन-चित्ताम (विलंबित मय)

रपायो

मत्र हरि नाम लं मोरे बनबा

मोरे मनवा' तू ही भज भज रे मना कृष्ण बासुदेव' १ 'रब सौं गैह मया तू मनवा २ इत्यादि सांगीतिक निबन्धनाधों से मिलाने पर अद्भुत साम्य दृष्टिगत होता है। यहाँ यदि कोई अन्तर है तो बस इतना ही है कि संगीतज्ञों की रचनाधों में काव्य-कला का बीसा निहार नहीं है बीसा रीतिकालीन काव्य-कला कुशल कविधों की रचनाधों में सहज ही उपसम्भ हो जाता है।

अपर्युक्त उदाहरण रीतिकालीन उन मुक्तको के हैं जिन्हें पादम माना जाता है गेय नहीं किन्तु अब इनमें ही संगीतारम्भकटा और गीतिकाव्यानुकूल शैयलिकता

सब मुञ्जकारक मबभय हारक

पूरन होत सकल तेरे काम ।

अंतरा

यह सौंसार मड़ी का सपना साब एक पतर को नाम ।

शाब्दार्थ भातकण्ठे कृत द्विमुस्त्रानी संगीत-व्यक्ति क्रमिक पुस्तक मासिका

पुष्क-१० ११ तृतीय संस्करण

१ राग यमम बल्याण-धौताल (विसमित)

स्थायी

तू ही भज भज रे मन कृष्ण बासुदेव

पबमनाम परमपुङ्क परमेसर नारायण ।

अंतरा

बोय जाग अय तय कर बामदेव नारद मुनि

बसिष्ठ सनकादिक सकल गुर पावत ध्यावत

अष्टनाम करत रहत पारासन ।

वही, पुष्क-११, १४, १५

२ राग विसावल-त्रिषाम (मध्यमय)

स्थायी

रब सौं गैहा मया तू मनवा

हूमो नाहि शरनवा ।

अंतरा

साबो मुजी कोड अग मों न होखत

हररंग मान बचनवा ।

वही, पुष्क-०१ ७४

विद्यमान है तब सहजोबाई, बयाबाई, सुन्दरदास नामदीदास कुन्द इत्यादि ने तरबत्रान नीति घणवा भक्ति सम्प्रदायी जो रचनाएँ अपने मन को शान्ति और एकाग्रता प्रदान करने के लिये गाने के लिए ही लिखी थीं उनमें सपीठ-तल्प समाहित हो जाने में भसा क्या सम्बन्ध हो सकता है ?

प्रसिद्ध कवि शीनबयास गिरि ने एक स्थान पर कहा है

“ताग मुर घाम कों न काम अनुपायें बीन
बासों मन पायें तीन लागीं मली पीति है ।” १

यह संगीत का वह बुद्धिकोम है जो अपनी प्रकृति में शुद्ध कलाकारी नहीं है किन्तु सपीठक के लिए सपीठ का कलापक्ष उपेक्षणीय नहीं होता। मन्दिरों में कीर्तन करने वाले मकड जन मोति-बराम्पपरक रचनाओं को गाते हुए मिसाटन करने वाले या मंकीठ के माध्यम से अपनी आत्मा को शान्ति और मन को प्रबोध देने वाले साधु-सम्पासी इस बात को चिन्ता ही कब करते हैं कि जो कुछ वे गा रहे हैं वह सपीठ-शास्त्र-सम्मत धरानेदार नामकी और गामकी है या नहीं। उनके लिए तो बलुत्त यही सत्य है कि ‘बासों मन पायें तीन लागीं मली पीति है और यदि संगीत की शास्त्रीय उच्चारण से तटस्थ रहकर कोई व्यक्ति किसी छन्द को बसती हुई धुन में गा लेता है तो संगीतक उसे राग-तासमुक्त शास्त्र-सम्मत रूप प्रदान करके भी गा सकता है। अस्तु, एक ओर यदि उपर्युक्त उदात्त भावों की रचनाएँ गायी जाती रहीं तो दूसरी ओर उनके अनुकरण पर पपवा उनके समानांतर सांघीतिक निरन्धनाएँ भी निमित्त होती रहीं। तुलनामूलक अध्ययन के लिए निम्नस्थ उदाहरण पर्याप्त होंगे

सहजोबाई

ना सुय दारा सुठ महन ना सुन भूप भये ।

साधु सुयो सहजो कहै कृपा रोप गये ॥ २

बैठ बैठ बहुरक गये जग तरवर की छाहि ।

सहज बटाऊ बाट के मिति मिति विपुङ्गुत बाहि ॥ ३

१ शीनबयास गिरि बयाबाई, कातो नापटी प्रचारिणी समा द्वारा प्रकाशित (सं. १९७६) पृष्ठ-६ पर १ संख्या-१८

२ ‘कविता की कुशी’ भाग पृष्ठा सम्पादक श्री राम नरेश त्रिपाठी पृष्ठ-४६८ पाँचवाँ संस्करण

३ वही पृष्ठ ४६८

मैं मलमल व्यापक सकल सहज रहा भरपूर ।
 मानी पावे निकट ही मूरख जानै दूर ॥ १

दयाबाई

‘ब्रमा कुम्हर’ या जगत में मही रह्यो फिर कोय ।
 जैसो बास सराय को तैसो यह जग हीम ॥ २
 ठाठ मात तुम्हरे नय तुम भी भये तमार ।
 धाज कल में तुम खली दया होठ हुसपार ॥ ३
 बडो पेट है काम को मक न कहु भयाम ।
 राखा राणी छत्रपति सब क नीले बाम ॥ ४

गुरु गोविन्द सिंह

का भवो को सबही जग नीठ मु भोगन को बहु भास बिचामो ।
 भीर कहु बु ई देख बिदेसन माहि भसे नख गाहि बंवायो ॥
 जो मन भीतठ है सब देख बई तुमरे रूप हास न आयो ।
 साज नई कहु काज सरयो गहि भोक गयो परलोक गमावो ॥ ५

सुन्दरदास

कीम कुबुद्धि मई घट घन्तर नू धपने प्रभु सु मन चोरे
 भूमि नयो विपया मुख में सठ लालन सागि रह्यो घति चोरे ॥
 ज्यु कौड कंचन छार मिनाबत लकरि पत्थर तू मन चोरे ।
 सुन्दर या नरदेह प्रभुमक तीर मनी नषका किय चोरे ॥ ६

१ वही पृष्ठ-४६८

२ वही पृष्ठ-४७०

३ वही पृष्ठ-४७०

४ वही, पृष्ठ-४७०

५ ‘कविता कौमुदी’ भाग पहला सम्पादक श्री राम नरेण त्रिपाठी,
 पृष्ठ-४०० चौबवा संस्करण

६ वही पृष्ठ-३४१, ३४२

बोनबयाल गिरि

मर्यो है कुरंग बीन सबबविपय संग
 बर्यो है पत्रम ह्य उमंग रूप रागि रे ।
 पर्यो है मत्तंग गाड़ परस बिपै धपीन
 हूर्यो मीन रसने मधुप राग्य पागि रे ।
 एक एक बिपै त मरे हूँ एक एक बीन
 नर बनों न मरे जाहि पंचबिपै मागि रे ।
 एगो उर सात ज्वाभ-ध्वाभ से कराम
 जानि बिपै बिपतें बिमास ताहि त्यागि रे ॥ १

बिठै न कोरु पारली मो पक नहि बुबाँसोप ।
 गुंजा मानिक एक सुम करे जहाँ जड़ सोप ॥ २
 करको मानिक निग्रि नर दुइत डुर ममाठ ।
 गन लीर निषमै ठऊ डुर लीरपमि माठ ॥ ३

मागरी वास

बमहु बमपना काम बसेम निवारली ।
 पर निन्दा परछोह न बमहु बिचारली ॥
 जम प्रबंध बन्धार न बिच बड़ाइये ।
 बबतायर नउमाम सु निमिबिन गाइये ॥ ४

धुन्व

बो जाबो मुन जानली मो तिहि धावर देत ।
 कोकिम धम्महि सेत है बाग निदीये हेत ॥ १
 धनम धन्य है प्रेम को जहं ठडुराई नाहि ।
 गापिन के पाये छिरे त्रिभुवन-वति बन माहि ॥ २

- १ 'बोनबयाल गिरि' पद्यवाक्यो काशी नागरी प्रचारिणो सभा द्वारा प्रकाशित (संवत् १९७६) पृष्ठ १७०
- २ 'बोनबयाल गिरि-पद्यवाक्यो काशी नागरी प्रचारिणो सभा द्वारा प्रकाशित (संवत् १९७६) पृष्ठ ७२
- ३ बहो, पृष्ठ-७२
- ४ 'कविता बीमुदी' भाग पहला सम्पादक श्री रामनरेश त्रिपाठी पृष्ठ-४४१ बीचवाँ संस्करण
- ५ 'बन्ध सतसई सटीक' डीवादार श्रीहृदय सुबल, पृष्ठ-२, द्वितीयकृति
- ७ धुन्व सतसई सटीक' डीवादार श्रीहृदय सुबल, पृष्ठ-११२ द्वितीयकृति

उपर्युक्त रचनाएँ प्रसादगुणपूज्य सरस वैयक्तिक रामायणक धनुमूति एवं संगीत में पृहीत शब्द-योजना और भावभाषा के कारण विद्वान् संगीतज्ञों को सहज ही आकर्षित करने में समर्थ हैं। ज्ञान वैराग्य और नीति को लेकर लिखी हुई ऐसी ही आक्षिप्तिकाओं की संगीत-शैली में भी कमी नहीं है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित आक्षिप्तिकाएँ द्रष्टव्य हैं।

राम बरबारी कालड़ा-बिताल (मध्यलय) १

स्वायी

समझत ना मन तुं मेरा
सात बार समझावत हूं मैं
काहे न तजत धंभेरा ।

अंतरा

भूटी माया भूटी जाया
भूटा जगत पसेरा
अंत सयब कोइ काम ना घावत
अब प्रभु एक तेरा ।

×

×

×

राम अकरा-बिताल (मध्यलय) २

स्वायी

करना हो सो करमे प्यारे
अनम जात दिन रैन सवारे ।

अंतरा १

मन जीवन बधु भीर नहीं है
बैठन हो तो बैठ सवारे ।

अंतरा २

मनरन प्रभु मत भूस जगत संम
काहे को छिर पर मेठ तु भारे ।

१ द्रष्टव्य : आचार्य आतलछठे द्वारा हिन्दुस्थानी संगीत-पद्धति बालिक पुस्तक 'आतिथ्य' चौथा भाग (द्वितीय संस्करण) पृष्ठ-१६२, १६३

२ द्रष्टव्य : वही पृष्ठ १७७ २०८

राग आशावरी—त्रिताल (मध्यम) १

स्वाधी

धरे मन समझ समझ पम धरिए

इस जप में नहीं अपना कोई परछाई सों हरिए ।

धंतरा

बोसत बुनिया कृदम कबीला

इससों नेह न करहुन करिए

राम नाम मुख नाम अमठ पठ

मुमरन सों जप ठरिए ।

इन प्राञ्जलिकाओं की ध्वज-पोजना पर ध्यान देते ही यह स्पष्ट हो जाता है कि सहजोबाई, क्याबाई मुखरबाम इत्यादि न मन्तार की मन्त्ररत्ना और मुख, शारद बनिता इत्यादि से प्राप्त होने वाले मुख को जिस प्रकार मूढा मुख माना है, वही प्रकार इन प्राञ्जलिकाओं में भी मन्तार से विरहित की भावनाएँ अभिव्यक्त हुई हैं ।

गीतानरक भावनाएँ भी सांयोगिक निबन्धनाओं का विषय रही हैं । उदाहरणार्थ यह शायद कहा जाता है कि सर्वत्र नाम ही धर्मित होना है, बिना और पीरप नहीं । बायेधी के प्रायोगिक जमान में भी यही भावना विद्यमान है

राग बायेधी—एकताल (विभक्ति) २

स्वाधी

बहु पुन काम न पाये सबकी

जब समय करम भई जाये ।

१ इत्यस्य आचार्य भातखण्डे कृत गुरुकुल्यानी संगीत-व्यक्ति नामिक पुस्तक भागिका द्वारा भाष (तृतीय संस्करण) पृष्ठ-११४, ११५

२ इत्यस्य आचार्य भातखण्डे कृत गुरुकुल्यानी संगीत-व्यक्ति नामिक पुस्तक भागिका' चौथा भाष (द्वितीय संस्करण) पृष्ठ-४१४ ४१५

अंतरा

जगत गुनी है बात रंभीसे
 रूप खोबन मुग भरो ही रहत
 इन भागन के भागे ।

प्रस्तुत प्रबन्ध के छठे परिच्छेद में रीतिकालीन रचयार्यों की भाव-वाचनों पर विचार करते हुए यह स्पष्ट किया जा चुका है कि इस युग के भक्ति-काव्य की परम्परा भक्ति-कास से सम्बन्ध है। रसिक गोविन्द कृत 'युगल रस मावुरी' छोमनाथ कृत 'कृष्ण गीतावली' अथवा नागरीदास या बाबा हित कृष्णाचल दास ने जो रस पर लिखे उनमें कृष्ण भक्ति के साथ शृङ्गार भी समाहित हो गया था। कृष्ण-भीसा से सम्बन्धित ऐसी ही धार्मिक-कार्य संगीतज्ञों द्वारा भी निर्मित हुई जिनमें शृङ्गार का भी पर्याप्त घुट था। उदाहरणार्थ में धार्मिक-कार्य देखिए

राग बैरवकार-त्रिताल (मध्यम) १

स्वामी

तुम पर बारि कृष्ण मुरारि
 इतनी हमारि तुमो बनबारि ।

अंतरा

मे कर और कदम पर बैठे
 हम जल मांछ उपाटी ।

राग तोड़ी-त्रिताल (मध्यम) २

स्वामी

काम करत मोमे राट एतै माई
 अब ही जाय कहू जमोदा घर
 मंवर भजर मोरि गवरी दीनी डार ।

१ इच्छम्य बही, पृष्ठ-१४१ १४७

२ इच्छम्य आचार्य भक्तदास कृत 'हिन्दुस्वामी संगीत-सङ्घति क्रमिक पुरतक भागिन' द्वारा भाग (तृतीय संस्करण) पृष्ठ-४३१ ४३९

धतरा

मैं हृषि बेचन बात विद्यावन
घाम घनामक तुमरो बार
बाग बाट में रोकठ टोकठ
घपने धतर को लीजे संभार ।

इन प्राक्षिप्तिकाओं के प्रतिरिक्त ऐसी भी धनेक प्राक्षिप्तिकार्यं लिखी यहीं
त्रिभों ऐतिहासिक कवियों के समान गंगा मणेश कृष्ण हर्यादि की स्तुति
की गयी है । उदाहरणार्थ शंकरे को इस निबन्धना में बहुत कुछ बँसी ही भावना
है बँसी पपाकर कृष्ण 'यंमामहरी' के छन्दों में परिमलित हीठी है

राग शंकरा-अपताल (मञ्जुलय) १

एषामी

अप मंगे छारनि अपत अननि पाप हरनी
अपम करनि बँकुठ की निघानि ।

अंतरा

भागीरथी विप्यु पर पूठ विपनया
पाह्वनी पावनी जग जानि जग मानि ।

पद्माकर

विधि के कर्मबल की सिद्धि है प्रसिद्धि यही
हरि-नर-नकर-मताप की सहृ है ।

नई 'पद्माकर' पिरीत-नील-बेडल के
मुंडन की माल ठठकाल पहर है ॥

भूपति मयीरष के रम की मुपुग्य-वप
बहु-बप-बोव-कम-ईल की पट्टर है ।

देम की छहर मया रावरी सहृ,
कलिकात का सहृ अमजाल की सहृ है ॥ २

१ इच्छम्य बही चौथा भाग (द्वितीय संस्करण) पृष्ठ-२२६, २२७

२ श्री विद्यानाथ प्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'पद्माकर-पंचामृत'
में गणालहरी का पृष्ठ-२४७, प्रथम संस्करण

इन भावनाओं के इस साम्य के प्रतिरिक्त और भावपूर्ण तथा प्रेम और भृङ्गार की भावनाएँ भी रीतिकामीन मुक्तकों और सांगीतिक धासिष्ठिकाओं में समान रूप से धा बनी थीं। यदना शंकरा द्विदोल प्रभृति रागों के स्वर-विन्यास में ऐसा धीव विद्यमान है जो सङ्ग ही धोटा के मागस में बीरता के धाकों का धोके कर सकता है। इधर रीव भवानक और इत्याधिराँ के निरूपण में रीतिकामीन और काव्य में जो शब्द-योजना हुई उसमें धीव दुन और बरयाधृति के द्वारा बराबर तादात्मक कठोरता के सृजन का प्रयास हुआ। रीतिकामीन धरलंकार-योजना और संगीत के सम्बन्ध की स्पष्ट करते समय इस सम्बन्ध में विचार किया जा चुका है, यत यहाँ सांगीतिक निबन्धनाओं के कतिपय ऐसे उदाहरण पर्याप्त होने जो अपनी भाव-धारा और शब्द-योजना के वैशिष्ट्य के कारण रीतिकामीन औररत्तात्मक रचनाओं के निकट हैं।

राग धडाना—भयताल (धध्यलय) १

स्थापी

सका बिसका धोस धूँ है धीक
धाई धोरंभनेव बधत धोई धरत ।

धंतय

इधर धसन हस्यो धेरावत ललभस्यो
धेन धन ललभस्यो धनिधाँ को हरत ।

निम्नरूप उदररूप में भी किसी धाह मरदान धनी के प्रथाप-वर्णन में ावपरक धनुकल धर-योजना का प्रयोग हुआ है। धाव ही इस धासिष्ठिकर में धग्याधित बधियों त्रैली बहु मनाधृति भी विद्यमान है जिसके धनरुधरूप के अपने धाधरशाताधों का बरोधान किया करते थे

राग धडाना—सुलताल (धध्यलय) २

स्थापी

धडि धसधारी धाई धरधान धनी ।

१ इधधय धाधाय धातलरुधे धृत 'हिङ्गुरधानी धनीत-धधृति धधिक
धुस्तक धालिका' धीया धाग (द्वितीय धरकररुध)

धुध-०१५ ०१२

२ धही धुध-०१५, ०१६

अंतरा

धोति के धमक से काँच बोधा
लंका मोहनी ।

सांगीतिक निबन्धनाओं में और रस की अभिव्यक्ति अधिक नहीं हुई। रीति काव्य में भी बीर-काव्य अधिक नहीं रखा गया। हूँ शृङ्गार और प्रेम को लेकर उस युग के काव्य और संगीत दोनों ही में बहुत कुछ लिखा गया। मानव-हृदय को अत्यन्त निकटता से स्पर्श करने वाली भावनाएँ प्रायः शृङ्गारपरक ही हैं। ऐसा कोई व्यक्ति कदाचित् ही मिले तो मिले जिसने कभी न कभी प्रेम की अनुभूति न की हो। इन भावनाओं की विषय अभिव्यक्ति के लिए काव्य और संघीत का सम्मिलित क्षेत्र अत्यधिक अनुकूल है। इसीलिए ऐतिहासिक मुक्तकों और सांगीतिक निबन्धनाओं में प्रेमाभिव्यक्ति की दृष्टि से जितनी अधिक समानता दृष्टिगत होती है उतनी अन्य भावनाओं में दिखावा नहीं देती।

रीतिकावीन कवियों ने शृङ्गार के ही अन्तर्गत नख-छिन्न शत्रु-वर्धन नामिका नेह इत्यादि के जो वर्णन उपस्थित किये वे सांगीतिक निबन्धनाओं के भीतों के किन्तु निकट हैं इसका विस्तृत छठे परिच्छेद में किया जा चुका है परन्तु उनका पुनः उल्लेख यहाँ बाँझनीय न होया तथापि प्रसंग के भाषण से यहाँ कतिपय अन्य ऐसे शृङ्गारपरक विषय उपस्थित हैं जो ऐतिहासिक कविता और सांगीतिक निबन्धनाओं में समान रूप से गृहीत हुए। उदाहरणार्थ शृङ्गार रस का निरूपण करते हुए ऐतिहासिक कवियों ने स्वप्न में प्रिय के वदन और फिर घाँव सुन जाने पर प्रिय के अभाव के कारण अश्रु-विह्वल मनोवस्था के एक से एक सुन्दर चित्र उतारे। सांगीतिक निबन्धनाओं में भी इस विषय को यथोचित स्थान मिला है। रात्रि के तिसीय प्रहर से सूर्योदय तक पूरा एक घण्टे के अन्तर में ऐसे गीतों की कमी नहीं है जिनमें स्वप्न-वर्तन जग्य-शैम्य को मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। वेद कोमलाप अश्रु इत्यादि ने इस विषय को लेकर जैसी रचनाएँ की हैं वैसी ही रचनाएँ मंगीतकों द्वारा भी हुई हैं। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित उदाहरण पर्याप्त होंगे

देख

हो सपने गईँ देखन को

बहु नाचत भन्द जसोमति को नर ।

वा मुसकाइ कै भाव बताइ कै
मेरो ई सँधि खरो पकरो पट ।
तौ भवि गाइ बगाइ सठी कहि
देख बभूनि मखौ बधि को बट ।
जायि परी तो न कागह कहु
न करम्ब न कृष न कालिदी को छट ॥ १

महरि महरि मीनी बूँद हैं परति मामों
बहरि-बहरि बटा बेरी हूँ मयन में ।
दानि कह्यो स्वाम मो सों अभी भूतिबे को दाब
रूनी ना समानी भई ऐसी हौँ मयन में ।
बाहुत उठई उठि गई सी तियोड़ी नीब
सौम मए भाव मेरे जायि ना अपन में ।
बाप्य सोभि बेसी तौ न बन हूँ न बनस्याम
बेई छाई बुरि मेरे घामु हूँ मयन में ॥१९

सोमनाथ

घाये गुणाम मपी सपने में समीप हमारे रतीक डरै नहीं ।
ही कितनी समुझई रही ठक मात्र सँ नैन उठे डहरै नहीं ॥
बाइन सौँ मुसकाइ कपू सतबाइ के बे ती परीक टरै नहीं ।
मैं ही घवानाथी परस्यो पुनिमंक हूँ मोहन प्रक भरै नहीं ॥ ३

ठाकुर

सागने हौँ कुसबाई भई हरि प्रक भरी भुज कंठज मेनी ।
हौँ नटुची कोठ मुखरि देखत मी त्रिन बाह मो बाह पड़ेनी ॥
ठाकुर भौर भये मये नीब कै देगहु तो पर मांझ धकेनी ।
भोग गुनी ठक पाम न मांझरो बाय न बाझरो कृष न बेनी ॥ ४

१ 'रीति-शुद्धार' (सम्पादक डॉ० लक्ष्मण, प्रथम संस्करण) पृष्ठ-१०२

२ वही पृष्ठ-१०३

३ 'सोमनाथ रत्नावली' (सम्पादक डॉ० धोंकार नाथ पाण्डेय) द्वितीय संस्करण, पृष्ठ-११

४ 'ठाकुर ठक' (सम्पादक लाला महाशानदीन) पृष्ठ-२०

निम्नस्व सामौतिक प्रातिष्ठिकाओं में भी स्वप्न वर्णन से चहुँपूत एसी ही व्याकुलता मुखर है

राग सोहणी—द्विताल (मध्यम) १

स्वायी

बेहने को जिया ससचाय
पिया के बरस बापी मगरी
जिया म माने मोछ ।

अंतरा

राउ सगइ पिया सपने में बेह
भोर भये नबर नायो पिया ।

राग ललित—द्विताल (बिलंबित) २

स्वायी

रैन का सपना री मैं काछें कू री ।

अंतरा

सोबउ सोबउ प्रांख सुमी बर
कोउ म पायो सपना ।

राग पुरिया—द्विताल (मध्यम) ३

स्वायी

सपने में घाने बबने मोरो मा
सुख बैन को क्त बिगर गई ।

अंतरा

हू जो चार्हुं सरारंगि यहू को माइ
पकर न सही पम उबर गई ॥

- १ उपर्युक्त : प्राचार्य मातङ्गदे हृत त्रिभुस्वामी संगीत-व्यक्ति कविक पुराणक
आतिशय सोहरा भाग (तृतीय संस्करण) पृष्ठ-४१७
२ उपर्युक्त : प्राचार्य मातङ्गदे हृत त्रिभुस्वामी संगीत-व्यक्ति कविक पुराणक
आतिशय बीबा भाग (द्वितीय संस्करण) पृष्ठ-१०६
३ वही पृष्ठ-४४८, ४४९

प्रेम-निमग्न नारी हृदय की व्याकुलता को अभिव्यक्त करने के लिए उस युग के कवियों ने अमरगीत के उस प्रसंग को भी अपना लिया था जिसके भाषम से भक्तिकालीन कवियों ने निर्गुण का खड्गन धीर सगुण का मण्डन करते हुए प्रेम की प्रतिमूर्ति योपियों के सरस हृदय की सुन्दर अभिव्यञ्जना की थी। रीतिकालीन प्रेम एकोन्मुख नहीं है। घट अमरगीत प्रसंग को अपनाते हुए उस युग के कवियों ने एक ही पुरुष की मोम्या बनी हुई धनैक प्रवीणता नारियों के भग्न हृदय की मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति की। अमरगीत प्रसंग का सम्यक ज्ञान न होने के कारण संगीतज्ञों ने इस सम्बन्ध में जो रचनाएँ की उनमें वर्णन की सांगोपातता चाहे मुक्तिमुक्त न हो किन्तु उनकी भावना रीति कालीन कवियों के अमरगीत सम्बन्धी मुक्तकों के ही धनुस्वरूप है। उदाहरणार्थ ये प्रातिष्ठिकाएँ प्रस्तुत हैं।

राम बिदावनी शारंग—बिताल (मध्यसय) १

स्वायी

ना बोलो बराम हूमी सन

नाम यई तुमरे डन ।

धंतरा

कुबजा नाटी घट मन भाई

धर ईसो हमरो संग ।

राम पूर्वी—बिताल (मध्यसय) २

स्वायी

मबुरा न जाओ कीन बहाँ ई

कुबजा नाटी नारि घनारि ।

धंतरा

हू ताने बारि धरज मोरि मानो

उतहू न जैयो हृष्य मुरारि ।

१ इच्छम्य आचार्य भातलण्डे हृत 'हिन्दुस्थानी संगीत-पद्धति क्रमिक पुरतक मानिका' तीसरा भाग (तृतीय संस्करण)

पृष्ठ-१०२

२ इच्छम्य आचार्य भातलण्डे हृत 'हिन्दुस्थानी संगीत-पद्धति क्रमिक पुरतक मानिका', दूसरा भाग (तृतीय संस्करण) पृष्ठ-२३७, २३८

‘बुबुबा नारी क प्रति मन भान की यही बात आमम की निम्नम्य रचना में भी विद्यमान है

“बे ठी ऊबो परम पुनीत पुग्य पाइरत
 भावन प्रबीन प्यार पावन हरम डू ।
 नाब की बहीरो हूम गोखु की बासु मनी
 खगिये गंवारि मुन रूप ही म रम डू ॥
 बहे कवि ‘आत्मम विराजित ई राजा कामू,
 राजनि क राजा पुन पूरन परस डू ।
 बिसर्या बघरो बन बोयी अर इन्द्रबासी
 प्रति मन भाई पाई बुबुबा सरस डू ॥ १

होती के बनम में भी रीतिकालीन कवियों और संगीतज्ञों ने समान रचि की है । संगीतज्ञों के लिए नभार की नामधे में होपी-बपन धनेहित रहना है । इससे अतिरिक्त कापी अथवा धम्य रागों में भी उम्हूनि होला का बनन किया । इसर रीतिकालीन कवियों ने भी होली क श्रुत्कारिक बातावरण से तान उठाकर होली क वर्नन में रस लिया । इस सम्बन्ध में पचाकर और खान की प रचनाएँ इष्टम्य हैं

पद्माकर

मदुर-मदुर मुख मुरमी बबाह, पुनि
 बमकि पमारन की धाम-धाम कै गया ।
 बहू ‘पद्माकर’ त्यो अमर अचोरन की
 करि कै बजापनी उपाछपी बिरी गया ॥
 का बहू ग्वापिना बुबासन के संम में
 अलय छविबापो रसरंग म भिजे गया ।
 एवं ग्यो रोहू छिरी एवं ग्यो छरा को छोर,
 प्युबा न है पयो हमारे मन भे पयो ॥ २

१ ‘आत्म-केलि’ बँबरपोत प्रथम (सम्पादक-जाना भयवानदीन) पृष्ठ-२०

२ ‘पचाकर-पचामुत’ (अपह्विनोर) सम्पादक भी विरचनाय प्रताप विषय
 पृष्ठ २०३, २०४ प्रथम संस्करण

श्लाघ

भाई एक धोरे तें प्रसीन नै किछोरी मोरी
 भायो एक धोर तें किछोर नाम हाम पै ।
 भाजि बस्यो छैल छोरो छोड़ पै छबीमिन नै
 छरी को उठ्य भाव मारी उर माम पै ॥
 'म्वाल' कवि हो हो कहि चोर कहि बेरो कहि,
 बीच में नचायो बेई तठ बेई ताम पै ।
 ताम पै तमाम पै गुलाम उकि जायो ऐसौ
 मयो एक धीर नन्दनाम नन्दनाम पै ॥ १

इन रचनाओं के धनुष्य सामीतिक मातृश्रित्कार्य ये हैं

राग भैरवी—जमार (बिलंबित) २

स्वायी

डार केसर पिचकारि सखी

मोदे कृषर कन्हैया ।

प्रंतरा

बाट घाट में रोच्य कंचठ

बहा कर्क मोरी दैया डारत ।

राग पुरिया—जमार (बिलंबित) १

स्वायी

कान मोरी धंगीबा रंग से भीजीई

नय हो बिलारी बिज के ।

प्रंतरा

जाने मा ईनी कैं यहें रानुंगी

मारी ईनी बसोरा के डार ।

१ 'म्वाल-रत्नावली' सम्पादक कवि 'किचर' संस्करण सन् १९४१, पृष्ठ ३८

२ इत्यथ्य आचार्य भालवन्धे इत 'हिन्दुस्थानी संगीत-पद्धति क्रमिक पुस्तक मातृश्रित्' दूसरा भाग (तृतीय संस्करण) पृष्ठ ४२१

३ इत्यथ्य आचार्य भालवन्धे इत 'हिन्दुस्थानी संगीत-पद्धति क्रमिक पुस्तक मातृश्रित्' चौथा भाग (द्वितीय संस्करण) पृष्ठ-४७५, ४७६

नायिकाओं के मान बर्चन और मान के निरस्त करने के हेतु ब्रुचीप्रयोग भी ऐतिहासिकीन मुक्तकों में पर्याप्त हुआ है। मानिनी का उदाहरण उपस्थित करते हुए पद्याकर ने ब्रुची के मुख से यह कहलवाया है

‘मोहि तुम्हें न उम्हें न इम्हें मनभावती को सु मनावन ऐहै ।

स्वों ‘पयमाकर’ मोरन को सुनि सोर कही नहि को मकुनैहै ॥

बीर धरो किन मेरे गुबिर बरीक में जो या बटा पहरेहै ।

प्रापुहि तैं तनि मान तिया हृदने-हृदने गरुनै मयि वैहै ॥”^२

बिहारा के निम्नलिखित बड़े खाल में भी नायक की ब्रुची मानिनी के मान-भोजन में उत्तर है

राज बिहाम—पृच्छात्त (बिलंबित) ३

स्वायी

कवन डंग तोरा सबनी दू तो

इतराव उतराव बीती जाव ।

अंतरा

अंङ मान ऊठ तेरी बसा लेहुं

सीत मवा रहि जाव ।

ऐतिहासिकीन मुक्तक और संगीत से सम्बन्धित इस विवेचन से यही निष्कर्ष निकलता है कि उस युग में इन दोनों की मूल प्रकृति में अद्भुत समानता विद्यमान थी। यह ठीक है कि काव्य और संगीत दोनों एक ही कमाएँ नहीं हैं किन्तु एक दूसरे की सहायता लेकर दोनों अपने-आप का पूर्णता प्रदान करने में प्रबल सहज रहती हैं। फलतः ऐतिहासिकीन कवि ने संगीत के उन तत्त्वों को परिष्कृतप्रकार में प्रयोग किया जो उनके मुक्तकों का कलात्मक सम्पन्नता प्रदान करने में सहायक हो सकते थे और ऐतिहासिकीन संगीतज्ञों ने उस युग की काव्य-कला से जो कुछ ग्रहण किया वह तो रुझिबद्ध होकर अभी तक संगीत-कला में अपना विशिष्ट स्थान बनाये हुए है।

२ ‘पद्याकर-वंशामृत’ (अपभ्रंशिनोः) सम्पादक श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
पृष्ठ-१११ प्रथम संस्करण

३ ब्रह्मस्य आचार्य आतङ्गद इत्य ‘हिन्दुरचानी संगीत-व्युत्पत्ति’ नामिक पुस्तक
मालिका, तीसरा भाग (तृतीय संस्करण) पृष्ठ-२११, २१२

नष्कप

- १ ऐतिहासिक में कवि और संगीतज्ञ दोनों ही दरबार की घोमा बे घटा कवियों पर संगीत का तथा संगीतज्ञों पर उस युग की मुक्तक रचनाओं का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था ।
- २ ऐतिहासिक कवियों ने यदि अनुप्रास शीघ्रा, ममक इत्यादि सभ्यसंकारों और अन्य छन्दों से अपने मुक्तकों में प्राकृतिक संगीत भरने का प्रयास किया तो उस युग के काव्य में प्रचलित तत्कालीन भक्ति मीति और प्रेमसङ्गीत भावधारणों को अपनाकर तत्कालीन संगीतज्ञों ने सांघीतिक निबन्धनाओं के गीत भी रचे ।
- ३ ऐतिहासिक कवियों की जिन मुक्तक रचनाओं में भावागत सरसता और भावगत उत्कृष्ट विद्यमान है उनमें परोक्ष रूप से प्रदीप्त मुक्तक की विशेषताएं उभर आयी हैं । ऐसी रचनाएँ प्राकृतिक संगीत से तो सम्बद्ध हैं ही क्रियात्मक संगीत के लिए भी उपयोगी हैं ।

रोतिकालीन प्रबन्ध काव्य और संगीत

(५)

प्रबन्ध काव्यों की रचना में कवि का दृष्टिकोण विषयप्रधान रहता है फलतः वैयक्तिक रागात्मक अनुभूति को धमिभ्यक्त करने का उस प्रायः प्रवृत्ति नहीं मिलता। सम्भवतः इसी प्रतिबन्ध की यह प्रतिक्रिया है कि प्रबन्ध काव्य का लेखक प्रत्यक्ष रूप से नहीं तो परोक्ष रूप से ही भीत सिक्तने के लिए भासा पित हो उठता है। प्राबुतिक युग में 'कामायनी' 'सात' 'पञ्चोपनिषद्' इत्यादि में भी गीतों का सुन्दर समावेश हुआ है। बस्तुतः कवि की वैयक्तिकता उसकी रचना से एकान्ततः दूर रह ही नहीं सकती अतः जहाँ वह प्रत्यक्ष रूप से भीत नहीं लिखता वहाँ वहाँ न कहीं किसी पात्र से धारणीयता स्थापित कर के उसी के माध्यम से अपनी वैयक्तिक रागात्मकता को धमिभ्यक्त कर उठता है। प्रबन्ध काव्यों में जहाँ कहीं ऐसी वैयक्तिकता मुखरित होती है वहाँ भीतिकाम्य के तत्व उभरने लगते हैं।

गीत मुख्यतः दो ही तर्कों पर धारित है। एक वैयक्तिक रागात्मक अनुभूति की तीव्रता पर और दूसरे उस संगीतात्मकता पर जो धान्तरिक और बाह्य दो प्रकार की होती है। अतः ऐतिकालीन प्रबन्ध काव्य और संगीत के पारस्परिक सम्बन्ध पर विचार करते समय इन दोनों बातों पर ध्यान रचना आवश्यक है।

जहाँ तक मात्र संगीत का सम्बन्ध है भीत में वैयक्तिकता अधिभावंतः प्रयो जनीय नहीं है। दम-वीच नहीं मँकड़ों भीत ऐसे मिल जायेंगे जा विषयि प्रधान न होकर विषय प्रधान है। ही इतना धरव सत्य है कि भीत जब तीव्र वैयक्तिक रागात्मक अनुभूति के माधुर्य-दीर्घव से सम्पन्न होता है तब उसकी संगीतपरक प्रपचीयता में भी निरवय ही वृद्धि हो जाती है। तथापि इस तत्व के धभाव का यह धर्य नहीं कि प्रबन्ध पाये नहीं जा सकते। सुमनी इत 'राम अरित मानस को लीय गाकर हो मुनते मुनाने हैं। मँकड़ों बर्यों न कपावाकक इसे पाकर ही भीतकीनारंभ करते धाये हैं। धान्द धरत भी धाना हो जाता है त्रिसे मुनते के लिए लीयों की भीड़ जमा हा जाती है। यह बात धुगरी है कि प्रबन्ध

काम्य उस प्रकार नहीं माये जाते जैसे गीत गा लिया जाता है। गीत पढ़ी वो पढ़ी का याता है धीर प्रबन्ध काम्य अपने धाकार धीर श्रोताओं की भङ्गा के अनुसार घण्टो दिनों सप्ताहों धीर महीनों का गीत है।

ऐतिहासिक वस्तुतः प्रबन्ध काम्यों के अनुकूल हुए न था। ऐश्वर्य धीर विभास में निमग्न रहने वाले राजा महाराजों की धर्मिकि चमत्कारपूर्ण मुक्तक रच नाओं की धोर तो ही सकती थी किन्तु प्रबन्ध काम्यों के रसास्वादन के लिए उनके पास समय ही नहीं था? अतः कुछ कवि मुक्तकों में ही अपना कौशल दिखा रहे थे। कुछ कवियों ने प्रबन्ध काम्य अवसर लिये परन्तु उनमें यथार्थ कवित्व का भाकपण कम ही है। इस युग के कथा-प्रबन्धों में सबसे सिंह का महाभारत मुख पोटिन्द सिंह का बग्डी चरित ओपरराज का हम्मीर रासी मुखन का मुजान चरित छत्रसिंह की विजय मुक्तावसी लाल कवि का छत्र प्रकाश बुजान मिश्र का नैपथ्य चरित बजबासी बास का बजविभास, बेबीरत की बीताल पञ्चीसी, हरनाचमय की भावबानस कामकम्बला मधुसूदन बास का रामावबमेव चन्द्रसेखर का हम्मीर हठ भीयर का जयनामा पद्माकर का राम रसायन गजसिंह की भापा छत्रसती कृष्णदास की भापामाणवत् इत्यादि के नाम उल्लेखनीय हैं किन्तु इन कथात्मक काम्यों में कवित्व की दृष्टि में चार पाँच ही ऐसे हैं जिन्हें महत्व प्रदान किया जा सकता है। चन्द्रसेखर के हम्मीर हठ, लाल कवि के छत्रप्रकाश ओपरराज के हम्मीर रासी धीर मुखन के मुजान चरित में इतर कथा-काम्यों की अपेक्षा अधिक रसात्मकता है।

छत्रसिंह के महाभारत में चाहे काम्योचित रसात्मकता अधिक न हो परन्तु सरल बजबाया में महाभारत की कथा होने के कारण इसमें प्रसार गुण अधिक पा गया है। भारत की जनता स्वभाव से ही धर्म प्राण है, अतः गावों में आज भी छत्रसिंह के महाभारत का खूब प्रचार है। लोग इसे याकर ही पढ़ते हैं धीर कभी कभी तो कथावाचक भी तुमसी कृत 'रामचरितमानस की तरह इसकी कथा कहने हुए देखे जा सकते हैं। इस प्रबन्ध क कर्णपत्र की कतिपय पंक्तियाँ ये हैं

“यह कहि नीलबाण कर सीने जो घर ऋषि दुर्वासो सोन्है ।
हृत्पदैव रथ को मज दीव सब पारव की रथा कीरै ॥
पोषित बाण विजे मंभाना देगि गम्य महि भाँजि बगाना ।
जाके रथक भी जयजाता ताको कर्म कीन्हु बहै पाता ॥

हृदय ताकि मारेज तब बाना पसटि न करहुँ फेरि संभाना ।
 यह कहि बनपकन्य मगि ताना कर्म हाय झूयो तब बाना ।
 पन्थरिस सर बाबठ जैसे झूँ बख इन्द्र कर जैसे ।
 धरुन लये कठिन घर मारन पै न सके यह बाध निवारन ॥
 प्रायो बाध कष्ट तकि बर्बाहि, मन्थिपोप बाजेउ प्रभु तबहीं ।
 पुटिके घसब रबहि द्विम प्रायो कटो मुकुट धीकृष्ण बचामो ॥
 मुकुट काटि घर बेयेउ घरणी जय में रही सदा यह करनी ।
 पन्थ कृष्ण पाषण्ड सन माका बीनरबास पारबहि राखा ॥
 जाके सारथि चक्रधर, मारि सके तेहि कौन ।
 धरुन के रसाक सवा श्रीपति राबारौन ॥” १

सबलसिंह का यह सम्पूर्ण वन्य बोझ-बीवाइयों में निष्ठा बसा है। कहीं-कहीं सोरठा छन्द का भी प्रयोग हुआ है, अथ कथावाचकों के लिए 'राम चरित मानस' की शैली पर इसकी कथा को गाकर सुनाना सुविधाजनक भी होता है। इसर सामान्य जनता ने सुनयी कृत 'राम चरित मानस' को बिलना सुना है उतना महाभारत को नहीं अतः जब 'महाभारत' गाकर सुनानी जाती है तब नवीनता के कारण जनता इसकी ओर पर्याप्त आकृष्ट होती है।

सूरज ने 'सुजात चरित' में भरतपुर के महाराज सबलसिंह के सुपुत्र सुजात सिंह (सुरजनक) के सात बच्चों का वर्णन किया है। सूरज की रचना में ऐसे घटेक स्वतन्त्र बरे पड़े हैं जो मात्र प्राञ्चरिक संगीत के पवित्रम मोह के कारण ही लिखे गये प्रतीय होते हैं। उदाहरणार्थ निम्नांकित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं। माष की दृष्टि से ये पंक्तियाँ महत्त्वपूर्ण नहीं हैं, यहाँ तो कवि ने प्रशुभाव-बोजता और कर्म-कट्ट घमनाश्री के समावेश से मात्र प्राञ्चरिक संगीत द्वारा रक्षसेन के विनय में ध्वनि का रंग भरने का प्रयास किया है

छन्द—बृज पुठ के काज बृह मट भए धनम्भुज ।
 सूरज के मुख बूर नायरनु क्षुमि नए पुम ॥
 बरि बरि मुकठनि हृष्य सेसु घांगन पटतारठ ।
 सोह पन्व जमडाइ बाग किरवान रीमारठ ॥

परि घम्य पाव फर मग में खग कइत कुम्भिन बयिय ।
हुं स्वामि-काम संग्राम में धीर धीररस में पयिय ॥

विभंगी—उप्यों मरहूदटे भासे पदटे ली ली कइटे घरपदटे ।
इबुं बबबासी जे बभरासी हुने हुमासी भरपदटे ॥
हय छौं हय बुदटे मेकु न हुदटे पैगौं कइटे छिर फुदटे ।
छोटेठौं भरि बुरटे कैसो बुदटे मुदटक मुदटे भुब सुदटे ॥
फिरि फेरि मटकके पकरि पटकके छाब सटकके भाक कहूँ ।
इक इक हटकके रैत बइकके सैम सटकके भोग बहूँ ।
बिन हबट मटकके भरत बटकके भास मटकके देखि रहूँ ।
इक जात पटकके खग सटकके छीस कटकके धीर गहूँ ॥ १

‘मुजान बरित’ में कवि ने युद्ध का वर्णन ऐसे ढंग से किया है मानो वह स्वयं युद्ध में उपस्थित हो धीर विभीषणकी पारस्परिक स्थिति से उत्साह के साथ उस युद्ध का वर्णन कर रहा हो। यद्यपि यहाँ उसकी धारणीयता अधिक हो गयी है वहाँ उसकी अभिव्यक्ति में भी धारणीयता उभर आयी है

‘इकनि के छोर बहूँ छोर महाधोर सुरे
मानो बन धोरि धोरि उठै सुब धोर लें ।
बबस पताका त बसाका नीम पीत समान
कैबों रंज रंज के बिहुंन धारि मोर लें ॥
मीत मनु धामिनि मयंद-मह धीर पाट
बाजत हयंज ज्यौ परनु जस जोर लें ।
पावम प्रवारा कौ बइत पाक सासन ज्यौं
सफररजंग ने पयानो करवौं कोरलें ॥”२

‘मुजान बरित’ में कवि की धारणीयता जैसी स्तुतिपरक छप्पयों में दृष्टिगत होती है वैसी अन्य स्थलों में नहीं। भावानुकूल शब्द-योजना सकारक

- १ ‘सूदन रत्नावली’ (सम्पादक ‘सरपमिय’) वृत्त-४४,
संस्करण—सन् १९४३
- २ ‘सूदन रत्नावली’ (सम्पादक ‘सरपमिय’) वृत्त-६९,
संस्करण—सन् १९४३

प्रवाह और भारतीयता के कारण ये छप्पय सभी की दृष्टि में भी उपयोगी हैं। उदाहरणार्थ वे छप्पय ये हैं

‘धरि सत रज तम रूप भवति पावति सहारति ।
 धारत सखि धुररुज विपति प्रधुरन को पारति ॥
 धूम बड धर मुड महिय रकता रज भंजति ।
 सिधु निमुम्नु बर्बाई बाह रम सोकन रंजनि ॥
 बाकी विभूति परब्रह्म निरगुन ते पुनमय बरनि ।
 मुनि बेब मनूज सुवन रतत जपति बयति संकर बरनि ॥’^१

‘सुनिष्ठ केस धरर सुनिष्ठ भेस सोधन रिनेधु सिधु ।
 बन्धमान भय नैन ज्वालमासा वृषाम किमु ॥
 कर कपाल नीधुन सुभ्याल सय स्वान मान-धर ।
 धरि विमुस पद्भ्याम इमर कर मम्म रिगम्बर ।
 विबनिबानर भममाम बुह धरर मुरापानहि कररि ।
 जय बटुकनाथ जयनाथ जय भूत नाथ जय उषररि ॥ २

‘सुबान धरित’ की प्रस्ता ‘हम्मीरूठ’ का काव्य-शैलीय जहाँ अधिक समृद्ध है। इस पुस्तक का सम्पादन बाबू जगन्नाथ दास ‘रत्नाकर’ ने किया था। कापी नाथी प्रचारिका ममा में यह पुस्तक प्रकाशित भी हो चुकी है। इसके लेखक चन्द्रशेखर बाबूपेयी ने इसमें रणधम्मयङ्क के राजा हम्मीर देव और दिल्ली के सम्राट्हीन के बीच हुए युद्ध का वर्णन किया है।

‘हम्मीरूठ’ के अनेक स्थान ऐसे हैं जहाँ समुचित शब्द-योजना के साथ धार्मिक संशोधन का पूर्ण उत्कर्ष हुआ है। कवि की भारतीयता हम्मीर देव के साथ अधिक होने के कारण हम्मीर की उचितियों के साथ कवि की वैयक्तिकता ने तादात्म्य स्थापित कर लिया है। ‘धरर’ हम्मीर की उचितियों वर्णनात्मक प्रसंग को मात्र धारने बढ़ाने वाली ही नहीं रहे मयो हैं जिनमें कीर्तिशाल्यापित तादात्म्यक अनुभूति का स्पन्दन भी है। ‘भगोष’ अब हम्मीर की धरर में था जाता है तब कवि हम्मीर के उदाह का वर्णन करते हुए कहता है

१ ‘सुबान रत्नावली (सम्पादक ‘सत्यप्रिय’)

पृष्ठ-८८, संस्करण-सन् १९५१

२ वही पृष्ठ-१७

भुज करकत हरपत सुनत सरलागत की बात ।
 बोले बिहंस हमीर तब उमम न गात समात ॥ १

इसके धाये हमीर के बचन ये हैं

हमीर श्रेय उवाच—स्यमप

उरै मानु पञ्चिम प्रतच्छ विन चाम् प्रकाशै ।
 उमति मंन बह बहै काम रति प्रीति बिनाशै ॥
 तवै पीरि परबन प्रपन्न ध्रुवप्रासन चस्मै ।
 प्रचल पीन बह होई मैव मंवर-विरि हस्मै ॥
 मुरतब सुखाई सोमस मरै मीर संक सब परिहरी ।
 मुक्त बचन बीर हमीर को बोलि न यह बहुटी टरी ॥ २

ससै मानुविम्मान विक्रम ताप सति भवै ।
 प्रचम प्रबनि प्रसमान शशी दिति बरबर कवै ॥
 नश्यै पन पनचोर जोर मादत सब चस्मै ।
 सकरपन फु करै काल हुकरै उतस्मै ।
 मरजाद छाड़ि सागर चले कहि हमीर परलै-करल ।
 धामाचरीन पावै न ठी मैं मगोम टक्की घरम ॥ ३

राजा उवाच

पड़ नश्यै मोहू बहै परि बोधै तिर बोम ।
 कटि कटि तन रग मैं परं ठी नहि देहु मंजीत ॥ ४

कथात्मक प्रबन्धों के धार्तरिकन रीतिकाम में धनेक वर्चनारमक प्रबन्ध भी लिख मय । वस्तुतः वर्चनारमक प्रबन्ध बड़े प्रबन्ध काव्यों के अन्तर्गत ही धा जाते

१ 'हमीर हठ' (सम्पादक बाबू अनन्ताथ बात ररलाकर) पृष्ठ-११

द्वितीय संस्करण

२ वही पृष्ठ-११

३ वही, पृष्ठ-११

४ वही पृष्ठ-१४

हैं। बड़े प्रबन्ध काव्यों में वन-विहार, मृगया जस विहार, मूसा होसी-वर्णन इत्यादि के प्रसंग रहते ही हैं, परन्तु जिस प्रकार नव-दिल आतुरवचन जैसे विषय मृङ्गार रस के क्षेत्र में घाते हुए भी काव्य-व्यङ्ग्य में स्वतन्त्र रूप से प्रहीत हुए जसी प्रकार मानसीसा, बानसीसा मंगल-वर्णन बग्मोत्सव वर्णन मूला होती इत्यादि विषयों पर भी स्वतन्त्र रूप से प्रबन्ध काव्य लिखे गये। राधावल्लभीय सम्प्रदाय के बाबा हित भूम्बावन वास के 'भीसाङ्क सागर' में भीराबा बास विनोद की राधा साङ्क सुहाय, भी कृष्ण घगाई इत्यादि ऐसी ही रचनाएँ हैं। इस प्रकार की रचनाएँ प्रायः वेम पदों में लिखी गयी हैं। य वेम पद स्वतन्त्र रूप से प्रथम भी पाये जा सकते हैं और यदि क्रमानुसार पढ़ें या पाये जाय तो इनमें कथा का भी थोड़ा बहुत निर्बाह होता प्रसता है। उदाहरणार्थ 'भी साङ्क सागर' का प्रथम पद ही रामकली राग में है। इसमें कवि ने 'नर सुत कृपमानु जनया भरित' १ वर्णन किये जाने की सूचना दी है। इसके बाद कवि ने जो पद लिखे हैं वे प्रतीक स्पृश रूप से कथा के प्रसंग को भी प्रागे बढ़ाते हैं और स्वतन्त्र रूप से भी वेम हैं। उदाहरणार्थ हमका दूसरा और तीसरा पद इस प्रकार है

राय रामकली—पद

देखी प्रात कीतुक एह ।
 पौड़ी कीरति भ्रक राधा रह्यो बयमपि गेह ॥
 बदन ससि तें सतगुनों बाढ़त पु छिन छिन तह ।
 बगि बगि रानी बहुरि पौढ़ति राति करि सखिह ॥
 कुंवरि भंजस यहि कहति मैया बचन सुनि लीह ।
 नधि मयी निधि तिमिर है नवी मोर लाइ बेह ॥
 गुनित मुनि बननी मई बरप्यी धभी मनु येह ।
 भूम्बावन हितक्य भ्रक लयाइ भीजत गेह ॥ २

राय रामकली—पद

गाड़ी दही री री माह ।
 मोर मागी भूय भी राधा कइति तुतराह ॥

१ भी हित भूम्बावन वास हित 'भी साङ्क सागर' पृष्ठ-१ १

प्रथम संस्करण

२ वही पृष्ठ-२

नीर बस कीरति जु अतिलकि मचसि बेति बवाइ ।
 मोहि लैके घंफ मीमा मसी बेवि जिमाइ ॥
 भीबामां बनिहै बपब ली बाइमी बइकाइ ।
 बिबुक गहिहै कुबेरि ठिनकति उठि भाससहि वंवाइ ।
 मसी मुख के आवने गहि प्रात वाग्यी बाइ ।
 बहुत निधि यी कहुति रानी लेति घंफ मगाइ ॥
 बेटी चंद प्रकाश मबहीं उठी कहा बराइ ।
 बंधु लें बिनि डरि प्याऊ बही लोहि मवाइ ॥
 बिरियां बुहुकति जु बननी मुनीं किन पितमाइ ।
 बाबा छों बनिहौं सिबाबति मोहि राति बताइ ॥
 नीर अहुराई उठी रानी लवै मकुमाइ ।
 मैन पूरित बारि बूबति बबन पुनि पछितराइ ॥
 भीर मुब जु प्रछाम भाई बही सिठा मिलाइ ।
 भाइ मीबति हिये अपने कर जु पान कराइ ॥
 बहुरि मठरी रस पागी बई हांय कुंवरि वहाइ ।
 धबिर दोसी बेठि बननी भुरि बेठि बसाइ ॥
 मुपुटनि पुनि होति मुहु मुहु बरन बरत उठाइ ।
 सोभा की बिरबा मनीं यह पबन भोका बाइ ॥
 भान बरी घोट हूँके निरति परम सिहाइ ।
 बुबाबन हितरप जैसे रंक पाती पाइ ॥ १

कवि ने पारम्भ के छाठ घाठ पद रामकली में ही लिखे हैं और इन सभी में प्रायः प्रातःकाल-सूर्योदय के क्षिप्रकालों का उल्लेख हुआ है। रामकली भी प्रातःकालीन मन्त्रिप्रकाश राम है घन पद ने भाव घोर उठी के अनुकूल राय-बपन इन पदों के श्रेयस्व की घोर भी स्पष्ट कर देता है। इन पदों में कवि की मन्त्रि-भावना घोर लम्बवता भी विद्यमान है। रामकली प्रातःकालीन मन्त्रिप्रकाश राम होने के कारण मन्त्रि-भावना के भी अनुकूल पड़ता है।

इन पदों के प्रबन्ध काम्यों में दान सीमा मानसीता मूमा होमी धारि के प्रसंग प्रायः भवनों के लिए माधुहिक मान की दृष्टि से यतीक उपबोगी होते

हैं। मन्दिरों में मूक-हिंडोले होयी धारि के ऐसे बर्ननात्मक प्रसंग साधन-मात्रों या फायुन में होने वाले विशेष उत्सवों पर बड़े श्रावण से गाये जाते हैं।

यस्तु, ऐतिहासिक प्रबन्ध काव्यों का भी संगीत से अनिष्ट सम्बन्ध रहा है। प्रबन्ध काव्यों में धार्मिक संगीत बिलग नहीं होता इसके पठित प्रबन्धों में जो स्वतन्त्र मार्मिक और संगीत के लिए अप्रीयी होते हैं उन्हें स्वतन्त्र रूप से भी गाया या लिखा करते हैं मन्त्रिपरक बर्ननात्मक प्रबन्ध जो लिखे ही सामूहिक नाच के लिए जाते हैं।

निष्कर्ष

- १ प्रबन्ध काव्य में जहाँ कवि वैयक्तिक रागात्मक अनुभूति को व्यक्त करने लगता है वहाँ ऐतिहासिक की विशेषताएँ कमरने लगती हैं, फलतः इसमें भी संगीत-तत्त्वों का समावेश हो जाता है। धार्मिक संगीत का इनमें भी एकान्त समावेश नहीं रहता।
- २ प्रबन्ध काव्य भी वैयक्तिक है। अविच्छिन्न प्रबन्ध काव्य किसी न किसी रूप में गाये जाते रहें हैं यह बात दूसरी है कि उनके गाने का हृदय मुक्तकों या प्रगीत मुक्तकों से कुछ भिन्न होता है।
- ३ क्लासिक प्रबन्धों को मन्त्रियों में गाने की परिपाटी अभी तक जाती या रही है।

परिच्छेद ६

उपसंहार

उपसंहार

परिच्छेद-६

प्रस्तुत अध्ययन के निष्कर्षस्वरूप यह कहा जा सकता है कि रीतिकाल में संघीत और काव्य साब-साय चलते हुए दृष्टिमोचर होते हैं। रीतिकालीन कविता के विषय विद्यालय में संघीत के तत्त्व समाहित हो गये थे और यदि इन तत्त्वों के दृष्टि से रीतिकालीन कविता को देखा जाय तो उस युग के कवियों की कला-आनुषंगिक समझ में सहायता ही नहीं मिलती। तत्कालीन कविता का रसास्वादन में भी घबिहक ध्यान देने लगता है।

रीतिकाल में परम्परागत शैली का रीतिकालीन रूप कम मिलता है, परन्तु कविता के विषय विद्यालय में प्राथमिक संघीत का प्राथमिक निस्सन्देह बड़ा हुआ शिक्षापी होता है। इस युग के कवि जैसे सूर, तुलसी के समान भक्त भावक न हों किन्तु उनकी संगीताभिरुचि कदापि कुच्छिन्न न हुई थी। ऐसा लगता है मानो परम्परागत शैली के रीतिकालीन को न लिखने के कारण ही उनकी अनूठे संघीताभिरुचि कविता-संकेतों का प्राथमिक संगीत में प्रकारान्तर से अपनी कृति लिखने लगी थी। क्रियात्मक संघीत में प्रयोग बनाने-बाने 'तबो मार कबित्त रस सरस राग रति रंग की गहराई को समझने वाले बिहारी 'राग रत्नाकर' का रचनायिता देव इन्द्रजीत सिंह के दरबारी संघीत को समझने वाले कण्ठ संघीत के पारिभाषिक छन्दों को लेकर अपनी कविता में बनकर दिवान बाल सेनापति जैसे कवि जिस युग में विद्यमान हों उस युग की काव्य-आनुषंगिक संगीत-तत्त्वों का समाविष्ट हो जाना कोई बड़ी बात नहीं।

इस युग के कवियों की कविताओं का तत्कालीन संयोग्यों पर भी प्रभाव पड़ा। फलतः अपनी साहित्यिकार्यों में उन्होंने इन कवियों का अनुकरण भी किया। रीतिकालीन यह प्रभाव वर्तमानयुगीन सांघीतिक निबन्धकारों में भी प्रभावित विद्यमान है। यही नहीं श्री कृष्णानन्द व्यास द्वारा राग-रस्यदुग्ध से यह

भी प्रमाणित हो जाता है कि उस युग के प्रायः सभी प्रमुख कवियों की ऐसी रचनाएँ जो वैयक्तिक सामाजिक अनुभूति से सम्पन्न थीं यद्यपि अपने विषय या अन्य सांगीतिक विशेषताओं के कारण उपादेय थीं संगीतज्ञों द्वारा प्रपना सो नहीं। वेद है कि राम कम्प्युम' में सुगृहीत ऐसी रचनाओं की स्वरनिर्माण मात्र उपलब्ध नहीं है अतः क्रियात्मक संगीत के क्षेत्र में बाहे ये रचनाएँ अधिक उपयोगी सिद्ध न हों परन्तु इससे ऐतिहासिक कवियों की रचनाओं का येवल सम्बन्धी ऐतिहासिक सत्य भाण्छादित नहीं हो जाता।

यहाँ यह प्रश्न स्वाभाविक ही है कि यदि उपर्युक्त उपपत्ति सत्य है और ऐतिहासिक मुक्तक रचनाएँ सांगीतिक निबन्धनाओं में डलने की इतनी क्षमता रखती हैं तो प्रायःकस नायक उन्हीं को क्यों नहीं गाते ? इसके मुख्य कारण दो हैं। एक तो यह कि किसी कविता को सांगीतिक निबन्धना का रूप देने की क्षमता साधारण गायकों में नहीं होती। कविता को प्राक्षिप्तिका का कच्चा पदका रूप प्रदान कर देना तो किसी सामान्य संगीतज्ञ के लिए भी कठिन नहीं है, परन्तु जिसे अदृष्ट 'बन्धित' कहा जाता है उसके निर्माण के लिए जिस कुशलता की अपेक्षा होती है वह सभी संगीतज्ञों में सहज सुलभ नहीं है। दूसरी बात यह है कि संगीत कालांतर में ऐसे लोगों के हाथों में पड़ गया जो समाज के निम्नवर्ग के लोग थे। अधिष्ठित होने के कारण साहित्य से उनका सम्बन्ध न था। बाण्यकार के लिए संगीतज्ञ के साथ कवि होना जो प्रतिबन्ध था वह इस प्रकार भंग ही नहीं हो गया प्रत्युत ऐसी भी नीत रचनाएँ हुईं जिनके एक-मात्र बोल भले ही मानिक हों छेप संघ भ्रामक या निरर्थक रहे। प्रसाहित्यिक होने के कारण अनेक गायकों के लिए ऐतिहासिक कवियों की मुक्तक रचनाओं का प्रास्वादन कठिन हो गया। अतः शास्त्रीय संगीत (उप दारी संगीत) धीरे धीरे शब्दनिष्ठ और अर्थनिष्ठ कम होता हुआ प्रमानत नादनिष्ठ रह गया। इतर संगीतज्ञों में 'बुरानेबारी या यानरानी प्राक्षिप्तिकाओं के प्रति मोह ऐसा बृह हो गया कि अपने अपने पराने की बन्धितों के प्रतिरिक्त उन्हें और कोई बन्धित प्राण्य न थी। निरर्थक ही ये बन्धितें तान और स्वर-योजना की दृष्टि से अदृष्ट थीं, परन्तु दनक बोल उतन कवित्वमय न थे फर भी ये ही बन्धितें अधिक प्रशंसित हो गयीं। इस प्रकार मध्ययुगीन कविता की जिन रचनाओं ने प्राक्षिप्तिकाओं का रूप ग्रहण कर भी लिया था वे पीछे छूटने लगीं।

युव यह फिर बतल रहा है। पाकायनामों के विभिन्न कैर्डी से गूर, सुलसी

गीत इत्यादि के पदों के प्रतिरिक्त रीतिकामीन कवियों के बोधे, कवित्त सबैये
 त्यादि भी प्रब गाये जाने लगे हैं । निश्चय ही यह उस बाह्य संगीत की बात
 जो मलिकामीन प्रबवा रीतिकामीन कविता में प्रादुर्गिक संगीतज्ञों द्वारा
 मनाया जा रहा है किन्तु इस बात को यदि छोड़ भी दिया जाय तब भी इस
 ग्रन्थ को बिस्मृत नहीं किया जा सकता कि संगीत और कविता का पारस्परिक
 सम्बन्ध है, प्रतिष्ठ है । रीतिकामीन कवियों ने तो एक-एक शब्द को बड़ी
 कारीगरी के साथ अपनी कविता में सजाया था । इस कारीगरी में जो
 संगीतात्मकता समाहित हो गयी है वह रीतिगुणीन कविता-देवियों के कानों
 में सर्वत्र गूँबती रहेगी ।

प्रस्तुत अध्ययन की प्रतिपत्तियों को धीरे 'मुकुटबन्ध' में तथा शोध लच्छ के
 पर्येक परिच्छेद के अन्त में पहने ही संकेत किया जा चुका है तथापि प्रथम
 उपस्थापनाओं को यहाँ भी इंगित कर देना अप्रासंगिक न होना । प्रस्तु, इस
 ग्रन्थ के प्रमुख निष्कर्ष ये हैं

१ संगीत के स्वर अस्तुत' नामक शब्द हैं जिनकी धर्म-सम्पत्ति अपनी
 प्रकृति में सूक्ष्म किन्तु अतीव समृद्ध होती है । काण्ड-भेद के द्वारा ये
 स्वर विभिन्न प्रकार की अभिव्यक्तियों में ऐसी प्राणवृत्ता समाहित कर
 देते हैं जिसका अर्थवत्त्व ग्रहण करके कवि की वाणी हृदय को अतीव
 निकटता से स्पर्श करने की प्रमोद शक्ति प्राप्त कर लेती है । अस्तुत'
 हिन्दी के सम्पूर्ण पर-साहित्य में यही विशेषता कूट कूट कर मरी हुई
 है अतः इस वैशिष्ट्य पर कृष्टिपात किये बिना रीतिकामीन पर-साहित्य
 का अध्ययन भी सर्वांगीण नहीं हो सकता ।

२ मलिकामीन के परबाद हिन्दी-साहित्य में जिस रीतिकाम का प्रादुर्भाव
 हुआ वह अस्तुत' कसायुग था । काण्ड और संगीत एक दूसरे को अनु-
 पूरक कसाए हैं अतः रीतिकामीन काव्य-कला में संगीत-तत्वों का धीरे
 भी अधिक समावेश हो गया । उस युग के कवि और संगीतज्ञों का
 राज परिवारों में यह अस्तित्व था अतः कवि को संगीत बानुरी और
 गायक को काव्य-माधुरी देखने-सुनने का पर्याप्त अवसर मिल जाता
 था । यही कारण है कि एक बार तो उस युग के संगीतज्ञों की
 रचनाओं में अणु-वर्षन नायिका-भेद मल-सिक्त भाग स्वप्न-रसन
 जममसुकी शृङ्गार इत्यादि का समावेश एक समकी रागिनियों के 'व्यस'
 सम्बन्धी स्वरूप में नायिका भेद की छाया कृष्टिगत होने लगी बुररी

ओर तत्कालीन कवियों की धर्मिक संगीत की ओर विशेषतः उन्मुख हुई जिसके परिणामस्वरूप कभी उन्होंने संगीत सम्बन्धी पुस्तकें लिखीं तो कभी संगीत की पारिभाषिक शब्दावली को अपनी रचनाओं में ग्रहण किया। कभी संगीत की शब्दों को अपने छन्दों में भरने का प्रयत्न प्रयास किया तो कभी शब्दात्मकता एवं धर्मिकताकायी शब्दों के बमलकार से अपनी रचनाओं में धार्मिक संगीत की कलापूर्ण संज्ञा की। रीतिकालीन कविता और संगीत का यह पारस्परिक सम्बन्ध-प्रदान अवश्य महत्वपूर्ण है। तत्कालीन कवियों को शब्दों की कारीगरी में निष्णात बनाने में इन विशेषताओं ने निरचय ही प्रभूत्वपूर्ण योगदान दिया है।

- रीतिकालीन विभिन्न काव्य-रूपों का उस युग के संगीत से सम्बन्ध बृष्टिमत् होता है। तत्कालीन पद्य साहित्य का मूल-कवियों द्वारा निर्मित ही जाने के लिए हुमा या इबर प्रथम काव्य भी प्रचलित रूप ही रहे। सबलतिह का 'महाभारत' यदि मेघ रूप में प्रचलित हुमा तो कलात्मक प्रथम मन्त्रियों में सामूहिक भाग के लिए उपयोगी सिद्ध हुए। श्री कृष्णलम्ब श्याम कृत 'राम कल्पद्रुम' से यह भी सिद्ध होता है कि उस युग की मुख्य रचनाओं को भी संगीतज्ञों ने अपना लिया था। यही नहीं 'राम कल्पद्रुम' में प्रकाशित रीतिकालीन कवियों की अनेक रचनाएँ मात्र भी कभी न कभी पुरानी परिपाटी के गायकों द्वारा स्मरित हो जाया करती हैं।

अतः, रीतिकालीन काव्य का उस काल के संगीत से एवं उस युग के संगीत का तत्कालीन काव्य से प्रगाढ़ सम्बन्ध विस्पष्ट है। संगीत की दृष्टि से रीतिकालीन काव्य को देखने पर उनमें अनेक ऐसी विशेषताएँ परिलक्षित होने लगती हैं जिनकी ओर (इसके अभाव में) सहजा ध्यान आकृष्ट नहीं होता। निरचय ही रीतिकालीन काव्य के सांघीतिक मूल्य को भी एक धमिकारपूर्व निरीक्षण है, अतः रीतिकालीन काव्य के अध्ययन का एक दृष्टिकोण यह भी है।

स हा य क पु स्त कों
की
सू ची

| | | |
|--|---|--|
| ११ कामायनी | — | श्री जयशंकर प्रसाद |
| १२ कालिदास प्रभावती | — | सम्पादक पण्डित सीताराम बतुर्बेदी |
| १३ काव्य धीर कला तथा काव्य निबन्ध | — | श्री जयशंकर प्रसाद |
| १४ काव्य के रूप | — | बाबू मुलाब राम |
| १५ काव्य दर्पण | — | पण्डित राम बहिन मिश्र |
| १६ काव्य प्रकाश | — | मम्मट |
| १७ काव्य मीमांसा | — | राजशेखर |
| १८ काव्यालंकार | — | भामहू |
| १९ काव्यालंकार सूत्र | — | वामन |
| २० किसक प्रभावती | — | सम्पादक पण्डित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र |
| ब | | |
| २१ बीतगोविन्द | — | जयदेव |
| २२ मीतावली (तुलसी) | — | गीता प्रेस गोरखपुर |
| २३ गीतिकाम्य | — | पण्डित राम बेल्लाबन पाण्डेय |
| २४ मुसाम साहब की बानी | — | बेलबेडियर प्रेस प्रयाग |
| २५ नोस्वामी तुलसीदास | — | सम्पादक बाबू स्वाम तुम्बर दास धीर श्री पीताम्बरदास बड़म्वाल |
| २६ शबान रत्नावली | — | सम्पादक कवि 'किंकर' |
| ब | | |
| २७ अनानन्द प्रभावती | — | सम्पादक पण्डित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र |
| ब | | |
| २८ चिन्तामणि | — | शाचार्य रामचन्द्र शुक्ल |
| ब | | |
| २९ जायसी प्रभावती | — | सम्पादक शाचार्य रामचन्द्र शुक्ल |
| ३० जीवन के तार धीर काव्य के तियाग्य | — | श्री लक्ष्मी नारायण 'मुपांगु' |

३६३

३१ ठाकुर ठसक

ठ

— सम्पादक सामा भगवानदीन 'दीन'

३२ तुलसीदास और जनकी कविता

त

— पण्डित रामनरेश त्रिपाठी

३३ दीनदयाल पिरि रत्नावली

द

— काशी नागरी प्रचारिणी सभा
द्वारा प्रकाशित

३४ देव और जनकी कविता

—

डा० नयेन्द्र

३५ देव रत्नावली

—

सम्पादक कवि 'किष्कर'

३६ नाट्य शास्त्र

न

— भरत मुनि

३७ पद्माकर पञ्चामृत

प

— सम्पादक पण्डित विश्वनाथ प्रसाद
मिश्र

३८ 'परिमल' की भूमिका

—

श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

३९ 'पल्लव' की भूमिका

—

श्री सुमित्रा मन्दन पन्त

४० मिया प्रकाश

—

टीकाकार सामा भगवानदीन 'दीन'

४१ बिहारी रत्नाकर

ब

— सम्पादक बाबू जयप्रकाश रत्नाकर

४२ ब्रजभाषा साहित्य का नायिका
श्रेय

—

श्री प्रमुदयान शीतल

भ

४३ भारतीय काव्य शास्त्र की भूमिका

—

डा० नयेन्द्र

४४ भारतेन्दु प्रयागजी

—

सम्पादक श्री बजरत्न दास

४५ भाव वितास (देव)

—

सम्पादक पण्डित सहनी मिश्र
चतुर्वेदी

| | | |
|----------------------|---|-------------------------------------|
| ४६ भीखा साहब की बानी | — | बेसबेडियर प्रेस प्रयाग |
| ४७ प्रमद बीठ-सार | — | सम्पादक भाचार्य रामचन्द्र शुक्ल |
| ४८ भूपम शम्भाबली | — | सम्पादक पण्डित बिरबनाथ प्रसाद मिश्र |

म

| | | |
|--------------------------------|---|--|
| ४९ मतिराम शम्भाबली | — | सम्पादक पण्डित कृष्ण बिहारी मिश्र |
| ५० मधुकाशीम प्रेम माधना | — | पण्डित परशुराम जगुबेदी |
| ५१ मध्यकाशीन हिन्दी कवयित्रिणी | — | डा० साबित्री सिन्हा |
| ५२ मसूकबास जी की बानी | — | बेसबेडियर प्रेस, प्रयाग |
| ५३ महादेवी का विवेचनारमक वच | — | संस्कृतकर्ता पण्डित यंवाप्रसाद पाण्डेय |
| ५४ महामारुत | — | सबसिंह |
| ५५ मिथबन्धु बिलोद | — | मिथबन्धु |
| ५६ मीठ-माबुटी | — | श्री ब्रजरत्नदास |
| ५७ मीठबाई की पदावली | — | पण्डित परशुराम जगुबेदी |
| ५८ मेपदूठ (काशिबास) | — | धनुबाबक राजा लक्ष्मण सिंह |

न

| | | |
|--------------------------|---|------------------------|
| ५९ नद्योवच | — | श्री मैथिलीसरन गुप्त |
| ६० नाटी साहब की रत्नावली | — | बेसबेडियर प्रेस प्रयाग |

र

| | | |
|---------------------------------|---|--|
| ६१ 'रत्नाकर' | — | सम्पादक बाबू दयाम सुन्दरदास |
| ६२ रत्नाकर उनकी प्रतिभा धीर कमा | — | डा० बिरबन्तर नाथ भट्ट |
| ६३ राम रत्नाकर (रेव) | — | काशी नापरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित |
| ६४ रामचन्द्रिधानम | — | तुमशीदास |
| ६५ रीतिराम्य की भूमिका | — | डा० नगेश |
| ६६ रीति शृङ्गार | — | डा० नयेन्द्र |
| ६७ रीबास जी की बानी | — | बसबेडियर प्रेस प्रयाग |

त

— श्री जयधर प्रसाद

ब

— पण्डित बिरबनाथ प्रसाद मिश्र

— डा० जयेश्वर

— सरस्वतीश्वर श्री रामबुद्ध बेनीपुरी

— टीकाकार श्री बियोगी हरि

— टीकाकार श्री कृष्ण सुक्ल

स

— तुमनी साहिब (हापरस बासे)

— भतू हरि

— श्री हित बुन्दावन राम

स

— पण्डित परसुराम अनुबेबी

— श्री मंथिनी शरण सुन्दर

— मुषी महादेवी बर्मा

— बाबू ब्याम सुन्दर दास

— बाबू मुलाब राम

— रामेश्वर

— सम्पादक सत्यप्रिय

— श्री टिस्तर चन्द्र जैन

— डा हरबंश लाल शर्मा

— सम्पादक लाला भयवानदीन 'शोम'

— काशी नागरी प्रचारिणी सभा

— द्वारा प्रकाशित

— डा मुषी राम शर्मा 'शोम'

— सम्पादक पण्डित श्रीकारनाथ

१८ सहर

६१ बाहु मय विमल

७० विचार और विमोक्षण

७१ विद्यापति की पदावली

७२ विनय पत्रिका

७३ बुन्द सतसई

७४ चम्पावली (दूसरा भाग)

७५ शृङ्गार सतक

७६ श्रीमद्भगवद्गीता

७७ श्री लाङ्का सागर

७८ सप्त काव्य

७९ साकेत

८० साङ्घ्य वीथ

८१ साहित्यालोचन

८२ सिद्धांत और अभ्ययन

८३ मुकुत्तविलक

८४ सुदन रत्नावली

८५ मूर एक अभ्ययन

८६ मूर श्रीर उनका साहित्य

८७ मूर पंचरत्न

८८ मूर साधर

८९ मूर मीरम

९० सोमनाथ रत्नावली

| | | | |
|-----|---|---|---------------------------------|
| ११ | स्कन्दपुराण विक्रमादित्य | — | श्री जयसंकर प्रसाद |
| ह | | | |
| १२ | हम्मीर हठ (बन्धुसेखर) | — | सम्पादक श्री जगन्नाथदास खन्नाकर |
| १३ | हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास | — | डा० भगीरथ मिश्र |
| १४ | हिन्दी धीतिकाम्य | — | श्री धीमप्रकाश मधवाल |
| १५ | हिन्दी मन्तरत्न | — | मिथवान् |
| १६ | हिन्दी भाषा और साहित्य | — | बाबू क्याम सुन्दर राय |
| १७ | हिन्दी साहित्य | — | डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी |
| १८ | हिन्दी साहित्य का भाषि काल | — | डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी |
| १९ | हिन्दी साहित्य का भाषोपनात्मक इतिहास | — | डा० रामधुमार वर्मा |
| १०० | हिन्दी साहित्य का इतिहास | — | भाषार्थ रामचन्द्र शुक्ल |
| १०१ | हिन्दी साहित्य की भूमिका | — | डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी |

संगीत

(हिन्दी और संस्कृत)

प्र

- | | | |
|----------------------|---|--------------------|
| १ धनुष संगीत विज्ञान | — | पण्डित भाव भट्ट |
| २ धनुष संगीत रत्नारर | — | पण्डित भाव भट्ट |
| ३ धनुष सपीतांशुष | — | पण्डित भाव भट्ट |
| ४ अमिनवनीतमंबरी | — | श्री नारायण रतानकर |

ब

- | | | |
|-------------------------------------|---|--------------------------------------|
| ६ अकारिष्यन्तुपनिष्पन्नम् (नारद) | — | प्रकाशक भालचन्द्र सीताराम सुकपनकर |
|-------------------------------------|---|--------------------------------------|

ठ

- | | | |
|---------------|---|---------------------------|
| ९ ठुमरी सप्तह | — | श्री नरहरि चम्पु राम भाषे |
|---------------|---|---------------------------|

ड

- | | | |
|------------------|---|-------------------------|
| ७ ध्वनि और संगीत | — | श्रीअचर समित किशोर सिंह |
|------------------|---|-------------------------|

ण

- | | | |
|----------------------|---|-------------------|
| ८ नाद विज्ञान ग्रन्थ | — | पोस्वामी पत्रासात |
|----------------------|---|-------------------|

त

- | | | |
|----------------|---|--------------------------|
| ९ प्रथम भारतीय | — | पण्डित श्रीनार भाष ठाकुर |
|----------------|---|--------------------------|

थ

- | | | |
|-------------------------------------|---|----------------------------|
| १० मारिपुसप्रमात (राजा नवाब मली) | — | धनुषक डा० विरवम्मरनाथ भट्ट |
|-------------------------------------|---|----------------------------|

द

- | | | |
|--------------------------------------|---|--------------------------------------|
| ११ रघु विज्ञान प्रवेमिका (सोमनाथ) | — | प्रकाशक भालचन्द्र सीताराम सुकपनकर |
|--------------------------------------|---|--------------------------------------|

| | | | |
|----|---|---|------------------|
| ३२ | हिन्दुस्थानी संगीत-पद्धति (तीसरा भाग) | — | भाचार्य भातसङ्घे |
| ३३ | हिन्दुस्थानी संगीत-पद्धति (चौथा भाग) | — | भाचार्य भातसङ्घे |
| ३४ | हिन्दुस्थानी संगीत-पद्धति क्रमिक पुस्तक मासिका (पहला भाग) | — | भाचार्य भातसङ्घे |
| ३५ | हिन्दुस्थानी संगीत-पद्धति क्रमिक पुस्तक मासिका (दूसरा भाग) | — | भाचार्य भातसङ्घे |
| ३६ | हिन्दुस्थानी संगीत-पद्धति क्रमिक पुस्तक मासिका (तीसरा भाग) | — | भाचार्य भातसङ्घे |
| ३७ | हिन्दुस्थानी संगीत-पद्धति क्रमिक पुस्तक मासिका (चौथा भाग) | — | भाचार्य भातसङ्घे |
| ३८ | हिन्दुस्थानी संगीत-पद्धति क्रमिक पुस्तक मासिका (पाँचवाँ भाग) | — | भाचार्य भातसङ्घे |
| ३९ | हिन्दुस्थानी संगीत-पद्धति क्रमिक पुस्तक मासिका (छठा भाग) | — | भाचार्य भातसङ्घे |

★

पत्र-पत्रिकाएँ (पुरानी सञ्चिकाएँ)

- १ नावरी प्रचारिणी पत्रिका
- २ प्रबन्धिका
- ३ वासीपत्रा
- ४ बरसकरी

अंगरेजी

(साहित्य)

- | | | |
|-----|--|------------------------|
| 1 | A making of Literature | — R. A. Scott—James |
| 2. | An Introduction to the Study of Literature | —William Henry Hudson |
| 3. | Arts and the Man | —Irwin Edman |
| 4 | Biographia Literaria | —Coleridge |
| 5 | Essay on Criticism | —A. Pope |
| 6 | Greek Literary Criticism | —J D Deniston |
| 7 | History of Aurangzeb | —J N Sirkar |
| 8 | Life and works of Amir Khusrau | —Dr Mohammad Wahid Mir |
| 9 | Literary Criticism in Antiquity | —Atkins |
| 10 | Loeb—critici | —Saintsbury |
| 11 | Principles of Literary Criticism | —I A Richards |
| 12 | Rules of India series: Aurangzeb | —Stanley Lane Poole |
| 12 | Studies in the Psychology of Sex | —Havelock Ellis |
| 14. | The Study of Poetry | —A. R. Entwistle |
| 15 | The Social Function of Arts. | —Radha Kamal Mukerjee |

अंगरेजी

(संस्कृत)

- | | | |
|----|--|------------------------|
| 1 | A Comparative Study of some of the Leading Music Systems of the 15th, 16th 17th and 18th Centuries | —Pandit V N Bhatkhande |
| 2 | Approach to Music | —Lawrence Abbott |
| 3 | A Short Historical Survey of the Music of Upper India | —Pandit V N Bhatkhande |
| 4 | Hindustani Music | —G H. Ranade |
| 5 | History of Universal Music | —Raja Sir S. M. Tagore |
| 6. | Music of India | —H. A. Poply |
| 7 | Music of Southern India | —Capt. Day |
| 8 | Treatise on the Music of Hindustan | —Capt. Willard |
| 9 | The Music of Hindostan | —A. H. Fox Strangways |

